Appendix-117
Resolution No. 38 {38-1 [38-1-13(8)]}

Department of Distance and Continuing Education
University of Delhi

दूरस्थ एवं सतत शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

बी.ए.(प्रोग्राम) सेमेस्टर-I

कोर्स क्रेडिट - 4

अनुशासन A/B (संस्कृत)

संस्कृत पद्यकाव्य

(संस्कृत-विभाग)

As per the UGCF and National Education Policy 2020

संपादक मंडल

प्रो. मीरा द्विवेदी

प्रो. अजय कुमार झा

डॉ. सुचिता यादव

पाठ्य-सामग्री लेखक

डॉ. रमा जैन, डॉ. के.वी. जोशी,

डॉ. वेदप्रकाश डिंडोरिया, डॉ. कान्ता

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग

प्रथम संस्करण : 2022

ई–मेल : ddceprinting@col.du.ac.in

sanskrit@col.du.ac.in

Published by:

Department of Distance and Continuing Education under the aegis of Campus of Open Learning, University of Delhi

Printed by:

5 कैवेलरी लेन, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

अध्ययन सामग्री : 1 (इकाई I-IV)

इकाई–I	पाठ 1– महाकवि कालिदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	1–19
	पाठ 2– महाकाव्य रघुवंश-प्रथम सर्ग (1.25) - मूल पाठ, अनुवाद तथा टिप्पणियाँ	20–51
इकाई–II	पाठ 3– महाकवि माघ: व्यक्तित्व एवं कृतित्व	52–77
	पाठ 4– शिशुपालवधम्(द्वितीय सर्ग-पद्य संख्या26-37):मूल पाठ, अनुवाद, व्याख्या तथा टिप्पणीयाँ	78–93
	पाठ 5– शिशुपालवधम्(द्वितीय सर्ग-पद्य संख्या42-56):मूल पाठ, अनुवाद, व्याख्या तथा टिप्पणीयाँ	94–112
इकाई–III	पाठ 6– गीतिकाव्य एवं भतृहरि विरचित नीतिशतकम्	113–126
	पाठ 7– नीतिशतकम् (पद्य संख्या1-15) : मूल पाठ, अनुवाद, व्याख्या एवं टिप्पणियाँ	127–158
	पाठ 8– नीतिशतकम् (पद्य संख्या16-21) : मूल पाठ, अनुवाद, व्याख्या एवं टिप्पणियाँ	159–175
इकाई–IV	पाठ 9– संस्कृत पद्यकाव्य का इतिहास	176–188
	पाठ 10– महाकाव्य का उद्भव एवं विकास	189–213
	पाठ 11– खण्डकाव्य(गीतिकाव्य) का उद्भव एवं विकास	214–238

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

पाठ–1 इकाई-I

महाकवि कालिदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संरचना

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 कालिदास का परिचय
    1.3.1 कालिदास का समय एवं जन्मस्थान
    1.3.2 कालिदास की कृतियाँ
1.4 रघुवंश महाकाव्य का परिचय
    1.4.1 रघुवंश महाकाव्य का कथासार
    1.4.2 रघुवंश महाकाव्य की समीक्षा
1.5 राजा दिलीप का चरित्र-चित्रण
1.6 सारांश
1.7 पारिभाषिक शब्दावली
1.8 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर
1.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न
1.10 संदर्भ ग्रंथ
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

1.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी -

- रघुवंश के रचयिता महाकवि कालिदास के विषय में जानेंगे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध महाकाव्य रघुवंश महाकाव्य का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रघुवंश महाकाव्य के कथासार को जान पाएंगे।
- रघुवंश शीर्षक की उपयुक्त महत्ता को समझ सकेंगे।
- राजा दिलीप के चारित्रिक विशेषताओं के सम्बन्ध में जानेंगे।

1.2 प्रस्तावना

छात्रो! प्रस्तुत पाठ में आपको संस्कृत साहित्य के प्रमुख महाकवि उपमा अलंकार के सम्राट कालिदास के जीवन परिचय से सम्बन्धित विषयों जैसे उनके जन्मस्थान, समय तथा उनकी रचनाओं का परिचय दिया जायेगा। महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य महाकवियों में से एक है जिनके द्वारा महाकाव्य, नाटक, खण्डकाव्य इत्यादि सभी विधाओं में रचनाएँ की गई हैं। इसके साथ ही इस पाठ में कालिदास की प्रसिद्ध रचना रघुवंशमहाकाव्य में वर्णित कथावस्तु के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान की जायेगी। साथ ही, रघुवंश में वर्णित राजा दिलीप के चरित्र-चित्रण के माध्यम से प्रजापालन में राजा की भूमिका को भी छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा।

1.3 कालिदास का परिचय

महर्षि वाल्मीकि एवं वे महर्षि वेदव्यास के पश्चात् जिस महाकवि ने भारतीय साहित्य और चेतना पर दूर तक अमिट छाप छोड़ी है, वह कालिदास हैं। कम ही कवि ऐसे होते हैं, जिन्हें किसी राष्ट्र की समूची सांस्कृतिक चेतना को मुखरित करने की कला पर अधिकार होता है। कालिदास ऐसे ही कवि हैं। भारतवर्ष के ऋषियों, सन्तों, कलाकारों, राजपुरुषों और विचारकों ने जो कुछ उत्तम और महान दिया है, उसके सहस्रों वर्ष के इतिहास का जो कुछ सौन्दर्य है, उसने मनुष्य को पशु-सुलभ धरातल से उठाकर देवत्व में प्रतिष्ठित करने की जितनी विधियों का संधान किया है उन सब को ललित-मोहन और सशक्त वाणी देने का काम कालिदास ने किया है। "सम्पूर्ण भारतीय मनीषियों ने कालिदास की इस महिमा को स्वीकारा है और उन्हें राष्ट्रीय कवि की उपाधि से सम्मानित किया है।

सैकड़ों वर्षों तक उनकी ललित-गहन कविता ने आनन्द और प्रेरणा दी है। वाल्मीकि और व्यास की भांति उनकी कविता ने भी महनीय और उदात्त चरित्रों की सृष्टि की है। जहाँ भी कालिदास की तत्त्वान्वेषिणी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

दृष्टि गई है वहीं उन्होंने जीवन के किसी न किसी अदृष्ट पक्ष को उद्घाटित किया है। साहित्य और चिंतन की इतनी बड़ी विरासत के साथ न्याय करने की क्षमता हर किसी कवि में नहीं होती और यदि कालिदास यह कर सके तो यह उनकी अर्थग्राहिका शक्ति और मर्मभेदिनी दृष्टि का परिचायक है।

1.3.1 कालिदास का समय एवं जन्मस्थान

जिस कवि ने भारत की अन्तरात्मा को वाणी दी, वे अपने जीवन के विषय में सर्वथा मौन हैं। यही कारण है कि उनकी स्थिति-काल, जन्म-स्थान तथा व्यक्तिगत जीवन को लेकर बड़ा मत-वैभिन्नय है। उनकी रचनाओं के अनुशीलन करने के पश्चात् हम इतना ही जान पाते हैं कि वे ऐसे युग में हुए जबकि देश में शान्ति और समृद्धि विद्यमान थी। विद्वानों के अनुसार उज्जैन के सम्राट् वीर विक्रमादित्य उनके आश्रयदाता थे और वे स्वयं भगवान् शिव के अनन्य भक्त थे। परम्परा से उनके विषय में यह जनश्रुति चली आ रही है कि वे विदेशी हूण आक्रमणकारियों पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में ईसवी पूर्व सन् 57 में अपने नाम से विक्रम संवत्सर का प्रवर्तन करने वाले सम्राट् विक्रमादित्य की राज्य सभा के नवरत्नों में से एक थे। कथा-सरित्सागर के अनुसार विक्रमादित्य और उनके पिता महेन्द्रादित्य दोनों ही भगवान् शिव के परमभक्त थे। महाकवि कालिदास भी शिवभक्त थे। इस आधार पर कालिदास का समय ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी ही स्वीकृत होता है।

इसके विपरीत अन्य विद्वानों की धारणा है कि महाकवि कालिदास भारतीय इतिहास स्वर्णिम युग में अर्थात् गुप्त शासकों के काल (320 ई.-510 ई.) में हुए। जैसा कि कालिदास के विषय में प्रसिद्ध है वे ऐन्द्रिय विषयों, कलात्मक सौन्दर्य एवं भोगयुक्त भावनाओं के मर्मज्ञ सर्वोत्कृष्ट कवि थे; अतः हो सकता है कि वे ऐश्वर्यप्रधान गुप्तयुग की देन हों। गुप्तकाल प्राचीन भारतीय इतिहास में चरम भौतिक उन्नति तथा वैभव का काल माना जाता है। कालिदास के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण करने वाले चन्द्रगुप्त द्वितीय (375-415 ई.) के उत्तरकालिक समय में अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया, कुमारगुप्त प्रथम के वे समकालीन रहे तथा स्कन्दगुप्त के शासन काल में भी कुछ समय तक उनकी साहित्य साधना चलती रही। इस प्रकार वे तीन प्रख्यात गुप्त शासकों - चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमार गुप्त और स्कन्दगुप्त - की राजसभा में रहे। अतएव उन्हें भारतीय चेतना एवं समृद्धि के सुवर्ण युग से सम्बद्ध माना जाता है।

कालिदास के विषय में विद्वानों के इन विभिन्न विचारों और मतों को देखते हुए कालिदास का कोई निश्चित समय ज्ञात कर पाना वस्तुतः बहुत कठिन है। ईसवी सन् 634 के 'ऐहोल' शिलालेख में कालिदास के नाम का उल्लेख मिलता है तथा ईसवी सन् 472 के लिखे वत्सभट्टि के मन्दसौर शिलालेख के कुछ पद्य तो कालिदास के ऋतुसंहार तथा मेघदूत खंडकाव्यों के पद्यों का अनुकरण मात्र प्रतीत होते हैं। इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि कालिदास के काल की परवर्ती सीमा ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दी के पीछे नहीं ले जायी जा सकती। इसके अतिरिक्त कालिदास ने भास को अपना पूर्वनाटककार माना है और अपनी रचनाओं में उसके नाम का विशेष रूप से उल्लेख किया है। अतः कालिदास नाटककार भास (ई. पूर्व तृतीय-चतुर्थ शताब्दी) से

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

परवर्ती बैठते हैं। कालिदास का काव्य महाकवि अश्वघोष के काव्य से बहुत मिलता-जुलता है और अश्वघोष का काल निश्चित रूप से ईसा की प्रथम शताब्दी माना गया है, क्योंकि वे राजा कनिष्क (प्रथम शताब्दी ई.) के समकालीन थे। विद्वानों का अधिकतर झुकाव कालिदास को अश्वघोष का परवर्ती मानने का है, परन्तु ठोस प्रमाणों के अभाव में कालिदास का काल अनिश्चित ही है।

महाकवि कालिदास के जन्म स्थान के विषय में भी संस्कृत साहित्य के इतिहास के समलोचकों में पर्याप्त मतभेद हैं। इस संदर्भ में स्वर्गीय डॉ. लक्ष्मीधर जी के वचन ध्यान देने योग्य हैं, वे कहते हैं – "कालिदास इतने व्यापक और सार्वभौम संवेदनाओं के कवि हैं और उनका मन राष्ट्रीयता की भावना से इतना ओत-प्रोत है कि उनकी रचनाओं के आधार पर यह जान लेना कि भारतवर्ष के किस विशेष भाग या भागों में वे उत्पन्न हुए और कहाँ उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय व्यतीत किया, सुलभ नहीं।" महाकवि कालिदास इस विशाल देश के कोने-कोने से सुपरिचित हैं तथा उन्होंने अपनी कृतियों में इस देश के विभिन्न भू-भागों, पशुओं, पक्षियों, पेड़-पौधों और यहाँ के निवासियों की रीतियों, प्रथाओं और विश्वासों का इतना यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है कि देश के किसी विशेष स्थान या प्रान्त को उनकी जन्म-भूमि सिद्ध करना व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव प्रतीत होता है। विद्वानों ने कालिदास को बंगाल, काश्मीर, मालवा, विदर्भ, गढ़वाल प्रान्त के निवासी बताकर मत-भिन्नता प्रकट की है। अतएव कालिदास के जन्म स्थान की समस्या का कोई हल अभी तक नहीं निकला है और यह समस्या अभी तक उसी प्रकार उलझी हुई है। इस सन्दर्भ में केवल एक ही बात कुछ निश्चय के साथ कही जा सकती है कि कालिदास ने अपने जीवन का बहुत-सा भाग मालवा देश में, विशेष रूप से उज्जैन नगर में व्यतीत किया होगा, क्योंकि इसके सौन्दर्य और वैभव का उन्होंने रचनाओं में बड़ी तन्मयता और रुचि के साथ वर्णन किया है और इससे सम्बन्धित अपने अनुभवों को विशेष वाणी दी है।

इस महान् कवि के व्यक्तिगत जीवन के विषय में भी हमें वास्तविक ज्ञान उपलब्ध नहीं है। किसी विश्वसनीय प्रमाण के न होने से कालिदास के जीवन के विषय में अनेक प्रकार की कथाएँ कल्पित कर ली गई हैं। इनमें से अत्यधिक लोकप्रिय कथा उनके बारे में यह सुनने में आती है वे जन्म से वज्रमूर्ख थे और कुछ पण्डितों षड्यंत्र के कारण उनका विवाह विद्योत्तमा नामक विदुषी राजकुमारी से हो गया। विद्योत्तमा ने शास्त्रार्थ में पण्डितों को पराजित कर दिया था और उन्होंने अपनी पराजय का बदला चुकाने के लिए धोखे का एक जाल बिछाया और राजकुमारी का मूर्ख कालिदास से विवाह करवा दिया। उनके विषय में एक अन्य अत्यधिक लोक-प्रचलित यह कथा प्रसिद्ध है कि लंका की राजनर्तकी ने जिसके साथ वे अपनी आश्रयदाता विक्रमादित्य के साथ किसी कारण से झगड़ा हो जाने के कारण गुप्त रूप से निवास कर रहे थे, उनकी हत्या कर दी।

कालिदास के बहुत बाद के कुछ कवियों जैसे बल्लाल ने उन्हें धारा नागरी के सम्राट् भोज का राजकवि बताया है और कुछ ने सोचे-समझे बिना ही उन्हें परवर्ती कवियों जैसे दंडी, भवभूति आदि का समकालीन बना दिया है। कालिदास की कृतियों का अनुशीलन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

वे जाति से ब्राह्मण और भगवान शिव के परमभक्त थे तथा विष्णु एवं अन्य अवतारों एवं देवताओं के प्रति उनकी रुचि उनके स्मार्त होने की परिचायिका है। उन्होंने प्राचीन धर्मग्रन्थों और शास्त्रों एवं भारतीय दर्शन के विभिन्न सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया था तथा व्याकरण, राजनीति, छन्द-शास्त्र, काव्य-शास्त्र जैसे दुरूह विषयों का भी उन्हें पूर्ण ज्ञान था।

1.3.2 कालिदास की कृतियाँ

कालिदास प्राचीन शास्त्रों एवं धर्मग्रन्थों के मूर्धन्य विद्वान थे । उन्होंने भारतीय भारतीय दर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों के अध्ययन के साथ-साथ व्याकरण, राजनीतिशास्त्र, छन्दशास्त्र, काव्यशास्त्र जैसी अनेक विधाओं का भी ज्ञान अर्जन किया था । कालिदास को बहुग्रंथों का रचयिता माना जाता है जिसके सन्दर्भ में प्रोफेसर एम. आर. काले का मत भी आता है जिसमें उन्होंने कालिदास को लगभग चालीस(40) ग्रंथों का रचयिता माना है। परन्तु इनमें से सभी उपलब्ध नहीं होते हैं । कालिदास के प्रसिद्ध रचनाओं को देखें तो उनमें केवल सात(7) ऐसी रचनाएँ प्राप्त होती हैं जिन्हें विद्वानों द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है । वे रचनाएँ हैं-

(क) ऋतुसंहार और मेघदूत - दो खण्ड काव्य।

(ख) कुमारसम्भवम् और रघुवंशम् - दो महाकाव्य।

(ग) मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् और अभिज्ञान-शाकुन्तलम् - तीन नाटक।

SOL, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   i. कालिदास सम्राट ________ की सभा में राजकवि थे।
   ii. रघुवंशम् के रचयिता ________ हैं।
   iii. कालिदास की ________ रचनाएँ प्रसिद्ध है।
   iv. कालिदास का विवाह राजकुमारी________ के साथ हुआ था।

1.4 रघुवंश महाकाव्य का परिचय

रघुवंश महाकाव्य कालिदास की नैसर्गिक प्रतिभा का फल है। इस महाकाव्य में उन्नीस (19) सर्ग हैं और इन सर्गों में सूर्यवंश के 29 विश्वविदित यशस्वी राजाओं के जीवन-चरित्र का वर्णन है। यद्यपि कालिदास के पूर्व

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

भी अनेक कवियों ने जैसे महर्षि वाल्मीकि, महाकवि भास आदि इस विषय को लेकर काव्य रचना कर चुके थे और वाल्मीकि रामायण में आदिकवि वाल्मीकि ने राम को नायक बनाकर सम्पूर्ण रामायण की रचना की लेकिन कालिदास उनका पूर्ण रूप से अनुकरण नहीं करते हैं। वाल्मीकिकृत रामायण की कथा अयोध्यानगरी में महाराज दशरथ के राज्य से प्रारम्भ होती है और श्रीराम के पुत्र तथा भाईयों के वृत्तान्त के उल्लेख के साथ समाप्त होती है परन्तु महाकवि कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य की कथा श्रीराम के पूर्वज राजा दिलीप के वर्णन से प्रारम्भ होती है तथा विषयासक्त कामुक राजा अग्निवर्ण की मृत्यु के वर्णन के साथ अकस्मात् ही समाप्त हो जाती है।

1.4.1 रघुवंश महाकाव्य का कथासार

कभी-कभी विद्वान् रघुवंश के पौराणिक पात्रों तथा आद्य गुप्त सम्राटों के ऐतिहासिक चरित्र में परस्पर समानता ढूंढ़ने का प्रयास करते हैं। परन्तु इस प्रकार की तुलना तथा विस्तार में जाने से पूर्व रघुवंश की विस्तृत विषय सूची को उसके प्रत्येक सर्ग के सारांश के साथ जान लेना अधिक उपयुक्त होगा। अतः सबसे पहले 'रघुवंश' के प्रत्येक सर्ग की विषय वस्तु का सार नीचे क्रमपूर्वक दिया जाता है-

प्रथम सर्ग

वैवस्वत मनु के वंश में महाराज दिलीप नामक सुप्रसिद्ध सम्राट् हुए। मगध देश की राजकुमारी सुदक्षिणा उनकी रानी बनी। दुर्भाग्य से दिलीप को सुदक्षिणा से कोई सन्तान नहीं हुई। दिलीप इस बात से बहुत खिन्न रहते थे। एक दिन वे सुदक्षिणा को अपने साथ लेकर इस सम्बन्ध में अपने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ के आश्रम पहुँचे। तब ऋषि ने ध्यान लगाकर राजा के सन्तान न होने का यह कारण ज्ञात किया कि एक बार स्वर्गलोक से भूलोक को लौटते हुए राजा ने मार्ग में खड़ी दिव्य गौ सुरभि (कामधेनु) के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित नहीं किया था। इस उपेक्षावृत्ति से रुष्ट होकर सुरभि ने राजा को शाप दिया कि उसको तब तक सन्तान नहीं होगी, जब तक वह उसकी पुत्री नंदिनी गौ को सेवा से संतुष्ट नहीं कर लेगा। सौभाग्य से सुरभि की पुत्री नंदिनी गौ उस समय ऋषि के आश्रम में ही विद्यमान थी। अतः ऋषि ने राजा को आदेश दिया कि वह अपनी रानी के साथ नंदिनी की सेवा करके उसे प्रसन्न करे और पुत्र-प्राप्ति के लिए उसका आशीर्वाद प्राप्त करे। राजा एवं रानी नियमापेक्षा से महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में मुनिवृत्ति से रहने लगे।

द्वितीय सर्ग

महाराजा दिलीप और महारानी सुदक्षिणा ने परम भक्ति और निष्ठा के साथ नंदिनी की सेवा आरम्भ कर दी। एक दिन जब राजा दिलीप हिमालय पर्वत के सौन्दर्य को मुग्ध होकर देख रहे थे, तो सहसा पर्वत की गुफा से निकलकर किसी सिंह ने नंदिनी गाय को पकड़ लिया। गौ के प्राणों की रक्षा के लिए राजा ने अपने को बलिदान करना चाहा। धर्मनिष्ठ राजा को प्राणों की अपेक्षा गौरक्षा अधिक प्रिय था। एक गाय की रक्षार्थ चक्रवर्तित्व का बलिदान भारत ही की देन है। परन्तु राजा दिलीप के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब सिंह ने मनुष्य की वाणी में कहा कि वह शिव का सेवक है। उसने राजा को गौ की रक्षा के लिए अपने प्राणों

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

का उत्सर्ग करने से रोका। राजा फिर भी सिंह से प्रार्थना करते रहे और गौ के स्थान पर उसे अपना शरीर भोजन के रूप में देने का आग्रह करते रहे। राजा की ऐसी बलिदान तथा आत्म-त्याग की भावना को देखकर नंदिनी अत्यन्त प्रसन्न हुई और इस सारे रहस्य को खोलते हुए उसने कहा कि उसने राजा की परीक्षा लेने के लिए यह माया रची थी। वस्तुतः वहाँ कोई सिंह नहीं था। प्रसन्न होकर उस नंदिनी गाय ने राजा को वर दिया कि उसको पुत्र होगा।

तृतीय सर्ग

समय आने पर सुदक्षिणा ने पुत्र को जन्म दिया। इस सर्ग में राजकुमार रघु के जन्म और उसकी शिक्षा का वर्णन है। दिलीप ने अपने पुत्र राजकुमार रघु को अश्वमेघ यज्ञ के अश्व का संरक्षक नियुक्त किया। अश्व-रक्षा रूप अपने कर्तव्य के पालन में राजकुमार को देवराज इन्द्र के विरुद्ध भी युद्ध करना पड़ा। यद्यपि वे इन्द्र के अधिकार से अश्व को मुक्त कराने में सफल नहीं हुए, तथापि उन्होंने इस साहसिक कार्य से अपने पिता दिलीप को संतुष्ट कर उनकी इच्छा पूर्ण की। तदन्तर ऋषि के उपदेश से राजा प्रजापालन का उत्तरदायित्व अपने पुत्र रघु को सौंप कर स्वयं वन में तपस्या करने के लिए चले गए।

चतुर्थ सर्ग

शासक के रूप में रघु अपने पिता दिलीप से भी श्रेष्ठ सिद्ध हुए। इस सर्ग में कवि ने रघु की दिग्विजय का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए उनकी विजय यात्रा में आने वाले स्थानों, उनके पिता द्वारा किये गय युद्धों तथा उनके हाथों पराजित राजाओं तथा जातियों का ही विशद वर्णन किया है।

पंचम सर्ग

दिग्विजय के पश्चात् रघु ने विश्वजित् यज्ञ किया जिसमें उन्होंने अपना सारा धन यज्ञ की दक्षिणा के रूप में ब्राह्मणों में बाँट दिया। इस विश्वजित् यज्ञ के परिणामस्वरूप जब रघु सर्वथा निर्धन हो गये तो एक दिन ऋषि कौत्स दान मांगने के लिए पास पहुँचे। इस पर रघु कुछ समय के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ बने रहे परन्तु फिर भी उन्होंने धनाधीश कुबेर से ऋषि को देने के लिए आवश्यक धन की याचना की। कुबेर ने प्रसन्न होकर स्वेच्छा से रघु के कोष को स्वर्ण की प्रचुर वर्षा करके भर दिया। ऋषि कौत्स ने अपनी इच्छा पूर्ण हो जाने पर प्रसन्न होकर रघु को आशीर्वाद दिया, तदनुसार उनके अज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब राजकुमार अज युवा हुए तो राजा भोज ने उन्हें अपनी पुत्री इन्दुमती के स्वयंवर में आमन्त्रित किया।

षष्ठ वर्ग

इस सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर का यथार्थ चित्रण है, जिसमें राजकुमारी इन्दुमती ने स्वयंवर में आए अन्य राजकुमारों की उपेक्षा करके अज के गले में पुष्पों की माला पहनाकर उन्हें अपना पति चुना।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

सप्तम सर्ग

अज और इन्दुमती दोनों का विधिपूर्वक विवाह हुआ। पर जब नव विवाहित दम्पत्ति अयोध्या को लौट रहे थे, मार्ग में स्वयंवर में निराश राजकुमारों ने बदला लेने के लिए उन पर आक्रमण कर दिया। परन्तु अज ने अकेले होने पर भी इन सुसंगठित राजकुमारों का वीरतापूर्वक सामना किया और उन्हें पराजित कर उनके दर्प को नष्ट कर दिया।

अष्टम सर्ग

सम्राट् रघु राजनीति से संन्यास लेकर तपोवन में चले जाते हैं। इस सर्ग में कवि ने बड़ी कुशलता से अज के राज्य तथा उनके पिता रघु के संन्यास की तुलना की है। कुछ काल के पश्चात् रघु योग-समाधि द्वारा अपना शरीर त्याग देते हैं और अज से दशरथ नामक पुत्र उत्पन्न होता है। अज पर भीषण विपत्ति आती है। उनकी रानी इन्दुमती पर स्वर्ग से पुष्पों की माला टूट कर गिरती है और उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। इस सर्ग के उत्तरार्द्ध में अज के विलाप का वर्णन है जो सम्पूर्ण रघुवंश में उच्चकोटि का काव्यांश माना जाता है।

नवम सर्ग

विशेष: इस सर्ग से लेकर 15 सर्ग तक रघुवंश की कथा वाल्मीकि की रामायण की कथा से बहुत मिलती है। जब युवराज दशरथ वर्महर अर्थात् शस्त्र धारण करने के योग्य हुए, तब अज ने उन्हें राजा नियुक्त किया और स्वयं 'प्रायोपवेशन' अर्थात् आमरण व्रत आरम्भ कर दिया। इस सर्ग में दशरथ के आखेट का बड़ा ही भव्य वर्णन है जिससे उन्होंने भूल से किसी अन्धे मुनि के पुत्र श्रवण कुमार को मार दिया है। अपने पुत्र की मृत्यु पर दुःखी होकर अन्धे मुनि ने शाप दिया कि राजा दशरथ की भी वृद्धावस्था में पुत्र-वियोग के दुःख में मृत्यु होगी।

दशम सर्ग

दशरथ ने पुत्र-प्राप्ति के उद्देश्य से 'पुत्रेष्टि' यज्ञ आरम्भ कर दिया। इसी अवधि में देवताओं ने भगवान् विष्णु से रावण को नष्ट करने की प्रार्थना की। अतः भगवान् विष्णु ने दशरथ के पुत्र के रूप में पृथ्वी पर अवतार लेने का निश्चय किया।

एकादश सर्ग

इस सर्ग में श्रीराम के शैशव का वर्णन है। वे और लक्ष्मण दोनों भाई दुष्ट राक्षसों से यज्ञ की रक्षा करने के लिए मुनि विश्वामित्र के साथ जाते हैं। मार्ग में श्रीराम ताड़का राक्षसी को मारते हैं और विश्वामित्र से अनेक प्रकार के गुप्त अस्त्र प्राप्त करते हैं। विश्वामित्र के यज्ञ के सफलतापूर्वक समाप्त हो जाने पर श्रीराम राजा जनक की नगरी मिथिला की ओर प्रस्थान करते हैं और मार्ग में शाप के कारण पत्थर की बनी हुई गौतम की पत्नी अहिल्या का उद्धार करते हैं। मिथिला पहुँचकर राम शिव का विशाल धनुष तोड़ने में अपना पराक्रम दिखाकर बदले में जनक-पुत्री सीता का पाणिग्रहण करते हैं। तब राजा दशरथ को मिथिला में बुलाया जाता

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

है और अन्य पुत्रों लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न का जनक तथा उनके भ्राता कुशध्वज की पुत्रियों के साथ बड़ी धूमधाम से विवाह होता है। विवाह के बाद जब दशरथ अपने परिवार के साथ मिथिला से अयोध्या लौट रहे होते हैं, तब मार्ग में उनकी परशुराम से भेंट होती है जो अपने इष्टदेव शिव के धनुष-भंग का समाचार सुनकर आग-बबूला हो इसका बदला लेने के लिए उद्यत होते हैं। तब राम मदमत्त परशुराम के गर्व को नष्ट कर उन्हें नम्रता का पाठ पढ़ाते हैं तथा अपने विष्णु होने का प्रमाण देते हैं। इसके बाद सभी लोग सुरक्षित तथा प्रसन्न होकर अयोध्या लौटते हैं।

द्वादश सर्ग

इस सर्ग में घटनाओं की भरमार है, क्योंकि इसमें रामायण के पाँच काण्डों की घटनाओं को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। दशरथ ने यह जानकर कि अब वृद्धावस्था आ पहुँची है राम का यौवराज्याभिषेक करके उन्हें अयोध्या का राज-पाट सौंपना चाहा। परन्तु दशरथ की अभिलाषा पर उस समय पानी फिर गया जब कैकेयी ने दशरथ से राम का वनवास और भरत का राज्याभिषेक मांगा। राम 14 वर्ष के लिए वनवास चले गये और वहाँ रावण ने सीता का अपहरण कर लिया। सुग्रीव और हनुमान जैसे वानरों की सहायता से राम ने अन्य राक्षसों सहित रावण का वध किया और अग्नि द्वारा सीता को पवित्र घोषित कर दिये जाने पर उन्होंने उसे पुनः स्वीकार कर लिया।

त्रयोदश सर्ग

इस सर्ग और विगत सर्ग (12) में इस दृष्टि से वैषम्य है कि जहाँ पिछले सर्ग में घटनाओं की भरमार है, वहाँ इस सर्ग में केवल एक ही घटना का विशद चित्रण है और यह घटना है - राम, लक्ष्मण और सीता के आकाश मार्ग से विमान द्वारा लंका से अयोध्या तक की यात्रा। वर्णन की दृष्टि से इस सर्ग का अत्यधिक महत्त्व है। इस सर्ग में समुद्र का, प्रयाग में गंगा-यमुना नदियों के संगम का तथा जनस्थान से तपोवनों का वर्णन अत्यन्त मोहक है और कालिदास की संवेदना जमकर खिली है।

चतुर्दश सर्ग

अयोध्या लौटकर राम अपनी विधवा माता से मिलते हैं। राम के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में अयोध्या में कुछ समय के लिए फिर उत्सवों की धूम मच जाती है। परन्तु हर्ष और उल्लास की यह बहार अधिक समय तक नहीं रहती, क्योंकि राम को जब अपने गुप्तचर से ज्ञात होता है कि अयोध्या के (एक) धोबी नागरिक को सीता के चरित्र पर, रावण के घर में उसके निवास करने के कारण सन्देह है तो उन्हें विवश होकर न चाहते हुए भी सीता का परित्याग करना पड़ता है। इस व्यवहार से सीता को अपने जीवन के प्रति गहरी अरुचि हो जाती है। परन्तु फिर भी आत्महत्या न कर इसलिए जीवित रहना चाहती है, क्योंकि उसके गर्भ में राम की वंशधर सन्तान है। वन में परित्यक्ता दुःखी सीता को वाल्मीकि सान्त्वना देते हैं और उसे अपने आश्रम में ले जाते हैं। वहाँ सीता, समय आने पर जुड़वाँ बालकों (लव और कुश) को जन्म देती है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पंचदश सर्ग

बाहरवें सर्ग के समान यह सर्ग भी घटनाओं से भरा पड़ा है। सर्ग के आरम्भ में यमुना तट के निवासी ऋषि-मुनि, दुष्ट लवण से अपनी रक्षा करने के लिए राम से प्रार्थना करते हैं। तब राम द्वारा नियुक्त शत्रुघ्न 'लवण' का वध कर देते हैं। अयोध्या में किसी ब्राह्मण बालक की अकाल मृत्यु हो जाती है और उस बालक को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से राम को शूद्र होने पर भी तप करते हुए शम्बूक शूद्र की हत्या करनी पड़ती है। राम अश्वमेघ यज्ञ करते हैं जिसमें राम के पुत्र, कुश और लव उपस्थित होते हैं, जो वाल्मीकि द्वारा रचित 'राम-कथा' गाकर सुनाते हैं। वाल्मीकि और राम के आग्रह करने पर सीता प्रजा के सामने उपस्थित होती है किंतु तभी पृथ्वी माता से प्रार्थना करती है कि यदि उसका (सीता का) चरित्र निष्कलंक और पवित्र है तो वह (पृथ्वी) अपनी गोद में स्थान दे दे। सीता की इच्छा पूर्ण होती है और वह पृथ्वी की गोद में समा जाती है। इस घटना से राम अत्यंत व्यथित हो उठते हैं और वे अपने राज्य को अपने तथा भाइयों के पुत्रों में विभक्त कर साकेत धाम चले जाते हैं। राक्षसों के नाश का उनका लक्ष्य पूरा हो गया। यहीं पर कथावस्तु का मुख्य भाग सम्पूर्णता को प्राप्त करता है।

षोडश सर्ग

इस सर्ग में घटनाओं का उलटा क्रम चलता है। सूर्यवंश के यशस्वी राजाओं की उज्ज्वल परम्परा का पर्यवसान होने से सूर्यवंश का पतन आरम्भ हो जाता है। राम के पुत्र कुश, जिन्होंने अयोध्या के बदले कुशावती को अपनी राजधानी बनाया, एक दिन स्वप्न में अयोध्या नगरी की अधिष्ठात्री देवी को अपने सम्मुख खड़ा देखते हैं जो उन्हें बताती है कि कुशावती के राजधानी बन जाने से अयोध्या नगरी की दशा बहुत बुरी हो गई है। अतः कुश फिर अयोध्या को अपनी राजधानी बना लेते हैं। एक बार सरयू नदी में जल क्रीड़ा करते हुए कुश के हाथ का कंकण जल में गिरकर खो जाता है। सर्पों के राजा कुमुद कुश को कंकण लौटाते हुए अपनी बहन कुमद्वती को भी उसे अर्पित कर देते हैं।

सप्तदश सर्ग

इस सर्ग में कुमद्वती से उत्पन्न कुश के पुत्र 'अतिथि' राजा के सफल शासन का बहुत विस्तृत वृत्तान्त है।

अष्टादश सर्ग

इस सर्ग में अनेक राजाओं का उल्लेख आता है परन्तु उनके नाम को गिनाने के सिवाय उनके विषय में और कुछ नहीं कहा गया है।

एकोनविंशति सर्ग

इसमें रघुकुल के अन्तिम सम्राट् अग्निवर्ण का वर्णन है जो अत्यन्त विषयासक्त और स्त्री लम्पट होने के कारण क्षय रोग से पीड़ित होकर मर जाता है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.4.2 रघुवंश महाकाव्य की समीक्षा

रघुवंश की उपयुक्त कथावस्तु को पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि महाकवि कालिदास पर आदिकवि वाल्मीकि का प्रभाव स्पष्ट है तथापि दोनों में यह अन्तर स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में सूर्यकुल के राजाओं की वंशावली का जो क्रम उल्लखित है, रघुवंश में उसका अक्षरशः अनुकरण नहीं हुआ है, अपितु रामायण से रघुवंश का क्रम भिन्न है। रघुवंश में वर्णित सूर्यकुल के राजाओं की वंशावली का क्रम रामायण की अपेक्षा वायुपुराण तथा विष्णुपुराण में अंकित क्रम से, विशेष रूप में वायुपुराण के क्रम से बहुत मेल खाता है। वास्तव में देखा जाये तो रघुवंश में 19 सर्गों में से केवल सात सर्गों की कथा ही वाल्मीकि-रामायण की कथा के साथ-साथ चलती है। वहाँ भी हमें दृष्टिकोण का अन्तर स्पष्ट दिखायी देता है, क्योंकि रघुवंश में कालिदास वाल्मीकि के समान न तो राम के चरित्र पर अधिक बल देते हैं और न ही कथा के इस भाग को सत्य और असत्य अथवा आर्यों तथा अनार्यों (राक्षसों) के मध्य संघर्ष की कथा के रूप में प्रस्तुत करते हैं। सच पूछा जाये तो कालिदास के काव्य के नायक केवल राम नहीं अपितु राम के पूर्वज, विशेष रूप से दिलीप और रघु भी प्रतीत होते हैं।

रघुवंश की रचना में कालिदास का उद्देश्य तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत करना दिखायी देता है। सम्भवतः अग्निवर्ण की कथा द्वारा वे यह बताना चाहते हैं कि उच्च तथा अभिजात वंश में उत्पन्न व्यक्ति भी यदि प्रेम के साथ खिलवाड़ करते हैं तो उनका भी शोचनीय अन्त होता है।

डॉ. कीथ का विचार है कि रघुवंश में कालिदास की योगदर्शन की ओर विशेष प्रवृत्ति दिखायी देती है, क्योंकि उन्होंने योगदर्शन की परिभाषिक शब्दावली जैसे 'धारणा', 'वीरासन' तथा 'समाधि' का उल्लेख करने के अतिरिक्त अपने काव्य के नायकों को भी योग द्वारा शरीर परित्याग करते तथा जन्म बन्धन से मुक्त होते बताया है। उन्होंने योग के द्वारा प्राप्त होने वाली अद्भुत शक्तियों का उल्लेख भी किया है जैसे - दरवाजे के बन्द होने पर भी भीतर प्रवेश करने की शक्ति तथा सीता की योग तथा अगले जन्म में अपने पति से पुनर्मिलन की प्राप्ति की कामना आदि।

संस्कृत काव्य शास्त्र की दृष्टि से रघुवंश श्रव्य (अर्थात् वह काव्य जो केवल पढ़ा और सुना ही जाता है, नाटक आदि दृश्य काव्य के समान रंगमंच पर नहीं देखा जाता) काव्य है। वह श्लोकों में बंधा प्रबन्धकाव्य (वह काव्य जिसकी कथावस्तु समग्र एवं अविच्छिन्न चलती है) और संस्कृत के महाकाव्यों की श्रेणी में अग्रगण्य है। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में महाकाव्य का निम्नलिखित लक्षण दिया है-

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंश्यः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।

© DDCE COL SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मृनिस्वर्गपुरध्वराः।।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।
वर्णनीया यथायोग्यं साङ्गोपाङ्गो अमी इह।। (साहित्यदर्पण 6, 315-342)

महाकाव्य सर्गों में विभक्त होती है। इसका नायक देवता अथवा उच्चकुलोत्पन्न क्षत्रिय होता है जिसमें धीरोदात्त गुण होते हैं। कहीं-कहीं एक वंश में उत्पन्न अनेक सत्कुलीन राजा भी नायक होते हैं। शृंगार, वीर, शान्त इनमें से कोई एक रस महाकाव्य का अङ्गी अर्थात् प्रधान रस होता है तथा अन्य सभी रस गौण अर्थात् अप्रधान होते हैं। इसमें सभी नाट्य-सन्धियाँ रहती हैं। इसकी मुख्य कथा या तो ऐतिहासिक होती है अथवा सज्जनाश्रय से सम्बन्धित कोई प्रसिद्ध कथा होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - इस चतुर्वर्ग में से कोई एक महाकाव्य का फल होता है। इसके आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण होता है। इसमें प्रसङ्गानुसार कहीं दुष्टों की निन्दा और कहीं सज्जनों के गुणों का वर्णन होता है। इसमें न बहुत छोटे और न ही बहुत बड़े लेकिन आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमें प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द होता है किन्तु सर्गान्त में भिन्न छंद का प्रयोग किया जाता है । कहीं-कहीं एक सर्ग में एक छंद के प्रयोग की अपेक्षा अनेक छंदों का प्रयोग भी मिलता है। सर्ग के अन्त में अगले सर्ग में आने वाली कथा की सूचना होनी चाहिए । इसमें जहाँ-जहाँ आवश्यक हो, वहाँ-वहाँ संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया (शिकार), पर्वत, (छह) ऋतुएँ, वन, समुद्र, सम्भोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र का जन्म, अभ्युदय (उन्नति), ऐश्वर्य आदि का यथोचित साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए।

यदि हम महाकाव्य की उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करके देखें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकाव्य की परिभाषा में दो भाग हैं - अङ्गी अर्थात् प्रमुख भाग तथा अङ्ग अर्थात् सहायक या गौण भाग । अङ्गी अर्थात् प्रमुख भाग में महाकाव्य के उन आवश्यक गुणों का सन्निवेश होता है जिनके अभाव में काव्य

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

को महाकाव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। इस प्रसंग में यह बात विचारणीय है कि साधारणतया काव्य रचना का प्रयोजन जीवन का उल्लासपूर्ण चित्रण माना जाता है। कवि की कृति तभी महान हो सकती है जबकि उसमें मानव के विस्तीर्ण और नानाविध जीवन का उसके पूर्णरूप में समावेश हो। मानव-जीवन को उसकी समग्रता में जानने के लिए तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं - मानव का व्यक्तित्व, समाज के ढाँचे में उसकी स्थिति, उसका उत्तरदायित्व तथा उसके चारों ओर फैली विशाल प्रकृति से उसका सम्बन्ध। इसीलिए तो महाकाव्य की परिभाषा में एक और नायक, मनोभाव, कथा, सूर्योदय, संध्या, ऋतुओं तथा पर्वतों तथा दूसरी ओर नगरों, विवाहों, युद्धों आदि के वर्णन के विषय में नियमों का विधान किया गया है जिससे मानव जीवन का सम्पूर्ण चित्र विविधता तथा विस्तार के साथ महाकाव्य में उतर सके।

महाकाव्य की परिभाषा का द्वितीय अर्थात् सहायक भाग जिसमें उसके बाह्य आकार या रूप का जो प्रथम भाग की अपेक्षा गौण है, उससे सम्बद्ध है, जैसे - महाकाव्यों में सर्गों की संख्या का निर्धारण तथा एक सर्ग में एक ही छन्द के प्रयोग का विधान आदि। महाकाव्य के विषय में आचार्य दण्डी का कथन समीचीन है कि-

"न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति।" (काव्यादर्श 1.20)

(अर्थात् महाकाव्य में उपर्युक्त परिभाषा में से कुछ अंगों की कमी हो तो भी उसमें दोष नहीं माना जाता।)

इस प्रकार दण्डी के मत में महाकाव्य के उपर्युक्त नियमों में से कुछ नियमों की कमी रह भी जाये तो भी वह ग्राह्य है, उसमें दोष नहीं आता।

रघुवंश में सर्वप्रथम अद्भुत बात यह है कि इस काव्य के पात्रों में से हम किसी एक को इसका नायक नहीं कह सकते। प्रत्युत वैवस्वत मनु के वंश में जन्म लेने वाले अनेक प्रतापी सम्राट् इसके नायक हैं। दिलीप, रघु, राम जैसे यशस्वी राजाओं में धीरोदात्त नायक के सभी गुण जैसे - साहस, संयम, औदार्य आदि विद्यमान हैं।

रघुवंश की कथा सुप्रसिद्ध है तथा रामायण और पुराणों से ग्रहण की गई है। यह कथा अत्यन्त रोचक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी है, क्योंकि इसमें स्त्री पुरुष सभी प्रकार के पात्रों के जीवन के विविध रूपों का चित्रण करते हुए उनके उत्थान और पतन के कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है। जिस राजवंश ने अनेक महान और आदर्श राजाओं को जन्म दिया, उसी के अन्तिम उत्तराधिकारी को बहुत दुर्बल और विलासी चित्रित किया गया है।

इस काव्य का अंगी अर्थात् प्रधान रस तो शृंगार है परन्तु अन्य रसों का - जैसे रघु के दिग्विजय के प्रसंग में वीर, अजविलाप में करुण, रघु के संन्यास में शान्त तथा सरयू नदी के जल में से कुमुद के आविर्भाव में

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

अद्‌भुत रस का प्रयोग भी प्रशंसनीय तथा प्रभावोत्पादक है। इस प्रसंग में 'राइडर' महोदय की निम्नलिखित उक्ति ध्यान देने योग्य है- "हमें रघुवंश को ऐसा काव्य समझना चाहिये जिसमें नैसर्गिक कथा की अपेक्षा उसमें आई अकेली घटनाओं का पाठक पर अधिक प्रभाव पड़ता है।"

रघुवंश में प्रकृति तथा सामाजिक जीवन के विभिन्न रूपों के वर्णनों की प्रचुरता है। जैसे - 13वें सर्ग में समुद्र तथा प्रयाग स्नान में गंगा, यमुना नदियों के संगम का वर्णन, चौथे सर्ग में रघु की दिग्विजय, सातवें सर्ग में इन्दुमती का स्वयंवर, दसवें सर्ग में आखेट विहार तथा 16वें सर्ग में उजड़ी हुई अयोध्या का वर्णन विशेष रूप से उल्लेख के योग्य हैं।

इस महाकाव्य का आरम्भ मंगलाचरण से होता है जिसमें कवि जगत् के माता-पिता भगवान् शिव और भगवती पार्वती को प्रणाम करके उनके प्रति अपनी भक्ति व्यक्त करता है। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, रघुवंश के 19 सर्ग हैं जिनमें कवि ने एक पूरे सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग किया है, केवल सर्ग के अन्तिम श्लोक में परिवर्तन के उद्देश्य से भिन्न छन्द का प्रयोग किया है। इन सर्गों के अन्त में परिवर्तन के उद्देश्य से प्रयुक्त कालिदास के प्रिय छन्द हैं - अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ, मालिनी, वसन्ततिलका तथा पुष्पिताग्रा। सम्पूर्ण महाकाव्य में भाषा मधुर तथा सरल है। यह विविध अलंकारों से विभूषित है जिनमें 'उपमा' अलंकार प्रमुख है। कालिदास में भाषा को अलंकारों से लादने की प्रवृत्ति नहीं है इसके विपरीत वे शब्दालंकारों का तो बहुत कम प्रयोग करते हैं और अर्थालंकारों का भी। अलंकारों का भी अलंकारों के प्रदर्शन के उद्देश्य से नहीं अपितु रस और भाव-पोषण के लिए ही प्रयोग करते हैं। कालिदास की भाषा 'प्रसाद' और 'माधुर्य' इन दो काव्यगुणों से सुशोभित है और इस कारण से उनकी काव्यशैली 'वैदर्भी' मानी जाती है।

इन विशिष्ट गुणों के कारण ही रघुवंश को महाकाव्य का एक आदर्श उदाहरण माना जाता है और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि संस्कृत के आलोचकों ने इसके मूल्य को परखते हुए इसकी प्रशस्ति में यहाँ तक कह दिया है कि-

"क इह रघुकारे न रमते"

अर्थात् कौन है जो रघुकार - रघुवंश के लेखक महाकवि कालिदास द्वारा रचित महाकाव्य में आनन्द से झूम नहीं उठता?

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

2. निम्नलिखित प्रश्नों में सही उत्तर का चयन कीजिए।

   i. रघुवंश में सर्गों की संख्या कितनी है –

   क. 18 ख. 20 ग. 19 घ. 22

   ii. रघुवंश में कौन से वंश के राजाओं का वर्णन मिलता है-

   क. चंद्र वंश ख. सूर्य वंश ग. भरत वंश घ. पुरु वंश

   iii. रघुवंश के प्रथम सर्ग में किस राजा का वर्णन मिलता है

   क. राम ख. अज ग. दिलीप घ. दशरथ

   iv. कालिदास किस रीति के कवि हैं –

   क. वैदर्भी ख. पाञ्चाली ग. गौड़ी घ. लाटी

1.5 राजा दिलीप का चरित्र-चित्रण

© DDCE, COL, SOL

महाकवि कालिदास ने रघुवंश का प्रारम्भ राजा दिलीप के वर्णन से किया है। राजा दिलीप में महाकाव्य के नायक के रूप में निम्न विशेषताएँ प्राप्त होती हैं –

महान व्यक्तित्त्व से युक्त – जिस प्रकार क्षत्रिय धर्म का कर्तव्य शौर्य एवं पराक्रम युक्त होकर अपनी प्रजा का पालन करना होता है उसी प्रकार राजा दिलीप भी शालवृक्ष के समान ऊँचे कद वाले तथा विशाल भुजाओं से युक्त क्षत्रियता को सार्थक करने वाले थे।

"व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजज्ञ्।

आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रों धर्म इवाश्रितः॥" (रघुवंशम् 1/13)

कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न – राजा दिलीप अपने विशाल आकार के समान कुशाग्र एवं तीक्ष्ण बुद्धि से सम्पन्न गहन शास्त्रों के ज्ञाता थे और शास्त्र ज्ञान के द्वारा वे महान् उद्यम(कार्य) को सम्पन्न करते थे और उसमें सफलता प्राप्त करते थे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

"आकारसदृशः प्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।

आगमैः सदृशारम्भः आरम्भसदृशोदयः ॥" (रघुवंशम् 1/15)

शौर्य एवं पराक्रम से युक्त – राजा दिलीप मगरमच्छ के समान भयावह तथा रत्नों के समान मनोरम होने से सबके प्रिय भी थे अतः राजा दिलीप में उत्तम शासक के शौर्य, पराक्रम तथा दया-दाक्षिण्य इत्यादि दोनों गुण विद्यमान थे और उनमें शौर्य एवं दया का समन्वय व्याप्त था ।

"भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम् ।

अधृश्यश्चाभिगम्यश्च यादौरत्नैरिवार्णवः ॥" (रघुवंशम् 1/16)

शास्त्रानुसार आचारण – राजा दिलीप ज्ञान से युक्त होते भी मौन प्रवृत्ति से युक्त थे, शक्ति सामर्थ्य से सम्पन्न होते हुए भी क्षमा, औदार्य आदि गुणों से सम्पन्न थे, दान इत्यादि कार्यों को करने के बाद भी आत्मश्लाघा नहीं करते थे । इस प्रकार वे शास्त्र में बताए हुए क्षमा, मौन, त्याग तथा उदारता इत्यादि गुणों का अनुसरण करने वाले थे ।

"ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।

गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव ॥" (रघुवंशम् 1/22)

प्रजा पालन – राजा दिलीप अपनी प्रजा को सन्मार्ग पर जाने के लिए उन्हें सम्यक् शिक्षा देते थे, विपत्तियों में उनकी रक्षा करते थे तथा राज्य में अन्न-जल की समुचित व्यवस्था कराकर उनका भरण-पोषण भी करते थे। इस प्रकार राजा दिलीप सन्तान के समान उनसे प्रेम करते थे और पिता के कर्तव्य के समान उनका निर्वहण करते थे ।

"प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥" (रघुवंशम् 1/24)

राजा दिलीप प्रजा के कल्याण, उनके भरण-पोषण तथा उनकी रक्षा के उद्देश्य से अपनी प्रजाओं से कर लेते थे जैसे सूर्य पृथ्वी से जल ग्रहण करके उससे हजार गुना बढ़ाकर वर्षा के रूप में प्रदान करते हैं ।

"प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।

सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥" (रघुवंशम् 1/18)

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

3. सत्य एवं असत्य कथन का चयन कीजिए।

i. राजा दिलीप सूर्य वंश में उत्पन्न हुए – ()
ii. राजा दिलीप की पत्नी का नाम सुदक्षिणा था –()
iii. राजा दिलीप प्रजा कल्याणकारी राजा नहीं थे – ()
iv. राजा दिलीप ऋषि वशिष्ठ के आश्रम गये थे – ()
v. राजा दिलीप प्रजा से कर ग्रहण करते थे –()

1.6 सारांश

छात्रो! इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप कालिदास के जीवन परिचय एवं उनकी कृतियों से परिचित हुए। कालिदास संस्कृत साहित्य जगत के मूर्धन्य कवि रहे हैं। कालिदास के जन्मस्थान एवं समय के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिससे उनका समय सम्भवतः प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व माना गया है। कालिदास उपमा अलंकार के मूर्धन्य कवि माने जाते हैं जिनकी 7 रचनाएँ महाकाव्य, नाटक, खण्डकाव्य आदि में प्रसिद्ध हैं। तत्पश्चात् प्रस्तुत पाठ में कालिदास रचित रघुवंश की संरचनात्मक विषयवस्तु से आपको अवगत कराया गया कि इस महाकाव्य में 19 सर्ग तथा 1569 श्लोक हैं। रघुवंश के कथावस्तु को समझाते हुए सूर्यवंश में उत्पन्न रघुवंशी राजाओं के गुणों तथा उनके चरित्रगत विशेषताओं से आपको परिचित कराया गया।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

सद्वंश्य – सत्कुल

वक्ष्ये – कथन

गुणान्वितः – गुणों से युक्त होना

दुष्यति – दोष

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

DDCE, COL, SOL, University

रमते – आनन्द

नैसर्गिक - प्राकृतिक

अकस्मात् – अचानक

परवर्ती – बाद में

1.8 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1. i. विक्रमादित्य ii. कालिदास iii. 7 iv. रानी विद्योत्तमा 2. i. 20 ii. सूर्य वंश iii. दिलीप iv. वैदर्भी	3. i. सही ii. सही iii. गलत iv. गलत v. सही

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

1.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. रघुवंश महाकाव्य है अथवा नहीं, संक्षेप में सप्रमाण उत्तर दीजिए।
2. रघुवंश महाकाव्य को दृष्टि में रखते हुए महाकवि कालिदास की शैली की विवेचना 15 पंक्तियों में करें।
3. निम्नलिखित में से एक श्लोक का अनुवाद करते हुए यह बतायें कि श्लोक किस ग्रन्थ से लिया गया है और इसके लेखक कौन हैं?

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(क) सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।।

(ख) आदो नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
स्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।।

4. महाराज विक्रमादित्य के द्वारा लंका की राज्य सभा में नर्तकी के समक्ष प्रस्तुत समस्या नीचे दी जा रही है, उसकी पूर्ति कालिदास के शब्दों में करते हुए अनुवाद करे।

'कमले कमलोत्पतिः श्रूयते न तु दृश्यते।'

1.10 सन्दर्भ-ग्रंथ

- त्रिपाठी, कृष्णमणि, *रघुवंशम्(मल्लिनाथकृत सञ्जीवनी टीका)*, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011.
- वेलणकर, हरि दामोदर, *रघुवंशम्*, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्, नवदेहली, 2011.
- *अमरकोश*, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, नई दिल्ली, 2011

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य-सामग्री

- शास्त्री, शालिग्राम(व्या-), *साहित्यदर्पण*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2000
- काणे, पी.वी., *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2002
- शर्मा 'ऋषि', उमाशंकर, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 1999

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© *Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi*

पाठ–2

महाकाव्य रघुवंश-प्रथम सर्ग (1.25)- मूल पाठ, अनुवाद तथा टिप्पणियाँ

संरचना

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 पद्यांश की व्याख्या (1-10)

2.3.1 मंगलाचरण

2.3.2 सूर्यवंश(रघुकुल) का वर्णन

2.3.3 कवि की सहृदयता

2.3.4 रघुवंशी राजाओं का वैशिष्ट्य

2.3.5 रघुवंश पाठक की पात्रता

2.4 पद्यांश की व्याख्या (11-25)

2.4.1 वैवस्वत मनु का परिचय

2.4.2 राजा दिलीप का जन्म

2.4.3 राजा दिलीप का व्यक्तित्व वर्णन

2.4.4 राजा दिलीप की राजनीतिक व्यवस्था

2.4.5 राजा दिलीप के गुण

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

2.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

2.9 संदर्भ ग्रंथ

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी-

- पद्यांशों के शब्दार्थ एवं अनुवाद पद्धति को समझ सकेंगे।
- पद्यों के व्याकरणात्मक टिप्पणी का अध्ययन कर सकेंगे।
- कालिदास की भाषाशैली का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- रघुवंशी राजाओं के चरित्रगत विशेषताओं का ज्ञान अर्जन कर सकेंगे।
- सूर्यकुल(रघुवंश) के आदि राजा मनु का परिचय प्राप्त करेंगे।
- राजा दिलीप के गुणों को समझ पायेंगे।
- रघुवंशी राजाओं के पराक्रम एवं प्रभाव को समझ सकेंगे।
- कालिदास की भाषा-शैली का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- व्याकरणात्मक टिप्पणी जैसे-सन्धि, समास इत्यादि का प्रयोगात्मक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में रघुवंश के प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक श्लोकों का अनुवाद एवं उनमें प्रयुक्त विशेष शब्दावली की व्याख्या प्रस्तुत की जाएगी, साथ ही व्याकरणात्मक टिप्पणी जैसे - सन्धि, समास, प्रत्यय इत्यादि का भी वर्णन किया जाएगा। इससे छात्रों को अनुवाद करने की पद्धति का ज्ञान होगा तथा प्रत्येक श्लोक में प्रयुक्त पदों के अर्थों से भी परिचित होंगे जिससे रघुवंश महाकाव्य का अध्ययन सरल एवं सुगम हो सकेगा।

रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भिक दस श्लोकों में ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति हेति मंगलाचरण का अध्ययन किया तत्पश्चात् कालिदास की विद्या सम्बन्धी विनम्रता का अवलोकन करते हुए रघुवंशी राजाओं की वीरता, शौर्य एवं उनकी अनेक विशेषताओं को भी समझा। प्रस्तुत पाठ में रघुवंश के राजाओं में आदि राजा सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु का परिचय प्राप्त होगा और उन्हीं के वंशक्रम को आगे बढ़ाते हुए रघुकुल के चन्द्रस्वरूप अर्थात् राजाओं में श्रेष्ठ राजा दिलीप के व्यक्तित्व से परिचित होंगे और, साथ ही उनकी शासन पद्धति का भी ज्ञान होगा।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.3 पद्यांश की व्याख्या (1-10)

2.3.1 मंगलाचरण

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।1।।

अन्वय - (अहं कालिदासः) वागर्थपतिपत्तये वागर्थाविव सम्पृक्तौ जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ वन्दे।

अनुवाद - शब्द और अर्थ को भली प्रकार समझने के लिए मैं (कालिदास) शब्द और अर्थ की तरह नित्य सम्बद्ध (एकरूप) तथा संसार के माता-पिता पार्वती तथा भगवान् शंकर को प्रणाम करता हूँ।

टिप्पणियाँ - संस्कृत काव्य शास्त्र के आचार्यों के अनुसार महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कार, आशीर्वाद अथवा वस्तुनिर्देशपूर्वक होना चाहिये- **"आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।"** अतः रघुवंश महाकाव्य भगवान् शिव तथा भगवती पार्वती (जगत् के माता-पिता) की वन्दना के साथ प्रारम्भ होता है- **"ग्रन्थारम्भे निर्विघ्नेन ग्रन्थपरिसमाप्तिकामः कविः मंङ्गलाचरणम् करोति।"**

सम्पृक्तौ - सम् उपसर्ग+धातु पृच्+क्त, परस्पर जुड़े हुए, नित्य (अर्थात् अविच्छिेद्य रूप से) सम्बद्ध।

वागर्थाविव - शब्द और उसके अर्थ के समान। वाक् च अर्थश्च वागर्थौ तौ इव। जिस प्रकार शब्द एवं अर्थ का नित्य सम्बन्ध है इसी प्रकार से भगवान् शंकर एवं भगवती पार्वती भी नित्य सम्बद्ध हैं।

शिव पार्वती के प्रतीक के माध्यम से कालिदास ने पुरुष-नारी के अभिन्न सम्बन्ध की महती कल्पना को उजागर किया है। सचमुच कालिदास उस भारतीय मनीषा के प्रतिनिधि व्याख्याता कवि हैं, जो उस अभिन्न इकाई को खोज पाने में समर्थ हुई है जो व्यक्ति-व्यक्ति के देहात्मक द्वैत को इंगित करने वाली इकाई से कहीं अधिक गहरी और अर्थवान् है। यहाँ हमें उस असाधारण पूर्णता की विशद अवधारणा से साक्षात्कार होता है जो व्यक्तिगत अहम् की सीमाओं को लांघ कर एक दूसरे में अपनी सत्यता को प्राप्त करती है। 'अर्धाङ्ग' और 'अर्धनारीश्वर' की जिस कल्पना ने भारतीय कला में मूर्तत्ता प्राप्त की, वह इसी सत्य का प्रमाण है। अन्य स्थलों पर कालिदास कहते हैं-

स्त्रीपुंसौ आत्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ।। (कुमारसम्भव 2.17)

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इसी अवधारणा के समानान्तर वैयाकरण-चिन्तक भर्तृहरि के ग्रन्थ वाक्यपदीयम् में 'शब्दब्रह्म' की दार्शनिक कल्पना हुई जिसने शब्द और अर्थ की अद्वैतता पर बल दिया।

टीकाकार मल्लिनाथ के अनुसार 'वागर्थाविव' एक शब्द है। इस सन्दर्भ में उन्होंने निम्न उद्धरण भी अपनी टीका में अंकित किया है-

"इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वश्चेति वक्तव्यम्।" अव्ययीभाव समास, सम्पृक्तौ का विशेषण।

वागर्थप्रतिपत्तये - शब्द और उसके अर्थ के सम्यक् ज्ञान के लिए। प्रतिपत्ति का अर्थ है- सम्यक् ज्ञान। प्रति उपसर्ग+धातु पद्+क्तिन्। वाक् च अर्थश्च इति वागर्थौ (द्वन्द्व समास) वागर्थयोः प्रतिपत्तिः इति वागर्थप्रतिपत्तिः तस्यै (षष्ठी तत्पुरुष)।

पितरौ - माता च पिता च पितरौ-(एकशेषद्वन्द्व)। सूत्र है- **"पिता माता" (मात्रा सहोक्तः पिता वा शिष्यते)** अर्थात् माता शब्द के साथ पितृ शब्द आये तो विकल्प से केवल पिता शेष रहता है। यहाँ पितरौ शब्द इस तथ्य का सूचक है कि शिव-पार्वती समस्त संसार के जनक, परम कारुणिक तथा इष्ट वस्तुओं के प्रदाता हैं (मल्लिनाथ)। इस श्लोक में उपमा अलंकार है। इस श्लोक में शिव-शक्ति, श्यामतेज एवं गौरतेज की पारमार्थिक अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है। शक्ति के बिना शक्तिमान् की कल्पना भी असंभव है।- **"शिवः शक्त्या युक्तो प्रभवति यदि स्पन्दितुमपि" (सौंदर्यलहरी)।**

2.3.2 सूर्यवंश(रघुकुल) का वर्णन

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।2।।

अन्वय - सूर्यप्रभवः वंशः क्व, अल्पविषया (मम) मतिः च क्व, (अहं) दुस्तरं सागरं मोहात् उडुपेन तितीर्षुः अस्मि।

अनुवाद - कहाँ तो सूर्य से उत्पन्न वंश (रघुकुल) और कहाँ सीमित ज्ञान वाली मेरी बुद्धि (दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है)। तथापि मैं उसे (रघुकुल को) मोहवश (मूर्खतावश) उसी प्रकार पार करना (वर्णन करना) चाहता हूँ जैसे कोई छोटी डोंगी (नौका) से दुस्तर (कठिनता से पार किये जाने योग्य) समुद्र को पार करना चाहता हो।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

टिप्पणियाँ--

क्व - क्व शब्द का दो बार प्रयोग इस तथ्य को प्रकट करता है कि भगवान सूर्य से उत्पन्न रघुवंश (की महत्ता) एवं महाकवि कालिदास की प्रतिभा में महान् अन्तर है। "द्वौ क्वशब्दौ महदन्तरं सूचयथः"। (मल्लिनाथ)

सूर्यप्रभव - सूर्यः प्रभवः यस्य इति सूर्यप्रभवः (बहुव्रीहि), वंश का विशेषण। वह वंश जिसका जन्म (आरम्भ) सूर्य से हुआ है अर्थात् सूर्यवंश (रघुवंश)।

अल्पविषया - अल्पः विषय यस्या सा अल्पविषया (बहुव्रीहि), मतिः का विशेषण । सीमित है विषय जिसका ऐसी मेरी बुद्धि, अर्थात् सीमित ज्ञान रखने वाली मेरी बुद्धि । देखिये- "कवि न होहूं न चतुर कहाऊ"। (तुलसीदास)

तितीर्षुः - तरितुं इच्छुः, (धातु तृ+सन्+उ) तैरने अर्थात् पार करने की इच्छा करने वाला मैं (कालिदास)।

दुस्तरम् - दुःखेन तरितुं शक्यम् 'सागर' का विशेषण। वह समुद्र जिसे पार करना बड़ा कठिन है, कष्ट से पार करने के योग्य। यहाँ दुस्तर सागर से अभिप्राय रघुवंश से है।

उडुपेन - छोटी नौका, डोंगी। यह स्पष्ट संकेत अल्पविषया कवि-बुद्धि से है।

2.3.3 कवि की सहृदयता

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्यामुपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः॥3॥

अन्वय - मन्दः कवियशः। प्रार्थी प्रांशुलभ्ये फले लोभाद् उद्वाहुः वामन इव उपहास्यतां गमिष्यामि।

अनुवाद - लम्बा मनुष्य ही जिस फल को प्राप्त कर सकता है उसे पाने के लोभ से यदि एक बौना (वामन) अपना हाथ ऊपर उठाये तो उसकी हंसी ही होगी। उसी प्रकार मन्द बुद्धि होने पर भी (महान्) कवियों का यह चाहने वाला मैं (भी) उपहास का पात्र ही बनूँगा।

टिप्पणियाँ--

कवियशः प्रार्थी -कवीनां यशः कवियशः तस्य प्रार्थी (तत्पुरुष)। कहा गया है-

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां वशः काये जरामरणजं भयम्।।

प्रांशुलभ्ये - प्रांशुना लभ्ये (तत्पुरुष), 'फले' का विशेषण। वह फल जिसे लम्बे कद का (प्रांशु) मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है। लम्बे मनुष्य द्वारा ही प्राप्य फल।

उद्बाहुः - उद्गतो बाहुः यस्य सः उद्बाहुः (बहुव्रीहि)।

वामनः - बौना, छोटे कद वाला मनुष्य।

लोभात् - लोभ के कारण। 'हेतौ' से हेतु के कारण पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग।

उपहास्यताम् - उप उपसर्ग, धातु हस्+ण्यत्+तल्। उपहास की पात्रता।

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।।4।।

अन्वय - अथवा पूर्वसूरिभिः कृतवाग्द्वारे अस्मिन् वंशे वज्रसमुत्कीर्णे मणौ सूत्रस्य इव मे गतिः अस्तिः।

अनुवाद - (यद्यपि सूर्यवंश का वर्णन कर पाना मेरे लिए कठिन है तथापि) प्राचीन मनीषियों (वाल्मीकि आदि कवियों) ने इस (कुल) का वर्णन करके इसमें वाणी का (प्रवेश) का द्वार खोल दिया है। अतः इस कार्य में मेरा प्रवेश (गति) उसी प्रकार संभव हो गया है जिस प्रकार हीरे की सूई से छिदी हुई मणि में धागा आसानी से प्रविष्ट हो जाता है।

टिप्पणियाँ--

पूर्वसूरिभिः - 'सूरि' का अर्थ है नूतन विचारों का प्रवर्तक, कवि। प्राचीन कवियों- महर्षि वाल्मीकि आदि के द्वारा।

कृतवाग्द्वारे - वाक् एव द्वारम् वाग्द्वारम् (कर्मधारय), कृतं वाग्द्वारं यस्य सः कृतवाग्द्वारः (बहुव्रीहि), तस्मिन् कृतवाग्द्वारे। 'वंशे' का विशेषण; वह सूर्यवंश जिसका वाणीरूप द्वार वाल्मीकि ने रामायण प्रबंध की रचना करके आने वाले कवियों के लिए खोल दिया है। अर्थात् वह सूर्यवंश जिसमें प्रवेश के लिये वाल्मीकि रामायण काव्यद्वार का कार्य करता है। ठीक यही दशा महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित महाभारत की भी है। उसके माध्यम से मेरे (कालिदास) जैसे मन्द बुद्धि कवि का भी उसमें प्रवेश करना सरल हो गया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

वज्रसमुत्कीर्णे - वज्रेण समुत्कीर्णः (सम् उपसर्ग+उत् उपसर्ग+धातुकृ+क्त) वज्रसमुत्कीर्णः (तत्पुरुष), तस्मिन्, वज्रसमुत्कीर्णे। 'मणौ' का विशेषण। वह मणि जिसमें हीरे की कनी से छिद्र कर दिया गया है।

मणि बड़ी कठोर होती है। परन्तु जब उसमें छिद्र कर दिया जाता है तो कोमल धागा भी उसमें आसानी से पिरोया जा सकता है। उसी प्रकार सूर्यवंश की महिमा का वर्णन करना भी कालिदास के लिए अनबिंधमणि में धागा डालने के समान बड़ा कठिन कार्य है। परन्तु जैसे छिद्र हो जाने से मणि में धागा पिरोना सरल हो जाता है उसी प्रकार वाल्मीकि द्वारा सूर्यकुल पर रामायण काव्य की रचना कर देने से इस कठिन काम को भी कर देना अब कालिदास के लिए सरल हो गया है। कवि कालिदास की सूर्य कुल के नृपतियों पर काव्य रचना करने की उच्चाभिलाषा अब फलोन्मुखी हो सकती है क्योंकि आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण की रचना कर उसके लिए मार्गदर्शन कर दिया है। कालिदास के ये वचन उनकी नम्रता तथा शालीनता के सूचक हैं कि महाकवि की क्षमता होने पर भी उन्हें तनिक भी अभिमान नहीं छू गया है। कहा भी गया है-

विद्या ददाति विनयम्, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद् धर्मस्ततः सुखम्।।

सूत्रस्य - तागे (धागा, डोरी) के (समान)

गतिः – गम्+क्तिन् (प्रवेश)

2.3.4 रघुवंशी राजाओं का वैशिष्ट्य

सोऽहमाजन्मशुद्धनामाफलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्।।5।।

अन्वय - सः अहम् आजन्मशुद्धानाम् आफलोदयकर्मणाम् आसमुद्रक्षितीशानाम् आनाकरथवर्त्मनाम् (रघुणाम् अन्वयं वक्ष्ये)।

अनुवाद - वह (मन्दमति) मैं (कालिदास)- जन्म से ही शुद्ध, फल प्राप्ति तथा कर्म में लीन, समुद्रपर्यन्त विस्तृत पृथ्वी के शासक तथा स्वर्ग तक गये हुए रथ के मार्ग वाले (रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा)।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

टिप्पणियाँ--

विशेष - 5 से 9 तक पाँच श्लोक इकट्ठे पढ़ने चाहिये क्योंकि वे परस्पर सम्बद्ध हैं और इन सबके मेल से एक बड़ा वाक्य बन जाता है। इसमें अपने-आप अकेला पद्य अपरिपूर्ण है और उसे अन्वय के लिए अन्य पद्यों की आकांक्षा (अपेक्षा, आवश्यकता) है। संस्कृत में अकेला श्लोक जब अपने में परिपूर्ण होता है और अन्य श्लोक की अपेक्षा नहीं रखता तो ऐसे श्लोक को मुक्तक कहते हैं। परन्तु परस्पर सापेक्ष दो श्लोकों के समूह को युग्मक कहते है। परस्पर सापेक्ष तीन श्लोकों के समूह को 'सन्दानितक' तथा ऐसे ही चार श्लोकों के समूह को 'कपालक' तथा पाँच श्लोकों के समूह को 'कुलक' कहते हैं। यहाँ श्लोक संख्या 5 "सोऽहमाजन्म" - से लेकर श्लोक संख्या 9 "रघूणामन्वयं वक्ष्ये" तक पाँच श्लोकों का समूह 'कुलक' है। पहले चार श्लोक पाँचवें श्लोक "रघूणाम..." से सम्बद्ध हैं। अतः ये पाँचों श्लोक अर्थ को समझने के लिए इकट्ठे ही पढ़े जाने चाहिये। इसका अन्वय इस प्रकार होगा। "सोऽहम् आजन्मशुद्धानाम् रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये" यहाँ 'रघूणाम्' विशेष्य पद है और "आजन्मशुद्धानाम्", "आफलोदयकर्मणाम्" आदि षष्ठी बहुवचनान्त पद 'रघूणाम्' के विशेषण है तथा 'रघूणाम्' इनका विशेष्य है।

आजन्मशुद्धानाम् - आजन्मनः ('आङ् मर्यादाभिविध्योः'। अव्ययीभाव समास) शुद्धाः ये, तेषाम्- आजन्मशुद्धनाम् (सुप्सुपा से समास)। अर्थ है - जन्म से लेकर शुद्ध। सूर्यवंश के सम्राट् जन्म से शुद्ध होते थे क्योंकि उनके गर्भाधान आदि शास्त्रविहित संस्कारों का विधिवत् समुचित काल में अनुष्ठान किया जाता था। संस्कारों से पवित्र होकर उनका जन्म होता था। अतः वे आजन्म शुद्ध होते थे। देखिये- **"उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः। तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।।" (भवभूति-विरचित 'उत्तररामचरितम्')**

आफलोदयकर्मणाम् - फलस्य उदयः, फलोदयः (षष्ठी तत्पुरुष), आ फलोदयात् इति आफलोदयम् (अव्ययीभाव), आफलोदयं कर्म येषां ते, आफलोदयकर्मणाः (बहुव्रीहि), तेषाम्- आफलोदयकर्मणाम्।

वे रघुवंश सम्राट् जो तब तक कार्य करने में जुटे रहते थे जब तक सफलता प्राप्त नहीं होती थी। वे प्रारब्ध या अंगीकृत कार्य को पूर्ण करके ही छोड़ते थे, कभी भी अधूरा नहीं छोड़ते थे। शब्दार्थ है- फल (सफलता) के उदय (प्राप्ति) तक काम करने वाले। देखिये- **"प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्तिः" (नीतिशतक)।**

आनाकरथवर्त्मनाम् - न के कं अकं (सुख का अभाव), न अंक यत्र स नाकः (सुख के अभाव (दुःख) का अभाव=स्वर्ग यहाँ न का अन् में परिवर्तन नहीं हुआ है। आनांक रथवर्त्म येषां (बहुव्रीहि) तेषाम्।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

कालिदास के नायक अत्यन्त पराक्रमी तथा वीर है। स्वर्गलोक में रहने वाले देवताओं, विशेष रूप से इन्द्र को भी उनसे असुरों के नाश में सहायता लेनी पड़ती है। अतः वे बहुधा देवलोक में आते जाते हैं। उनके रथ का मार्ग भूलोक ही नहीं, देवलोक तक फैला है। महाराज दशरथ की कथा तो लोकविश्रुत है। वे देवासुर संग्राम में देवराज इन्द्र के निमन्त्रण पर स्वर्ग से युद्ध के लिए गये। साथ में उनकी रानी कैकेयी भी गयी। वहाँ रथ के पहिये की कील के गिर जाने पर उसने अपने हाथ (अंगुलियों) से रथ की रक्षा की और दो (राम का वनवास और भरत को राज्य प्राप्ति) वर प्राप्त किये।

नाक-स्वर्ग, वत्र्मन्-मार्ग। जिनके रथ का मार्ग स्वर्ग तक गया है।

आसमुद्रक्षितीशानाम् - आसमुद्रात् इति आसमुद्रम् (अव्ययीवभाव) आसमुद्रम्, क्षितीशाः इति आसमुद्रक्षितीशाः, तेषाम्। अर्थ है- समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के राजाओं का। समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर शासन राजाओं का आदर्श होता था। ऐतरेय ब्राह्मण (8, 41) कहता है कि उत्तम राजा वह है जिसके राज्य की सीमा पृथ्वी की प्राकृतिक सीमाओं तक व्याप्त है। क्षितीशानाम्=क्षिति (पृथ्वी) + ईश (स्वामी) पृथ्वी के स्वामी, उनका।

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्।।6।।

अन्वय - यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् (रघूणां अन्वयं वक्ष्ये)।

अनुवाद - विधिपूर्वक अग्नि में हवन करने वाले (यज्ञ करने वाले), याचकों की इच्छानुसार उन्हें (धनादि) देने वाले, अपराध के अनुसार (दुष्टों को) दण्ड देने वाले अथवा ठीक समय पर जागने वाले (प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में जागने वाले तथा समय आने पर सतत जागरूक रहने वाले) - रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा।

टिप्पणियाँ--

यथाविधि - विधिमनतिक्रम्य (अव्ययीभाव)। यथाविधि हुताः अग्नयः यैः ते (बहुव्रीहि) तेषाम्। समास सूत्र- 'सुप्सुपा'। शास्त्रोक्त विधि के अनुसार जिन्होंने अग्नि में हवन किया है। शास्त्रों के अनुसार पवित्र अग्नियाँ दो प्रकार की हैं— श्रौत, जिन्हें वैतान या त्रेता भी कहते हैं और स्मार्त, जिन्हें गृह्य या आवसथ्य भी कहते हैं। इनमें श्रोत अग्नि के तीन रूप हैं- गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिण। परन्तु स्मार्त अग्नि एक ही है। मनु कहते

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

हैं- **"पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः। गुरुराहवनीयस्तु साग्नि त्रेता गरीयसी।"** जब अग्नि का बहुवचन में प्रयोग होता है तब उससे तीन श्रोत अग्नियों का ग्रहण होता है। रघुवंशी राजा परम आस्तिक थे और वे श्रौत अग्नियों का विधिवत् पूजन और हवन करते थे।

यथाकामार्चितार्थिनाम् - काममनतिक्रम्य इति यथाकामम् यथाकामम् अर्चिताः अर्थिनः यैः ते (बहुव्रीहि), तेषाम्। रघुकुल के राजा याचकों को उनकी इच्छानुसार दान देते थे। देखिये- **"यद्यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य कि दीयताम्।" (स्वप्नवासवदत्तम्)।**

यथापराधदण्डानां - अपराधमनतिक्रम्य इति यथापराधम्, यथापराधम् दण्डो येषां ते यथापराधदण्डाः (बहुव्रीहि), तेषाम्। अपराध के अनुसार अपराधी को दण्ड देने वाले। इसमें राजा के कर्तव्य का उल्लेख है कि उसे वेदों तथा धर्मशास्त्र में प्रतिपादित नियमों और कानूनों को प्रजा में पूरी तरह लागू करना चाहिये। शास्त्रोक्त विधि से प्रजा का पालन करते हुए उसे अपराधी को दण्ड देना चाहिये। शास्त्र राजा को दण्ड देने का अधिकार देता है तथा इसी कारण से उसे दण्डधर भी कहते हैं। परन्तु दण्ड के प्रयोग में राजा को सदा सतर्क रहना चाहिये। राजा की जागरूकता और सफलता इस बात में है कि उसके राज्य में कोई भी अपराधी दण्ड से बच न पाए, और अपराधी को अपने अपराध के अनुसार ही दण्ड मिले। रघुवंशी राजा सफल शासक थे, क्योंकि उनके राज्य में अपराधी दण्ड से बच नहीं पाता था और उसे सदा अपराध के अनुसार दण्ड मिलता था।

यथाकालप्रबोधिनाम् - कालमनतिक्रम्य इति यथाकालम्, यथाकालं प्रबोधिनाम् इति यथाकालप्रबोधिनाम्- यथा समय जागते थे। शास्त्रानुसार जागरण का समय ब्राह्ममुहूर्त है। देखिये-

"उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः।
हुताग्निब्राह्मणांश्चाभ्यर्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम्।।"

तथा-**"ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्माथौ चानुचिन्तयेत्।**
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च।।"

विशेष - प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त चार विशेषण सूर्यवंशी राजाओं की चरित्र की चार विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं- वे अग्नि में आहूति डालकर देवताओं को संतुष्ट करते हैं (और वे देवभक्त थे) वे अतिथि पूजा कर मनुष्यों को प्रसन्न करते थे। वे न्याय कर प्रजा में आन्तरिक शान्ति स्थिर रखते थे और वे सदा ब्राह्ममुहूर्त में ही जागते थे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।7।।

अन्वय - श्लोकानुसार ही।

अनुवाद - त्याग (दान) के लिए ही धन का संग्रह करने वाले, सत्य के लिए कम बोलने वाले (कहीं मुख से असत्य न निकल पड़े, इसलिए) अपने यश के लिए (न कि दूसरे राज्य को छीनने के लिए) विजय प्राप्त करने की इच्छा करने वाले, संतानोत्पत्ति मात्र के लिए (न हि कामोपभोग के लिए) गृहस्थ बनने वाले (विवाह करने वाले) रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा।

टिप्पणियाँ--

त्यागाय - वे दूसरों को देने के लिए ही धन का संग्रह करते थे। कुछ ही लोगों की जेब में सारा धन एकत्रित न हो, इस उद्देश्य से प्राचीन भारत में समाज कल्याण के चिन्तकों ने दान की महिमा का बढ़-चढ़ कर वर्णन किया है। दान से धन की शोभा मानी गई है। दान से स्वर्ग प्राप्त होता है। इस प्रकार दान देते रहने से धन एक स्थान पर एकत्रित नहीं होता और निर्धनों को धन मिलने से समाज में शान्ति बनी रहती है। संन्यासाश्रम में प्रवेश करते समय व्यक्ति के लिए 'सर्ववेदस्' यज्ञ करना आवश्यक था, जिसमें उसे अपना सारा सर्वस्व (सम्पत्ति) 'सर्वस्वदान' के रूप में दूसरों को देना पड़ता था। त्याग भावना के लिए देखें "मा गृधः कस्य स्विद्धनम्" (ईशावास्योपनिषद्)। सूर्यवंशी राजा भी इस परम्परा का पालन करते थे। वे धन का स्वयं भोग न कर दूसरों को दान में देकर प्रसन्न होते थे। मल्लिनाथ के अनुसार यहाँ "चतुर्थी तदर्थार्ध बलिहितसुखरक्षितैः" सूत्र से चतुर्थी का प्रयोग अधिक उपयुक्त है।

सम्भृतार्थानां - सम्भृतः (सम उपसर्ग+धातु भृ+क्त) अर्थः यैस्तेः सम्भृतार्थाः (बहुव्रीहि), तेषाम्। जिन्होंने धन एकत्रित किया है (त्यागाय)।

यशसे विजिगीषूणाम् - विजेतुम् इच्छूनाम्। वि उपसर्ग+जि धातु+सन्+उ, षष्ठी बहुवचन। वे यशप्राप्ति के लिए विजय की कामना करते थे, दूसरों का राज्य हड़पने के लिए नहीं। प्राचीन भारत में युद्ध सदा विरोधी राजाओं के राज्य को हड़पने के लिए नहीं किये जाते थे। परन्तु कई बार युद्ध करने वाले का उद्देश्य विरोधी राजाओं पर अपने शौर्य पराक्रम का प्रभुत्व जमाकर अपना यश और नाम फैलाना ही होता था। सूर्यवंशी राजा भी यश के लिए युद्ध करते थे। देखिये- "जीतो मनहि सुनीय अस रामचन्द्र के राज" (तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस')।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

प्रजायै गृहमेधिनाम् - गृह+मेध्+णिनि। गृह का अर्थ है पत्नी- "दारेष्वपि गृहा" (अमरकोश) तथा "जाया च गृहिणी गृहम्" (हलायुध)। गृहमेधिन् का अर्थ है- गृहस्थी, विवाह करके गृहस्थाश्रम में निवास करने वाला। मल्लिनाथ ने इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है- गृहैः दारैः (पत्नियों से) मेधन्ते (मिलते हैं) इति गृहमेधिनः, तेषाम्।

विशेष - ऐसा माना जाता है कि जन्म से लेकर ही प्रत्येक हिंदू को तीन ऋण चुकाने होते हैं- (1) देवऋण (देवताओं का ऋण), (2) पितृऋण (पितरौ का ऋण) और (3) ऋषिऋण (ऋषियों का ऋण)। अग्नि में विभिन्न देवताओं के नाम से आहुति डालकर देवताओं का ऋण चुकता किया जाता है, पितरों को जल अर्पण करके तथा अनुकूल पत्नी से पुत्र को उत्पन्न करके पितरों का ऋण उतारा जाता है। प्रतिदिन स्वाध्याय (वेदों या शास्त्रों का अध्ययन) करने से ऋषियों का ऋण पूरा होता है।

इन विशेषणों से रघुवंशियों का परोपकारित्व, सत्यवचनत्व, यशःपरत्व, पूर्वजों की शुद्धता दर्शाना अपेक्षित है। (मल्लिनाथ)

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।8।।

अन्वय - शैशवे अभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् वार्द्धके मुनिवृत्तिनाम्। अन्ते योगेन तनुत्यजाम् (रघूणां अन्वयं वक्ष्ये)।

अनुवाद - बाल्यकाल में (विविध) विद्याओं को अभ्यास करने वाले, यौवन काल में विषयभोंगों की इच्छा करने वाले, वृद्धावस्था में मुनियों का-सा जीवन बिताने वाले तथा अन्त में योग (समाधि) द्वारा शरीर का त्याग करने वाले-रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा।

टिप्पणियाँ--

शैशवे - प्रस्तुत श्लोक में जीवन की चार दशाओं अर्थात् चार आश्रमों का निर्देश किया गया है। सूर्यवंशी राजा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास का शास्त्रोक्त रीति से पालन करते थे। हिंदू धर्मशास्त्र के अनुसार इन चार आश्रमों का पालन पुरुष का सबसे बड़ा परमार्थ माना जाता है। जीवन की प्रथम अवस्था ब्रह्मचर्य आश्रम है जो विद्यार्थी जीवन की दशा है, जिसमें विद्या का अध्ययन कर जीवन की आगामी आश्रमों के लिए तैयार किया जाता है। इस आश्रम में बालक प्रायः अपने गुरु के पास रहता है, घर में नहीं। जीवन की

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

द्वितीया अवस्था है गृहस्थाश्रम अर्थात् वैवाहिक जीवन की दशा। विद्या समाप्ति के पश्चात् ब्रह्मचारी अनुकूल कन्या से विवाह कर लौकिक दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करता है। इस आश्रम में वह धर्म का उल्लंघन न करते हुए 'अर्थ' और 'काम' को प्रमुख रूप से उपार्जित करता है। जीवन की तीसरी दशा वानप्रस्थ आश्रम है, जिसमें पुरुष वनवासी ऋषि का जीवन व्यतीत करता है। यह आश्रम वह भूमि है जिसके आधार पर साधक अपने को अंतिम और पूर्ण त्याग के लिए तैयार करता है। इस आश्रम में धीरे-धीरे अर्थ और काम से विरक्त होता हुआ पूर्ण रूप से धर्म का ही अनुष्ठान करता है। जीवन की अन्तिम दशा 'संन्यासाश्रम' है। इस आश्रम में पुरुष परिवार व समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व से पूरी तरह मुक्त हो जाता है। अब उसका एकमात्र उद्देश्य 'मोक्ष' (अर्थात् संसार के बन्धन या जन्म मरण के चक्र से छूट जाना) रह जाता है। आश्रम व्यवस्था हिंदुओं की आदर्श जीवन पद्धति है। सूर्यवंशीय राजाओं ने इसका अनुसरण किया है। इससे उन राजाओं की वर्णाश्रम धर्म के पालन में आस्था प्रकट होती है।

शैशवे - शिशोर्भावः। शिशु+अञ् सप्तमी एक वचन। बालकपन से अर्थात् ब्रह्मचर्य अवस्था में।

अभ्यस्तविद्यानाम् - अभ्यस्ता विद्या यैस्तै अभ्यस्तविद्याः तेषाम्। निम्नलिखित सब विद्याएँ राजाओं के लिए आवश्यक हैं- आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति (चाणक्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र)।

यौवनम् - यूनो भावः। वार्द्धकम्। वृद्ध वुञ्+वृद्धावस्था।

मुनीवृत्तिनां - मुनीनां वृत्तिरिव वृत्तियेषां ते मुनिवृत्तयः, तेषाम्। मुनिभाव अर्थात् संन्यास।

तनुत्यजाम् - तनुं देहं त्यजन्ति इति तनुत्यजः, तेषाम्। उपपद तत्पुरुष। तनु+त्यज्+क्विप्, षष्ठी बहुवचन।

योगेन - योग, ईश्वर ध्यान के माध्यम से।

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।।9।।

अन्वय - तनुवाग्विभवोऽपि सन् तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः (अहम्) रघुणाम् अन्वयं वक्ष्ये।

अनुवाद - यद्यपि मेरी वाणी का वैभव (वर्णनशक्ति) कम है तथा (पूर्वोक्त गुणों से युक्त) रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा जिनके गुणों ने मेरे कान में जाकर इस चपल कार्य (रघुवंश काव्य-रचना) को करने के लिए प्रेरित किया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

टिप्पणियाँ--

वाग्विभवः - वाचां विभवः वाग्विभवः (षष्ठी तत्पुरुष), तनुवाग्विभवः यस्य सः (बहुव्रीहि) तुनवाग्विभवः। यद्यपि मेरी वाणी का (रघुकुल के वर्णन का) वैभव (सामथ्र्य) थोड़ा है, अर्थात् सूर्यकुल का वर्णन करने का सामथ्र्य कम होने पर भी। शब्दार्थ-ज्ञान-सामथ्र्य अल्प होने पर भी।

अन्वयम् - कुल को, वंश को।

कर्णमागत्य - मेरे कानों में आकर, कानों में पड़ने पर। भाव यह है कि रघुवंशियों के गुणों को अनवरत सुनते रहने के कारण ही महाकवि कालिदास उनके वंश के वर्णन की ओर आकृष्ट हुए हैं।

चापलाय - चपल+अण्। यहाँ "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" सूत्र से चतुर्थी का प्रयोग हुआ है- अर्थ है चंच, उपहसनीय काम के लिए। भाव यह है जब मैं एक ओर सूर्यवंश की महत्ता को तथा दूसरी ओर अपनी वाणी की दुर्बलता को देखता हूँ तो मुझे दोनों में बड़ा अन्तर दिखाई देता है। यह जानते हुए भी मैं रघुकाव्य की रचना में इसलिए उत्सुक हूँ कि सूर्यवंशी प्रतापी राजाओं के गुण सुन लेने के बाद (मैं उनसे उतना प्रभावित हो गया हूँ कि) अब मुझसे उनकी प्रशंसा में कुछ कहे बिना नहीं रहा जा सकता है। उनके गुणों के आख्यान में मेरे मुख से निकले उद्गार भले ही तुच्छ क्यों न हो और लोग इसे मूर्खता का काम कहकर इस पर भले ही हंसे, परन्तु मैं कुछ कहे बिना चुप नहीं रह सकता।

विशेष - इस सन्दर्भ में यह बात ध्यान देने योग्य है कि महाकवि कालिदास ने इन श्लोकों में एक आदर्श राजा का रूप हमारे सामने उपस्थित किया है। यही आदर्श आने वाले 13-30 के श्लोकों में और अधिक स्पष्ट हुआ है।

प्रचोदितः - प्र उपसर्ग+धातु चुद्+णिच्+क्त। उद्यत कर दिया गया।

2.3.5 रघुवंश पाठक की पात्रता

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्यक्तिहेतवः।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा।।10।।

अन्वय - तं सदसद्वयक्तिहेतवः सन्तः श्रीतुमर्हन्ति हि हेम्नः विशुद्धिः श्यामिका अपि वा अग्नौ संलक्ष्यते।

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अनुवाद - (मेरे द्वारा लिखा जाने वाले) इस रघुवंश महाकाव्य को भले बुरा की पहचान कर सकने वाले सज्जन ही सुन सकते हैं, क्योंकि सोने की शुद्धता अथवा मलीनता (खरा अथवा खटा होना) की परीक्षा उसे अग्नि में (डालने) से हो ही सकती है।

टिप्पणियाँ--

सदसद् - सत् च असत् च सदसती (द्वन्द्व), सदसतोः व्यक्ति इति सदसद्वांक्तिः (षष्ठी तत्पुरुष), सदसद् व्यक्तेः, हेतवः इति सदसद्व्यक्तिहेतवः। सज्जन और विद्वान व्यक्ति ही अच्छे और बुरे, शुद्ध और अशुद्ध में भेद करने में समर्थ हैं। ऐसे पारखी ही मेरे काव्य की परीक्षा कर सकते हैं। देखिये- "आपरितोषाद्विदुषां न साधुमन्ये प्रयोगविज्ञानम्" (अभिज्ञानशाकुन्तलम्)।

हेम्नः - हेमन्, षष्ठी एक वचन।

श्यामिका - खोट, मिलावट। सोने में पीतल या लोहा जैसी हल्की और सस्ती धातु का मिश्रण। भाव यह है कि जैसे सोने के पारखी जौहरी ही खरे और खोटे सोने में भेदकर उसकी परीक्षा करने में समर्थ होते हैं, वैसे ही महाकाव्य के गुण दोष की परख करने वाले विद्वान ही मेरे महाकाव्य रघुवंश के गुण-दोष की परीक्षा कर इसकी प्रशंसा या निन्दा कर सकते हैं। वे ही इसके सुनने के अधिकारी हैं।

संलक्ष्यते - सम् उपसर्ग+धातु लक्ष्+कर्मणि लट्। जाँची जाती है, परीक्षा की जाती है।

पाठ्य प्रश्न

1. वागर्थाविव सम्पृक्तौ....पार्वतीपरमेश्वरौ। उक्त मंगलाचरण में किसकी वन्दना की गई है ?

   i. सरस्वती ii. ब्रह्मा iii. विष्णु iv. शिव-पार्वती

2. पितरौ में कौन सा समास है –

   i. एकशेष द्वन्द्व समास ii. तत्पुरुष समास iii. कर्मधारय समास iv. द्विगु समास

3. मंगलाचरण कितने प्रकार का माना गया है –

   i. 4 ii. 3 iii. 2 iv. 1

4. रघुकुल किस वंश से सम्बन्धित है –

   i. चन्द्रवंश ii. सूर्यवंश iii.पुरु वंश iv. भरतवंश

SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.4 पद्यांश की व्याख्या (11-25)

2.4.1 वैवस्वत मनु का परिचय

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।।11।।

अन्वय - छन्दसां प्रभव इव मनीषिणाम् माननीयः महीक्षिताम् आद्यः वैवस्वतो नाम मनुः आसीत्।

अनुवाद - वेदों के ओंकार के समान विद्वानों में पूजनीय, राजाओं में सर्वप्रथम (सूर्यपुत्र), वैवस्वत् नामक मनु हुए।

टिप्पणियाँ--

मनीषिणाम् - मनसः ईषिणः मनीषिणः, तेषाम्। मल्लिनाथ के अनुसार यह पृषोदरादिगण का समास है। भट्टोजिदीक्षित के अनुसार यह शकन्ध्वादिगण का समास है।

वैवस्वतः - विवस्वतः (सूर्यस्य) अपत्यं पुमान् इति। विवस्वत्+अण्। विवस्वान् सूर्य का पुत्र

महीक्षिताम् - पृथ्वी पर शासन करने वाले राजाओं का। मही+क्षि+क्विप् तथा तुगागम।

छन्दसाम् - वेदों का।

प्रणवः - वैदिक ऋचाओं के प्रारम्भ में ओंकार अक्षर। मनु कहते हैं- "ब्रह्मचारी को वेदपाठ करते हुए प्रत्येक ऋचा के आरम्भ तथा अन्त में 'ओम्' इस अक्षर का अवश्य उच्चारण करना चाहिये।" क्योंकि ऐसी मान्यता है कि ऋचा के आरम्भ में 'ओम्' का उच्चारण न किया जाये तो छात्र अपनी सभी विद्या को भूल जाता है। यदि वह उसका अन्त में उच्चारण न करे तो उसका विनाश हो जाता है। ओम् शब्द 'त्रिमूर्ति' का प्रतिनिधि है। अ, उ, म् क्रमशः विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा के प्रतिनिधि हैं-

अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवस्तु त्रयो मताः।।

जैसे ऋचाओं के आरम्भ में 'ओं' आता है वैसे ही वैवस्वत मनु सूर्यकुल के आदि पुरुष थे। ये राजाओं में प्रथम थे।

आद्यः - आदौ भव आद्यः, आदि+यत्, प्रथम।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

2.4.2 राजा दिलीप का जन्म

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव।।12।।

अन्वय - शुद्धिमति तदन्वये शुद्धिमत्तरः दिलीप इति राजेन्द्धः क्षीरनिधौ इन्दुः इव प्रसूतः।

अनुवाद - जिस प्रकार क्षीर सागर से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उसी प्रकार उन्हीं (सूर्यपुत्र मनु) के निर्मल वंश में उनसे भी अधिक कान्तिमान्, राजाओं में चन्द्रमा (श्रेष्ठ) दिलीप नामक राजा हुए।

टिप्पणियाँ--

शुद्धिमति - शुद्धि+मतुप् (शुद्धि वाले में), सप्तमी विभक्ति एकवचन। इस शुद्ध वंश में।

शुद्धिमत्तरः - शुद्धिमत्+तरप्। विशेषण के साथ तरप् तथा ईयसुन् का प्रयोग होता है यदि विशेष्य अभिधा अथवा व्यञ्जना से वर्णित हो। यहाँ शुद्धिमत् विशेषण चन्द्रमा के साथ प्रयुक्त हुआ है। दिलीप अपने वंश से अधिक पवित्र है और चन्द्रमा क्षीरनिधि से उत्पन्न सभी रत्नों से अधिक पवित्र है।

राजेन्दुः - इन्दु शब्द का प्रचलित अर्थ चन्द्रमा है, परन्तु यहाँ 'श्रेष्ठ' अथवा 'उत्तम' में प्रयुक्त हुआ है दिलीप अति प्रसिद्ध श्रेष्ठ राजा हुए। देखिये- 'सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः' (अमरकोश)। ये शब्द "श्रेष्ठ शब्द के अर्थवाचक हैं।"

क्षीरनिधौ इव - जैसे दूध के समुद्र में चन्द्रमा उत्पन्न होता है वैसे ही नृपों में श्रेष्ठ महाराज दिलीप सूर्यकुल (रघुवंश) से उत्पन्न हुए।

इन्दुरिव - पौराणिक परम्परा के अनुसार देवों और असुरों द्वारा समुद्र मन्थन किये जाने पर जिन चैदह रत्नों उत्पत्ति हुई उनमें से चन्द्रमा भी है। यहाँ उपमा अलंकार है। मनुकुल और क्षीरसागर में साधारण धर्म है अतिशुद्धता और चन्द्रमा तथा दिलीप में आह्लादकत्व।

2.4.3 राजा दिलीप का व्यक्तित्व वर्णन

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रों धर्म इवाश्रितः।।13।।

अन्वय - व्यूढोरस्कः वृषस्कन्धः शालप्रांशः महाभुजः आत्मकर्मक्षमं देहं आश्रितः क्षात्रः धर्म इव (स्थितः)।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अनुवाद - चौड़ी छाती वाले, बैल के समान उठे हुए कन्धों वाले, शालवृक्ष के समान (कद में) ऊँचे तथा लम्बी भुजाओं वाले दिलीप ऐसे लगते थे मानो स्वयं क्षत्रिय धर्म ने अपने कर्तव्य के अनुरूप शरीर धारण कर लिया हो।

टिप्पणियाँ--

विशेष – 13 से 15 श्लोकों तक महाराज दिलीप के व्यक्तित्व का वर्णन है।

व्यूढोरस्कः – व्यूढं उरः यस्य सः व्यूढोरस्कः (बहुव्रीहि)। व्यूढ=वि उपसर्ग+वह+धातु "उरः प्रभृतिभ्यः कप्" से व्यूढोरस्कः में कप् का आगम। विशाल छाती वाला।

वृषस्कन्धः – वृषस्य स्कन्ध इव यस्यः सः (बहुव्रीहि)। वृष के समान दृढ़ तथा उभरे हुए उन्नत कन्धों वाला।

शालप्रांशुः – शाल इव प्रांशु (उपमितकर्मधारय)। शाल नामक वृक्ष के समान प्रांशु-लम्बा।

आत्मकर्म – दुर्बल एवं पीड़ित व्यक्तियों की रक्षा करना क्षात्र धर्म है। देखिये "क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढः" (रघुवंश)। परन्तु क्षात्र धर्म का पालन वही कर सकता है जो बलिष्ठ हो और लम्बे चौड़े परिपुष्ट शरीर को धारण करता हो जैसे दिलीप थे। अतएव कवि कल्पना करता है दिलीप के चैड़े वक्षस्थल, चैड़े उन्नत स्कन्ध और लम्बे शरीर को देखकर प्रतीत होता था मानो दुर्बलों और पीड़ितों की रक्षा करने के लिए क्षात्र धर्म ही साक्षात् दिलीप के शरीर में अवतरित हो गया हो। इसी प्रकार भगवान् राम को मूर्तिमान धर्म माना गया है- "रामो विग्रहवान् धर्मः।"

महाभुजौ – महान्तौ भुजौ यस्य यः (बहुव्रीहि)। विशाल (महान्) बाहों वाला।

क्षात्रः – क्षत्रस्य अयमिति क्षात्रः। क्षत्र+अण्।

सर्वातिरिसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना।।14।।

अन्वय – सर्वातिरिक्तासरेण सर्वतेजोऽभिभाविना सर्वोन्नतेन आत्मना मेरुरिव उर्वीं क्रान्त्वा स्थितः।

अनुवाद – सबसे अधिक बलशाली, तथा अपने तेज से सबको अभिभूत (तिरस्कृत) कर देने वाले (राजा दिलीप) सबसे ऊँचे अपने शरीर से पृथ्वी को इस प्रकार आक्रांत (अधिकृत) कर लिया था, जिस प्रकार सुमेरु पर्वत अपने दृढ़, तेजस्वी तथा उन्नत आकार से सारी पृथ्वी को व्याप्त करके स्थिर रहता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

टिप्पणियाँ--

प्रस्तुत श्लोक में आत्मा (शरीर) की विशेषता बताने वाले तृतीया विभक्ति एक वचनान्त पद हैं।

सर्वातिरिक्तसारेण – सर्वेभ्य अतिरिक्तः सारः यस्यः सः (बहुव्रीहि) तेन; राजा दिलीप ऐसे शरीर को धारण किये हुए थे जो सब प्राणियों से अधिक बलवान् था।

सर्वतेजोऽभिभाविना – सर्वं च तत्तेजः इति सर्वतेजः (कर्मधारय), सर्वतेजः अभिभूतवान् इति अथवा 'सर्वाणि भूतानि तेजसा अभिभवति इति सर्वतेजोऽभिभावी, तेन सर्वतेजोऽभिभाविना', ऐसा शरीर जो तेज में सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ा था अर्थात् सबसे अधिक तेजस्वी था।

क्रान्त्वा – धातु क्रम्+क्तवा।

मेरु – मेरु पर्वत भी अपनी शक्ति तेज और आकार से पृथ्वी को व्याप्त करके स्थिर है। सुमेरु पर्वत सुवर्ण का आगार है अतएव अत्यधिक प्रभावान् है। सुमेरु का सार (धातु आदि) अन्य पर्वतों के सार से बढ़ा-चढ़ा है। सुमेरु के समान अन्य कोई पर्वत ऊँचा नहीं है। राजा दिलीप की सुमेरु पर्वत से उपयुक्त ही तुलना की गई है।

आकारसदृशः प्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः।।15।।

अन्वय - आकारसदृशः प्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः, आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः (स आसीत्)

अनुवाद - जैसे उनका आकार (विशाल शरीर) था वैसी ही उनकी बुद्धि (कुशाग्र) थी, जैसी उनकी (तीक्ष्ण) बुद्धि थी वैसा ही उन्हें शास्त्रों का (गहन) ज्ञान था, जैसा (गम्भीर) उनका शास्त्रज्ञान था वैसे ही (महान्) उनका उद्यम था और जैसे उनके (महान्) उद्यम (कर्म) थे वैसे ही उन्हें सफलता मिलती थी।

टिप्पणियाँ--

आकारसदृशः प्रज्ञः - शरीर में ब्रह्मा रूप, बाह्य आकृति। उन्नत शरीरानुकूल दिव्य बुद्धि (ज्ञान)।

सदृशः - अनुरूप। जैसा आकार था उसके अनुरूप ही उसकी बुद्धि थी। आकारेण सदृशी प्रज्ञा यस्य सः (बहुव्रीहि)।

आगमः - आ उपसर्ग+धातु + गम्+अप्; वेद एवं तदनुकूल शास्त्रों का अध्ययन, ज्ञान, विद्या।

आरम्भः - आ उपसर्ग+धातु रभ्+घञ्; प्रयत्न, उद्योग, कर्म। उसके ज्ञान (आगम) के समान ही उसकी योजनाएं तथा कार्य महान् थे। प्राप्त शास्त्रीय विद्याओं के अनुरूप ही उनका आरम्भ था।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

उदयः - उत् उपसर्ग+धातु इ+अय्; सफलता, सिद्धि। उसकी योजनाओं के अनुसार ही उसकी सिद्धि थी।

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृश्यश्चाभिगम्यश्च यादौरत्नैरिवार्णवः।।16।।

अन्वय - भीमकान्तैः नृपगुणैः स उपजीविनां यादोरत्नैः अर्णव इव अधृश्यः च अभिगम्यः च बभूव।

अनुवाद - जिस प्रकार समुद्र मगरमच्छ आदि भयंकर जल जन्तुओं के कारण दूर ही रहने योग्य तथा रत्नों के कारण आश्रयणीय (समीप जाने योग्य) होता है उस प्रकार तेज प्रताप आदि भयंकर तथा दया दाक्षिण्यादि मनोहर राजकीय गुणों के कारण वे (राजा दिलीप) भी (लोगों के लिए) भयावह और आकर्षक दोनों थे।

टिप्पणियाँ--

विशेष - राजा में ऐसी विशेषता होनी चाहिये कि लोग उसका भय भी मानें तथा उससे प्रेम भी करें। यदि राजा से भय न हो तो लोग राज्य की मर्यादाओं का पालन नहीं करेंगे और यदि राजा से प्रेम न तो लोग उदासीन रहेंगे और हृदय से उसे नहीं चाहेंगे। दिलीप में दोनों ही गुण थे। उसके शौर्य, पराक्रम आदि गुणों के कारण शत्रु उसके पास जाते डरते थे और उसके दया, दाक्षिण्य क्षमा आदि गुणों के कारण मित्र तथा याचक उसका आश्रय लेते थे और उससे अनुराग करते थे। राजा के लिए भीम एवं कान्त उभयगुणात्मक होना परमाश्वयक है।

भीमकान्तैः - भयानक भी आकर्षण भी। दिलीप में दोनों ही गुण थे। दोनों प्रकार के गुणों की विद्यमानता प्रजाजन के धर्मपालन में सन्तुलन लाती थी।

अधृष्यः - न धृष्यः (धातु धृष्+यत्); वह जिसे तिरस्कृत न किया जा सके। दिलीप का भय माना जाता था।

अधिगम्यः - अभि उपसर्ग+धातु गम्+यत्, जिसके पास पहुँचा जा सके, जो दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। प्रजाजन का वह प्रेम एवं समादर का पात्र भी था।

यादो - यादांसि च रत्नानि च इति यादोरत्नानि (द्वन्द्व) तैः, भयानक जल-जन्तु मगरमच्छ ("यादांसि जलजन्तवः" अमरकोश)। रत्नैः- मणि-मौक्तिकादि।

जिस तरह लोग भयंकर जल जीवों के कारण समुद्र से दूर रहते हैं और उसके पास जाने से डरते हैं परन्तु सुन्दर रत्नों के कारण उसके पास आते हैं और उसमें प्रवेश करते हैं, वैसे ही राजा दिलीप के शौर्य,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पराक्रम आदि गुणों से लोग उससे भयभीत रहते थे परन्तु उसके दया दाक्षिण्य आदि गुणों के कारण उसके समीप आते थे और उससे प्रेम करते थे।

रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम्।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः।।17।।

अन्वय - नियन्तुः तस्य नेमिवृत्तयः प्रजा आमनोः क्षुण्णात् वर्त्मनः परं रेखामात्रमपि न व्यतीयुः।

अनुवाद - जिस प्रकार कुशल सारथि द्वारा चलाये गये रथ के पहिये बने हुए मार्ग से तनिक भी बाहर नहीं जाते, उसी प्रकार योग्य शासक दिलीप द्वारा शासित प्रजा भी मनु से आरम्भ हुए आचार मार्ग से तिलमात्र भी विचलित नहीं होती थी।

टिप्पणियाँ--

नियन्तुः - शासक दिलीप की या रथचालक का। नि+यम्-तृच् षष्ठी एक वचन।

नेमिवृत्तयः प्रजा - दिलीप की प्रजा जिसका व्यवहार रथ के चक्र (पहिये) के समान था। भाव यह है कि जिस प्रकार कुशल सारथि से चलाये गये रथ के पिछले पहिये अगले पहिये के बने हुए मार्ग से रेखा मात्र (थोड़ा भी) बाहर नहीं जाते, उसी प्रकार कुशल शासक दिलीप की प्रजा भी भगवान् मनु द्वारा 'मनुस्मृति' नामक आचार संहिता में व्यवस्थापित आचार पद्धति से तिल मात्र भी विचलित नहीं होती थी। सारी प्रजा नियमों का पालन करती थी।

आमनोः - मनुम् आरभ्य, मनु के समय से लेकर।

न व्यतीयुः - वि उपसर्ग+अति उपसर्ग+धातु इ+लिट्, अन्य पुरुष बहुवचन। उल्लंघन नहीं करती थी। स्वधर्म पालन में सदा (प्रजा) तत्पर रहती थी।

क्षुण्णाद् वर्त्मनः परम् - व्यवस्थापित या बने हुए मार्ग से बाहर। रथ के पक्ष में- बने हुए रास्ते से; राजा दिलीप के पक्ष में - मनु के समय से अभ्यस्त धर्म मार्ग से।

2.4.4 राजा दिलीप की राजनीतिक व्यवस्था

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।18।।

अन्वय - स प्रजानां भूत्यर्थमेव ताभ्य बलिम् अग्रहीत्, हि रविः सहस्रगुणम् उत्स्रष्टुं रसम् आदत्ते।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अनुवाद - जिस प्रकार सूर्य हजार गुना बढ़कर (वापस) देने के लिए ही (पृथ्वी से) रस (जल) खींचता है, उसी प्रकार राजा दिलीप भी प्रजा के कल्याण के लिए ही उससे कर लेते थे।

टिप्पणियाँ--

बलिम् - कर, शुल्क, टेक्स। हिंदुओं के अर्थशास्त्र के अनुसार उपज का छठा भाग राजा का भाग माना गया है जिसे हजार गुना करके वह अपने सुख और आराम पर व्यय न कर प्रजा के कल्याण के कार्यों (कुएं खुदवाना, अस्पताल खोलना आदि) पर व्यय करता है।

उत्स्रष्टुम् - उत् उपसर्ग+धातु सृज्+तुमुन्, वापस दे देने के लिए लौटा देने के लिए।

सहस्रगुणम् - हजार गुना। जिस प्रकार सूर्य भगवान् जिस जल को पृथ्वी आदि से सुखाकर ले लेते हैं, उसी को सहस्त्रगुणम् कर पुनः वर्षा के रूप में लौटा देते हैं, ठीक उसी प्रकार महाराज दिलीप भी प्रजा द्वारा दिये गये कर को हजार गुना कर प्रजा के कल्याण के लिए लगा देते थे। "त्यागाय सम्भृतार्थानाम्।" (रघुवंशम्)

सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम्।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता।।19।।

अन्यव - तस्य सेना परिच्छ (आसीत्)। शास्त्रेषु अकुण्ठिता बुद्धिः धनुषि आतता मौर्वी च, द्वयमेव अर्थसाधनम् (अभूत्)।

अनुवाद - राजा दिलीप की सेना तो केवल उनकी शोभा के लिए ही थी, क्योंकि उनके प्रयोजन (की पूर्ति) के साधन दो ही थे- शास्त्रों में अकुण्ठित (तीक्ष्ण) बुद्धि तथा धनुष पर चढ़ी डोरी।

टिप्पणियाँ--

सेना परिच्छदः - राजा दिलीप की सेना रक्षा के कार्य के लिए न होकर चामर के समान केवल उनकी शोभा और वैभव बढ़ाने के लिए थी, क्योंकि वे इतने दूरदर्शी और बलिष्ठ थे कि अकेले ही सब कार्य कर सकते थे। सेना तो वे रक्षा आदि किसी प्रयोजन के लिए नहीं अपितु शोभा के उद्देश्य के लिए रखते थे। सेना के दो ही मुख्य कार्य हैं- बाह्य आक्रमण से रक्षा तथा आन्तरिक अव्यवस्था को रोकना। महाराजा दिलीप का इतना प्रभाव था कि अन्य राजा उनके राज्य पर आक्रमण करने का साहस ही नहीं करते थे। साथ ही वे इतने नीतिकुशल तथा प्रजापालक थे कि प्रजा में अशान्ति की कोई सम्भावना ही नहीं थी। अतः इन दोनों में से कोई भी कार्य न होने से उनकी सेना केवल अलङ्करण मात्र ही थी।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

द्वयम् - राजा के सभी कार्य केवल दो चीजों- उनकी सूक्ष्मदर्शी बुद्धि और उनकी धनुष पर चढ़ी डोरी-से ही सिद्ध हो जाते थे। उन्हें सेना की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। भाव यह है कि चक्रवर्ती दिलीप में नीति और शक्ति दोनों का समन्वय था। नीति के बिना अकेली उनकी शक्ति प्रवृत्त नहीं होती थी। अतएव उन्हें सदा सफलता प्राप्त थी। कहा भी है - **"कातर्यं केवला नीतिः, शौर्यं श्वापदचेष्टितम्"- रघुवंश, 17, 47।**

अकुण्ठिता - वह बुद्धि जो मन्द नहीं होती थी अर्थात् जो सूक्ष्मदर्शी थी।

आतता - आ उपसर्ग + धातु तन् + क्त+टाप्। (धनुष पर) चढ़ी हुई

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव।।20।।

अन्वय - संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च तस्य प्रारम्भाः प्राक्तनाः संस्काराः इव फलानुमेयाः (बभूवुः)।

अनुवाद - सब प्रकार के मंत्रों (विचारणाओं) को गुप्त (संवृत) रखने वाले तथा (भंवे तरेरना, मुख लालिमा आदि क्रोध, हर्ष आदि के सूचक) बाह्य शारीरिक चिन्हों तथा हृदयगत आंतरिक भावों को भी छिपा लेने वाला राजा दिलीप के (समस्त राजनीतिक सामादि) उपाय पूर्वजन्म के संस्कारों के समान फल (परिणाम) से ही जाने जाते थे। (जैसे फलों को ही देखकर मनुष्य के पूर्वजन्म के संस्कारों का अनुमान लगाया जाता है कि पहले अच्छे व बुरे कार्य किये होंगे वैसे ही जब दिलीप के साम-दाम-दंड-भेद आदि उपाय सफल हो जाते थे तभी लोगों को ज्ञात होता था कि राजा ने इन उपायों को पहले आरम्भ किया होगा।)

टिप्पणियाँ--

सफलता के लिए राज-मंत्र या राजनीति का नितान्त गुप्त रहना अत्यन्त आवश्यक है। राजा को इतना कुशल होना चाहिये कि उसकी मुखमुद्रा, आकार-प्रकार आदि देखकर भी लोग उसके मन के गुप्त के भाव को समझ न सकें। जो बात उसके मन में है वह सदा गुप्त ही रहनी चाहिये, किसी प्रकार भी प्रकट नहीं होनी चाहिये। केवल कार्य सिद्ध हो जाने पर ही वह प्रकट होनी चाहिये, उससे पूर्व नहीं। राजा दिलीप मंत्र-रक्षा में कुशल थे। अतएव कार्यसिद्ध हो जाने पर ही लोगों को उनकी नीतियों का भेद पता चलता था, उससे पूर्व नहीं। इसी प्रकार का विचार भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य में ही व्यक्त हुआ है--

"महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः, प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः।" (किरातार्जुनीयम् 1.20)

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

संवृतमन्त्रस्य - संवृतः मन्त्रः येन सः संवृतमन्त्र (बहुव्रीहि)। जिसकी नीतियाँ या मन्त्रणाएँ सदा गुप्त रहती थीं गूढाकारेङ्गिगतस्य- 'आकारश्च इङ्गितश्च आकारेङ्गिते (द्वन्द) गूढे आकारेङ्गिते यस्य सः (बहुव्रीहि) तस्य।' जिसके शोक आदि के सूचक मुख-विकार तथा चेष्टाओं और मन के भाव नहीं जाने जा सकते थे। गूढ़-गुप्त, आकार-शारीरिक मुख-विकार, बाह्य चेष्टाएँ। इंगित-हृदय के भाव चेष्टाएँ।

संस्काराः - हिन्दू पूर्वजन्म में विश्वास करते हैं। प्रत्येक वर्तमान जन्म पूर्व (पिछले) जन्म में किये कर्मों का फल है। वर्तमान जन्म में मनुष्य जो कुछ अच्छा या बुरा भोगता है वह सब उसके पूर्वजन्म के अच्छे या बुरे कर्मों का फल है। यदि उसने पूर्वजन्म के अच्छे कर्म किये हैं तो इस जन्म से उसे उसके अनुसार सुख मिलता है। यदि बुरे कर्म हैं तो तदनुसार उसे दुःख मिलता है। यद्यपि किसी को पूर्वजन्म में किये गये कर्मों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता, तथापि वर्तमान जन्म में भोगे जा रहे सुख-दुःख के परिणाम से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति ने पूर्वजन्म में अच्छे कर्म किये होंगे या बुरे। इसी प्रकार महाराजा दिलीप की नीतियों का, जब तक वे गुप्त रहती थी, किसी को उनका कुछ भी ज्ञान नहीं होता था परन्तु उनकी सफलता को देखकर ही पता चलता था कि दिलीप ने अमुक समय में इस नीति को आरम्भ किया होगा।

फलानुमेयाः - 'प्रारम्भाः' का विशेषण। वे कर्म जिसका अनुमान उनके फल से ही लगता है इसके बिना नहीं। प्रारम्भाः - उपाय, उद्योग।

2.4.5 राजा दिलीप के गुण

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्।।21।।

अन्वय - स अत्रस्तः आत्मानं जुगोप, अनातुरः धर्म भेजे, अगृध्नुः अर्थम् आददे, असक्तः सुखम् अन्वभूत्।

अनुवाद - राजा दिलीप निर्भीक होकर अपनी रक्षा करते थे (किसी के भय से नहीं), अनातुर (नीरोग) होकर धर्म का पालन करते थे (किसी स्वार्थ से नहीं)। लोभरहित होकर धन का संग्रह करते थे (लोभ से नहीं), तथा आसक्ति को त्यागकर सांसारिक सुख का अनुभव करते थे (आसक्ति से नहीं)।

टिप्पणियाँ--

अत्रस्तः - न त्रस्तः, अत्रस्तः (नञ् तत्पुरुष)। बिना डरे हुए।

जुगोप - धातु गुप्+लिट्, अन्य पुरुष एक वचन, (उसने) रक्षा की। महाराजा दिलीप अपने शरीर की भलीभाँति रक्षा करता था यद्यपि उसे किसी से भय नहीं था। शास्त्रों के अनुसार राजा के लिए यह आवश्यक

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

है कि वह अपनी सुरक्षा का पूर्ण ध्यान रखे, भले ही भय का कोई कारण न हो। अपनी सुरक्षा के लिए चक्रवर्ती दिलीप ने रक्षकादि भी नियुक्त नहीं किये थे क्योंकि वह स्वयं अपनी शूरता से ही अपनी रक्षा करने में समर्थ था। देखिये- 'स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः' मनु की सन्तान अपने वीर्य (बल) से ही रक्षित थी।

भेजे - धातु भज्+लिट्, अन्य पुरुष, ए वचन, पालन किया।

अनातुरः - न आतुरः अनातुरः (नञ् तत्पुरुष)। किसी रोग से पीड़ित न होकर; स्वस्थ अवस्था में ही। प्रायः रोगग्रस्त हो जाने में अथवा विपत्ति के सिर पर आ पड़ने पर ही लोग ईश्वर को स्मरण करते हैं और धर्म का पालन करते हैं। परन्तु राजा दिलीप किसी स्वार्थ से नहीं अपितु अपना कर्तव्य समझकर यज्ञ आदि धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान करते थे। गीता में चार प्रकार के भक्त कहे हैं, उनमें ही एक आतुर भी है "चतुर्विद्या भजन्ते मां...आर्तो..." (गीता 7/16) इति।। परन्तु धर्मपालन में तत्पर दिलीप अनातुर ही रहते थे।

असक्तः - न सक्तः, असक्तः (नञ् तत्पुरुष)।

अगृध्नुः - बिना लोभी हुए अर्थात् लोभ में आकर नहीं। अ+गृध्+क्नु।। दिलीप ने धन का संग्रह लोभवश नहीं किया था, अपितु शास्त्र के विधानानुसार ('राजा को एक समुचित धनराशि का संचय करना चाहिये") ही किया था। "मा गृधः कस्य स्विद्धनम्" (ईशावस्योपनिषद्)।

अन्वभूत् - अनु उपसर्ग+धातु भू+लृङ् प्रथम पुरुष, एकवचन, अनुभव किया, भोगा।

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव।।22।।

अन्वय - ज्ञाने (सत्यपि) मौनम्, शक्तौ (सत्यामपि) क्षमा त्यागे सत्यपि श्लाघाविपर्ययः, तस्य गुणा गुणानुबन्धित्वात् सप्रसवा इव (आसन्)।

अनुवाद - ज्ञान में (दूसरों की बात जानकर) भी मौन रहना, शक्ति में (शत्रु से बदला लेने में सामर्थ्य) रहते हुए भी क्षमा करना तथा त्याग में (दान देकर) आत्मप्रशंसा न करना, इस प्रकार दिलीप के ज्ञान आदि गुण अपने विरोधी मौन आदि गुणों के साथ मेल से रहने के कारण (एक-दूसरे के विरोधी नहीं प्रस्तुत) सप्रसव (सगे भाई जैसे) जान पड़ते थे।

टिप्पणियाँ--

विशेष - परस्पर विरोधी गुण विरोध छोड़कर रघुकुल तिलक दिलीप में ऐसे निवास करते थे जैसे वे विरोधी नहीं अपितु परस्पर सहोदर हों। जैसे ज्ञान होने पर लोगों को मौन रहते नहीं देखा जाता। इस प्रकार

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

ज्ञान और मौन विरोधी गुण है। शक्ति होने पर बहुत कम लोग क्षमा करते देखे जाते हैं। दान देने पर सब लोग आत्म-प्रशंसा चाहते हैं। परन्तु लोक में सामान्य रूप से विरोधी प्रतीत होने वाले यह गुण दिलीप में परस्पर मिलकर निवास करते थे, क्योंकि वे किसी बात को जानते हुए भी उसे प्रकट नहीं करते थे प्रत्युत चुप रहते थे। प्रतिकार लेने की शक्ति होने पर भी विरोधी को क्षमा कर देते थे। त्याग करके भी अपनी प्रशंसा नहीं सुनना नहीं चाहते थे।

ज्ञाने मौनम् - (मुनि+अण्) मल्लिनाथ के अनुसार इसका अर्थ है- दूसरे के गुप्त रहस्यों को जानते हुए भी दिलीप उन्हें प्रकट नहीं करते थे। अपनी वाणी पर उनका पूर्ण नियंत्रण था।

शक्तौ क्षमा - शक्ति होने पर भी क्षमा कर देते थे। चाणक्य का कथन है- शक्तानां भूषणं क्षमा।

त्यागे श्लाघा-विपर्ययः - त्यागे श्लाघायाः विपर्ययः (षष्ठी तत्पुरुष) आत्मप्रशंसा का अभाव। दान करने पर भी मान नहीं करते थे। अहंकारशून्य थे। इस दिव्य निरभिमानिता का परिचय महाकवि कालिदास के पूर्व के महाकवि भास के नाटक स्वप्नवासवदत्तम् की नारी पात्र पद्मावती के चरित्र में ही विद्यमान है। देखिये पद्मावती की घोषणा- आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा।

गुणानुबन्धित्वात् - गुणानाम् (मौन क्षमा श्लाघाविपर्ययादीनाम्) अनुबन्धनः, अविरोधेन अनुगन्तुं शीलं येषां ते गुणानबन्धितः, तेषां भाव गुणानुबन्धित्वम्, तस्मात्। एक गुण विरोधी होने पर भी दूसरे विरोधीगुण से जुड़ा होने या मिला रहने के कारण या एक गुण का दूसरे गुण से सौहार्द्र होने के कारण।

सप्रसवाः - सह प्रसव येषाम् ते सप्रसवाः। सगे भाई, एक ही माता से जन्म लेने वाले। सहोदर।

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः।
तस्य धर्मरतेरासीद् वृद्धत्वं जरसा विना।।23।।

अन्वय - विषयैः अनाकृष्टस्यं विद्यानां पारदृश्वनः धर्मरतेः तस्य जरसा विना वृद्धत्वम् आसीत्।

अनुवाद - सांसारिक विषय भोगों के प्रति आकृष्ट न होने वाले, (वेदाङ्गादि) विद्याओं के पारंगत तथा धर्म में अनुराग रखने वाले राजा दिलीप उम्र के वृद्ध न होने पर भी (अर्थात् युवावस्था में ही) बिना वृद्धावस्था (बुढ़ापे) के ही (ज्ञान के कारण) वृद्ध थे।

टिप्पणियाँ--

अनाकृष्टस्य - न आकृष्टस्य (नञ्+आ+धातु कृष्+क्त)। जो (दिलीप) विषयों से (विषयैः) अनाकृष्ट थे। इसका अर्थ है कि यद्यपि वह आयु में वृद्ध नहीं थे, फिर भी वैराग्य (अनासक्ति) में वृद्ध था।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पारदृश्वनः - पार-धातु दृश्-क्वनिप्। पार-दृष्टवान् इति पारदृश्वा तस्य (उपपद तत्पुरुष)। पार अर्थात् अन्त तक को देख लेने वाला, पारंगत, पूर्ण ज्ञाता। दूरदृष्टि वाले।

विद्यानाम् - विद्याओं का। विद्याएँ चार मानी गई हैं-

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती।
विद्याश्चैताश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः।।

विद्याएँ चौदह भी मानी गई हैं-

षडङ्गमिश्रिताः वेदाः धर्मशास्त्रं पुराणकम्।
मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याः चतुर्दश।।

वेदांग छः हैं - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष।

धर्मरतेः - धर्मे रतिः यस्यः सः धर्मरतिः (बहुव्रीहि), तस्य। वह जिसकी धर्म में निष्ठा है। दिलीप का विशेषण।

जरसा विना - वृद्धत्व के विना। दिलीप आयुवृद्ध नहीं अपितु वैराग्यवृद्ध, विद्यावृद्ध, ज्ञानवृद्ध तथा धर्मवृद्ध थे।

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।24।।

अन्वय - प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणाद् अपि स पिता (आसीत्); तासां पितरः केवलं जन्महेतवः (आसन्)।

अनुवाद - प्रजा को (सन्मार्ग प्रवर्तन रूप) विनय (शिक्षा) प्रदान करने के कारण, (विपत्तियों से उनकी) रक्षा करने के कारण तथा (अन्न जल से उनका) भरण-पोषण करने के कारण राजा दिलीप ही वास्तव में प्रजा के पिता थे उनके (प्रजा के) वास्तविक पिता तो केवल उनके जन्म ही देने वाले नाम के पिता थे। (प्रजा की शिक्षा-रक्षा का काम करने से दिलीप ही उनके वास्तविक पिता थे।)

टिप्पणियाँ--

विशेष - अपनी सन्तान की रक्षा करना, उसका भरण-पोषण और उसे सुशिक्षित करना माता-पिता का कर्तव्य है। राजा दिलीप भी सन्तान की भांति प्रजा की रक्षा करते थे। उसके पोषण के लिए अन्न-जल की व्यवस्था करते थे और उसे सन्मार्ग में प्रवर्तित करते थे। अतः वे ही सच्चे अर्थ में प्रजा के वास्तविक पिता थे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

प्रजा के वास्तविक माता-पिता तो जन्म देने वाले केवल नाम के ही पिता थे। प्रजा के प्रति पिता का कर्त्तव्य तो राजा दिलीप ही निभाते थे। अतः वे सचमुच प्रजा के पिता थे- "पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः" (रघुवंश)।

विनयाधानात् - विनयस्य आधानात्- (षष्ठी तत्पुरुष)। विनय का शब्दार्थ है शिक्षा, उन्हें अच्छी शिक्षा देने से, उन्हें सन्मार्ग में प्रवृत्त करने से।

रक्षणात् - रक्ष्+ल्युट्। पञ्चमी एकवचन। विनयाधानात् रक्षणात् भरणात् में हेतु के कारण पञ्चमी है।

स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान् परिणेतुः प्रसूतये।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः।।25।।

अन्वय - दण्ड्यान् स्थित्यै दण्डयतः प्रसूतये परिणेतुः मनीषिणः तस्य अर्थकामौ अपि धर्म एव आस्ताम्।

अनुवाद - लोकमर्यादा के पालन हेतु ही (द्वेष के कारण नहीं) अपराधियों के दण्ड देने वाले, सन्तान के लिए ही (भोगविलास के लिए नहीं) विवाह करने वाले, विद्वांन् (बुद्धिमान्) राजा दिलीप के अर्थ और काम भी (लोकप्रतिष्ठा तथा वंशधर पुत्र को जन्म देने के कारण) धर्म ही बन गए थे।

टिप्पणियाँ-

विशेष - अपराधियों को दण्ड देना राजा का कर्तव्य है। वह उन्हें शारीरिक दण्ड दे सकता है और धन का दण्ड भी। परन्तु राजा दिलीप धन संग्रह करने के लोभ में आकर अपराधियों को धन का दण्ड नहीं देते थे, अपितु अपराध के निवारण के उद्देश्य से ही अपराधियों को दण्डित करते थे जिससे राज्य में शान्ति और स्थिरता रहे और प्रजा निर्भय होकर अपने-अपने कर्म में प्रवृत्त रहे।

स्थित्यै - लोकप्रतिष्ठा के लिए, राज्य में शान्ति और स्थिरता के लिए।

दण्डयान् - दण्ड+य, दण्डम् अर्हन्तीति दण्ड्याः, तान्, अपराधी लोग।

दण्डयतः - धातु दण्ड्+णिच्-शतृ, षष्ठी विभक्ति (अपराधी को) दण्ड देते हुए। कहा भी है-

अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकञ्चैव गच्छति।।

'दण्ड्' का अर्थ यहाँ पैसे के रूप में सजा से ही है, अन्यथा 'अर्थ' की व्याख्या नहीं हो सकती।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

परिणेतुः - परि उपसर्ग-धातु नि+शतृ+षष्ठी विभक्ति, एकवचन (सन्तान प्राप्ति के उद्देश्य से) विवाह करने वाले।

प्रसूतये - सन्तान के लिए।

अर्थकामौ - अर्थश्च कामश्च इति अर्थकामौ (द्वन्द्व समास)। मध्यस्थ (बीच के) पुरुषार्थद्वय। चार पुरुषार्थ हैं- धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष।

धर्म एव - अर्थ और काम यद्यपि व्यक्तिगत स्वार्थ साधन के लिए उपादेय होते हैं परन्तु राजा दिलीप के लिए अर्थ और काम अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं थे, अपितु दूसरों के सुख के लिए ही थे। अतः परोपकार के लिए होने के कारण उनके अर्थ तथा काम भी धर्म ही थे। राजा दिलीप अपराधियों को दण्ड देने के लिए ही उनसे धन लेते थे; व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं। अतः उनका अर्थ भी धर्म का ही रूप था। वे विषयभोग के लिए विवाह नहीं करते थे, अपितु पुत्र को जन्म देकर वंश परम्परा की निरन्तरता को बनाए रखने के लिए 'काम' में प्रवृत्त होते थे। 'सन्तान' शब्द का एक अर्थ इसी मानवपरम्परा का विस्तार है। इसी प्रकार अर्थ अपने लिए नहीं अपितु प्रजा के कल्याण के लिए था। अतः उसके अर्थ और काम परार्थ के लिए होने के कारण धर्म ही थे। देखिए- "धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।' (भगवद्गीता 7/11) आस्ताम् - धातु अस्, लङ्, अन्य पुरुष, द्विवचन, थे।

SOL, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

i. राजाओं में सर्वप्रथम राजा ______ थे।
ii. 'आकार के समान बुद्धि वाला' ______ राजा के लिए कही गई है।
iii. प्रणव ______ स्वरुप वाला माना जाता है।
iv. श्लाघाविपर्यय शब्द का प्रयोग ______ के अर्थ में किया जाता है।
v. गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सूक्ति वाक्य ______ ग्रंथ से सम्बन्धित है।

2.5 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने कालिदास रचित महाकाव्य रघुवंश के प्रारम्भिक दस श्लोकों का अध्ययन किया और इसके माध्यम से सर्वप्रथम मंगलाचरण के विषय में जाना कि मंगलाचरण प्रायः तीन प्रकार का होता है –

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक । प्रस्तुत पाठ में प्रथम श्लोक में कालिदास द्वारा अपने आराध्य देव शिव-पार्वती को नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया गया है । कालिदास अपनी सहृदयता का परिचय देते हुए सूर्य से उत्पन्न रघुकुल का वर्णन करते हैं तथा इस कुल में उत्पन्न विधिपूर्वक हवन(यज्ञ) करने वाले, याचकों को दान देने वाले, शास्त्रानुकूल दण्ड देने वाले तथा अनुशासनपूर्ण जीवनचर्या का पालन करने वाले रघुवंशी राजाओं की अनेक विशेषताओं का भी वर्णन करते हैं । प्रस्तुत पाठ में रघुवंश का अध्ययन करने वाले सत्पात्र का वर्णन करते हुए बताया गया है कि जिस प्रकार सुवर्ण को अग्नि में तपाने पर इसकी शुद्धता का पता चलता है उसी प्रकार इस महाकाव्य को सत् तथा असत् की पहचान करने में सक्षम सज्जन पुरुष ही सुन सकते हैं ।

इसी क्रम में पद्य संख्या (11-20) के अन्तर्गत आपने महाराज दिलीप के व्यक्तित्व स्वरूप तथा उनके ज्ञान, मौन, क्षमाशीलता, त्याग, आत्मप्रशंसा अभाव इत्यादि गुणों के विषय में जाना और, साथ ही उनके शासन-व्यवस्था जैसे- करपद्धति, प्रजापालन, धर्मपरायणता, सैन्य-व्यवस्था, दण्डपद्धति इत्यादि का भी विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया । इस पाठ में राजा दिलीप के व्यक्तित्व एवं प्रशासनिक वर्णन के क्रम में कालिदास की भाषा-शैली तथा उनकी प्रौढ़ प्रतिभा से भी आप सभी परिचित हुए ।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

सम्पृक्तौ - सम्बद्ध

प्रतिपत्तये - सम्यक् ज्ञान

दुस्तर - कठिनता से पार किये जाने योग्य

तितीर्षु - तैरने अथवा पार करने की इच्छा

उपहास्यताम् - उपहास की पात्रता

प्रबोधम् - उठना

सम्भृत - एकत्र करना

अर्थ - धन

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मितभाषिणाम् - कम बोलना

विजिगीषूणां - विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले

तनुत्यजाम् - शरीर का त्याग करने वाले

विभव - वैभव(सामर्थ्य)

अन्वयम् - कुल अथवा वंश

प्रणव – ओंकार

क्षीरनिधि – क्षीर सागर

इन्दु – चन्द्रमा

प्रांशु – लम्बा

व्यूढोरस्कः – विशाल छाती वाला

प्रज्ञः – बुद्धि, ज्ञान

आगम – शास्त्र

अधृष्य – जिसे तिरस्कृत न किया जा सके

अधिगम्य – जिसके पास पहुँचा जा सके

बलि – कर

जुगोप – रक्षा

श्लाघाविपर्यय – आत्मप्रशंसा का अभाव

पारदृश्वन – दूर दृष्टि वाले

जरसा – वृद्धावस्था

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.7 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1.	2.
i. शिव-पार्वती	i. वैवस्वत मनु
ii. एकशेष द्वन्द्व समास	ii. राजा दिलीप
iii. 3	iii. ओंकार
iv. सूर्यवंश	iv. आत्मप्रशंसा का अभाव
	v. रघुवंश महाकाव्य

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न

1. रघुवंशी राजाओं की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. राजा दिलीप का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. राजा दिलीप के शासन पद्धति का वर्णन कीजिए।
4. ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ..........सप्रसवा इव।

   उपर्युक्त श्लोक की सप्रसंग अनुवाद एवं व्याख्या कीजिए।

2.9 सन्दर्भ–ग्रंथ

- त्रिपाठी, कृष्णमणि, *रघुवंशम्(मल्लिनाथकृत सञ्जीवनी टीका)*, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011.
- वेलणकर, हरि दामोदर, *रघुवंशम्*, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्, नवदेहली, 2011.
- *अमरकोश*, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, नई दिल्ली, 2011

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य–सामग्री

- शास्त्री, शालिग्राम(व्या-), *साहित्यदर्पण*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2000
- काणे, पी.वी., *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2002
- शर्मा 'ऋषि', उमाशंकर, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 1999

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ–3 इकाई–2

महाकविमाघ: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संरचना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 महाकवि माघ का जीवन-परिचय

3.3.1 जन्म व स्थितिकाल

3.3.2 माघ का जन्म स्थान

3.4 शिशुपालवध अथवा माघकाव्य के नामकरण का औचित्य

3.5 शिशुपालवध की कथावस्तु

3.5.1 शिशुपालवध का स्तोत्र एवं मूलकथा में परिवर्तन

3.6 शिशुपावध का महाकाव्यत्व

3.7 विषयगत विश्लेषण

3.7.1 माघे सन्ति त्रयो गुणा:

3.7.2 मेघे माघे गतं वय:

3.7.3 तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदय:

3.8 सारांश

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

3.10 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

3.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

3.12 संदर्भ ग्रंथ

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी-

- महाकवि माघ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होंगे।
- शिशुपालवध महाकाव्य के सामान्य परिचय को समझ सकेंगे।
- संस्कृत के परिभाषिक शब्दावली का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- महाकवि माघ के भाषाशैली से परिचित होंगे ।

3.2 प्रस्तावना

छात्रो! प्रस्तुत पाठ में महाकवि माघ द्वारा रचित शिशुपालवध महाकाव्य का परिचय यथा -शिशुपालवध का नामकरण, कथावस्तु, शिशुपालवध महाकाव्य के महाकाव्यत्व के विषय में वर्णन किया जाएगा। साथ ही शिशुपालवधम् के रचयिता महाकवि माघ के जीवन-परिचय, उनकी रचनाओं एवं उनकी भाषा-शैली से अवगत कराया जाएगा। महाकवि माघ संस्कृत साहित्य के ऐसे अप्रतिम मूर्धन्य महाकवि थे जिनकी रचनाओं में उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य इन तीनों का समन्वय विद्यमान था अतः इनके लिए विद्वानों ने अनेक उक्तियों का प्रयोग किया है जो इनके भाषा-वैशिष्ट्य के महत्त्व को परिलक्षित करते हैं, उन उक्तियों का भी इस पाठ में क्रमशः वर्णन किया जायेगा ।

3.3 महाकवि माघ का जीवन-परिचय

महाकवि माघ संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध कवियों में से एक हैं। महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीय महाकाव्य से जिस कलात्मक काव्यसरणि का प्रारम्भ किया था, उसका विकास महाकवि माघप्रणीत शिशुपालवध में अत्यन्त स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है। एक अत्यन्त संक्षिप्त कथा को अपनी काव्यप्रतिभा से चमत्कारपूर्वक बनाने की कला शिशुपालवध में सर्वत्र देखी जा सकती है। संस्कृत साहित्य की बृहत्त्रयी - किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित में इसकी गणना अत्यन्त सम्मान के साथ होती है।

महाकवि माघ के विषय में अनेक प्रशस्तियाँ प्राप्त होती हैं। धनपाल कवि कहते हैं -

माघेन विघ्नहोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।

© DDCE, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा।।

अर्थात् जिस प्रकार माघ माह में शीत के कारण सूर्य की धूप का आश्रय लेकर वानर उछल-कूद नहीं करते हैं, वैसे ही भारवि को स्मरण करने वाले कवियों का उत्साह माघ की रचना को देखकर पदविन्यास में शिथिल हो जाता है। एक और प्रशस्ति माघ के विषय में मिलती है, जहाँ पर उनके काव्य को काव्यों में अन्यतम बताया गया है -

पुष्पेषु जाती नगरीषु काञ्ची नारीषु रम्भा पुरुषेषु विष्णुः।

नदीषु गङ्गा नृपतौ च राम काव्येषु माघ कवि कालिदासः।।

एक सूक्ति शिशुपालवध के लिए विद्वत्समुदाय में अत्यन्त प्रचलित है -'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।' अर्थात् शिशुपालवध के नौ सर्गों को पढ़ने के बाद कोई नया शब्द जानने के लिए नहीं रह जाता है। किसी काव्य समालोचक ने तो इतना भी कह दिया है कि -'मेघे माघे गतः वयः।' अर्थात् कालिदासविरचित मेघदूत तथा माघ के शिशुपालवध को पढ़ने में ही उनकी पूरी आयु चली गई। हो सकता है कि उक्त प्रशस्तियों में अतिशय है, तथापि यह तो निश्चित है कि महाकवि माघ का स्थान संस्कृत के कवियों में अप्रतिम है।

3.3.1 जन्म व स्थितिकाल

संस्कृत के अन्य सुप्रसिद्ध महाकवियों की तरह माघ अपने विषय में मौन नहीं हैं। उनके विषय में दोनों ही प्रकार के प्रामाणिक तथा अर्द्धप्रामाणिक तथ्य उपलब्ध होते हैं। किसी भी रचनाकार का जीवनवृत्त का निर्णय हम अन्तः तथा बाह्य साक्ष्यों के आधार पर करते हैं। अन्तः साक्ष्य के रूप में उनकी एकमात्र कृति शिशुपालवध उपलब्ध होती है, जिसके अन्त में स्वयं कवि ने अपने विषय में पाँच पद्यों में अपने वंश का उल्लेख किया है,जिनकी प्रामाणिकता निश्चित हैं।

शिशुपालवध के अन्त में माघ द्वारा प्रस्तुत अपने वंशवर्णन के आधार पर माघ के पितामह का नाम सुप्रभदेव था। ये श्रीवर्मल नामक राजा के महामन्त्री थे। माघ के पिता का नाम दत्तक था, जो गुणों में युधिष्ठिर से साम्य रखते थे। अनेक मानवोचित गुणों के आधार पर दत्तक का अपर नाम सर्वाश्रय भी था। इन्हीं दत्तक के पुत्र महाकवि माघ थे। अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर इतना सा वर्णन माघ के विषय में प्राप्त होता है। श्रीवर्मल नामक राजा का एक शिलालेख प्राप्त होता है, जिसे वसन्तगढ़-शिलालेख कहते हैं। इसमें 682 संवत् का उल्लेख है। इस आधार पर सुप्रभदेव का समय 625 ई- निर्धारित किया जा सकता है। माघ इनकी तीसरी पीढ़ी में थे, अतः इनका समय 675 ई- माना जा सकता है। अधिकांश विद्वान् माघ का समय 700 ई. के आस-पास ही मानते हैं।

बाह्यसाक्ष्यों के आधार पर हम माघ के समय पर निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर विचार कर सकते हैं -

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

काव्यालंकाररसूत्रवृत्ति के आधार पर

वामन ने काव्यालघङ्कारसूत्रवृत्ति (4-3-10) में अतिशयोक्ति अलंकार के उदाहरण में शिशुपालवध का पद्य - 'उभौ यदि व्योम्नि पृथक्प्रवाहा-' (3-8) प्रस्तुत किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि वामन के समय तक माघ प्रसिद्ध कवि के रूप मे जाने जाते थे। वामन का समय 800 ई- माना जाता है। अतः यह माघ के काल की अपर सीमा मानी जा सकती है।

ध्वन्यालोक के आधार पर

आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक (2-27) में श्लेष तथा उत्प्रेक्षा ध्वनि के उदाहरण में शिशुपालवध के पद्य - 'रम्या इति प्राप्तवतीः पताकाः' (3-53) तथा 'त्रसाकुलः परिपतन्-' (5-26) को उद्धृत किया है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि आनन्दवर्धन के समय तक माघ प्रसिद्ध कवि के रूप मे जाने जाते थे। आनन्दवर्धन कश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के आश्रित माने जाते हैं। अवन्तिवर्मा का शासनकाल 855-883 ई- माना जाता है। अतः यह माघ के काल की अपर सीमा मानी जा सकती है।

यशस्तिलकचम्पू के आधार पर

सोमदेव ने अपने ग्रन्थ यशस्तिलकचम्पू में माघ का उल्लेख किया है। सोमदेव का काल 960 ई. माना जाता है। अतः इस समय तक कवि के रूप माघ प्रसिद्ध हो चुके थे तथा यह इनके काल की अपर सीमा मानी जा सकती है।

किरातार्जनीय के आधार पर

संस्कृत साहित्य के सभी समालोचक यह मानते हैं कि माघ भारवि के परवर्ती कवि हैं। शिशुपालवध महाकाव्य पर किरातार्जुनीयम् का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। भारवि का समय 560 ई. के आसपास माना जाता है। अतः भारवि का समय इससे पूर्व का ही रहा होगा।

अतः उक्त अन्तः तथा बाह्यसाक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाकवि माघ का समय 675 ई. के आसपास ही रहा होगा।

3.3.2 माघ का जन्म स्थान

माघ को प्रायः सभी विद्वान राजस्थान में सिरौही जिले में स्थित भीनमाल नगर को स्वीकार करते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि शिशुपालवध की कुछ प्राचीन पाण्डुलिपियों में प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में -'इति श्रीभिन्नमालववास्तव्य दत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये -----' ऐसा पाठ मिलता है। यह स्थान प्राचीन काल से ही विद्या का केन्द्र रहा है। ब्रह्मगुप्त ने अपने ज्योतिषग्रन्थ

© DU CE COL, SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' की रचना यहीं की थी। जैन धर्म तथा दर्शन से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों के रचयिताहरिभद्रसूरि का निवासस्थान भी यही प्रदेश था।

पाठ्य प्रश्न

1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए**
   - i. शिशुपालवधम् के रचयिता __________ है।
   - ii. संस्कृत साहित्य में बृहत्त्रयी के अन्तर्गत _______ महाकाव्य आते हैं।
   - iii. 'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।' सूक्ति _______ सम्बन्धित है।
   - iv. महाकवि माघ के पितामह का नाम _____ था।
   - v. माघ के पिता का नाम ________ था।
   - vi. श्रीवर्मल नामक राजा का _______ शिलालेख मिलता है।
   - vii. महाकवि माघ का समय ________ के आस-पास माना जाता है।

3.4 शिशुपालवध अथवा माघकाव्य के नामकरण का औचित्य

महाकवि माघ के इस महाकाव्य का नाम 'शिशुपालवध' अथवा 'माघकाव्य' ही क्यों है? यही इसके नामकरण का औचित्य है। वस्तुतः काव्यशास्त्रियों ने किसी काव्य का नामकरण किस आधार पर किया जाये, इसका निर्देश अपने लक्षणग्रन्थों में किया है। विश्वनाथ के साहित्यदर्पण के अनुसार -

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।

अर्थात् महाकाव्य का नाम कवि, वृत्त अर्थात् चरित्र, नायक, उपनायक अथवा प्रतिनायक के नाम के अनुसार होना चाहिए। अर्थात् किसी भी महाकाव्य के नामकरण के चार आधार हो सकते हैं - कवि के नाम पर, वृत्त अर्थात् चरित्र के आधार पर, नायक के नाम पर अथवा उपनायक अथवा प्रतिनायक के आधार पर। अब यदि इस पंक्ति पर साहित्यदर्पण की प्रमुख टीकाओं के आधार पर विचार करें, तो अधिकांश टीकाकारों ने इस महाकाव्य के नाम का उल्लेख उदाहरण के रूप में किया है। यथा -

विवृत्ति टीका के अनुसार -'**कविनामकं महाकाव्यं माघभारविप्रभृति।**' अर्थात् विवृत्ति-टीकाकार के अनुसार इस महाकाव्य का नाम माघकाव्य है तथा यह इसके कवि माघ के नाम पर है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

विज्ञप्रिया टीका के अनुसार - 'प्रतिनायकस्य नाम्ना शिशुपालवध इति।' अर्थात् विज्ञप्रिया टीकाकार इस महाकाव्य का नाम काव्य के प्रतिनायक शिशुपाल के नाम के आधार पर स्वीकार करते हैं।

लक्ष्मी टीका के अनुसार -'प्रतिनायकस्य नाम्ना शिशुपालवध इति।' अर्थात् लक्ष्मी टीकाकार भी इस महाकाव्य का नाम काव्य के प्रतिनायक शिशुपाल के नाम के आधार पर स्वीकार करते हैं।

अब यदि उपर्युक्त टीकाकारों के मतों के अनुसार विचार किया जाए तो इस महाकाव्य के दोनों ही नाम 'शिशुपालवध' अथवा 'माघकाव्य' औचित्यपूर्ण हैं। शेष प्रमुख टीकाकारों ने इस पर विचार नहीं किया है। सम्भवतः उनकी दृष्टि में यह अत्यन्त स्पष्ट है। उक्त तीन टीकाकारों की दृष्टि में इस महाकाव्य का नाम प्रतिनायक तथा कवि के नाम के आधार पर है। 'शिशुपालवध' नामकरण का आधार इस महाकाव्य के प्रतिनायक शिशुपाल के नाम के आधार पर है तथा 'माघकाव्य' नामकरण का आधार इस महाकाव्य के कवि माघ के नाम के आधार पर है।

परन्तु यदि और गम्भीरता से विचार किया जाये तो वृत्त अर्थात् चरित्र के आधार पर भी इस महाकाव्य का नामकरण सिद्ध होता है। इस महाकाव्य का मुख्य इतिवृत्त अर्थात् कथानक तथा फल शिशुपाल का वध है। कवि का मुख्य प्रयोजन भी यही सिद्ध होता है। अतः वृत्त अर्थात् चरित्र के आधार पर भी इस महाकाव्य का नामकरण सिद्ध होता है।

University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

2. निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प का चयन कीजिए।

i. महाकाव्य के नमाकरण के कितने आधार होते हैं ।

क. 4 ख. 3 ग. 2 घ. 5

ii. विवृत्ति टीका किस ग्रंथ की है ।

क. काव्यप्रकाश ख. काव्यादर्श ग. साहित्यदर्पण घ. दशरूपक

iii. शिशुपालवधम् महाकाव्य किसके नाम के आधार पर है ।

क. कवि ख. प्रतिनायक ग. दोनों के नाम पर घ. दोनों में से कोई नहीं

iv. शिशुपालवधम् में प्रतिनायक का नाम क्या है ।

क. कृष्ण ख. शिशुपाल ग. इन्द्र घ. नारद

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3.5 शिशुपालवधम् की कथावस्तु

शिशुपालवध महाकवि माघ की उपलब्ध एकमात्र कृति है। महाभारत के सभापर्व (अध्याय 35-43) तथा श्रीमद्भागवतपुराण के दशम स्कन्ध (अध्याय 71-75) के अत्यन्त संक्षिप्त कथानक को ग्रहण कर माघ ने 20 सर्गों में 1650 पद्यों में शिशुपालवध नामक महाकाव्य की रचना की है। प्रमुख रूप से सर्गानुसार शिशुपालवध की कथावस्तु निम्न प्रकार है -

प्रथम -द्वारका में नारद का आगमन,श्रीकृष्ण द्वारा उनका सत्कार, नारद के द्वारा शिशुपाल के पूर्वजन्मों तथा उसके अत्याचारों का वर्णन कर इन्द्र के सन्देश के रूप में श्रीकृष्ण को शिशुपाल के वध के लिए प्रेरित करना, कृष्ण द्वारा शिशुपालवध की स्वीकृति, नारद का आकाश का ओर प्रस्थान।

द्वितीय -युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के लिए निमन्त्रण, श्रीकृष्ण, बलराम तथा उद्धव में परस्परनारद केप्रस्ताव पर मन्त्रणा, बलराम द्वारा शीघ्र ही शिशुपाल के साथ युद्ध का समर्थन, परन्तु उद्धव द्वारा शीघ्रता न कर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने का सुझाव, कृष्ण का उद्धव की मन्त्रणा के अनुसार ही कार्य करने का निश्चय।

तृतीय -द्वारका,समुद्र तथा द्वारका से इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान का वर्णन।

चतुर्थ-मार्ग में स्थित रैवतक पर्वत का वर्णन।

पंचम-रैवतक पर्वत पर सैन्यशिविर की स्थापना।

षष्ठ -षड् ऋतुओं का वर्णन।

सप्तम-वनविहार का वर्णन।

अष्टम -जल-क्रीड़ा का मोहक वर्णन।

नवम-सायंकाल, चन्द्रोदय तथा शृंगारिक क्रीड़ाओं का वर्णन।

दशम -पानगोष्ठी एवं रात्रिविहार का वर्णन।

एकादश-प्रभातकाल-वर्णन।

द्वादश-श्रीकृष्ण का वहाँ से प्रस्थान तथा यमुना का वर्णन।

त्रयोदश-श्रीकृष्ण और पाण्डवों का मिलन, नगरप्रवेश तथा नागरिकों की चेष्टाओं का वर्णन।

चतुर्दश -युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव, श्रीकृष्ण की पूजा तथा भीष्म द्वारा कृष्ण की स्तुति।

पञ्चदश -शिशुपाल का कोप तथा शिशुपाल के पक्ष के राजाओं का युद्ध के लिए तैयार होना।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE COL SOL, University of Delhi

षोडश -शिशुपालके दूत का श्रीकृष्ण से उभयार्थक शब्दों का प्रयोग, सात्यकि का उत्तर, दूत का पुनः शिशुपाल के पराक्रम का वर्णन।

सप्तदश -श्रीकृष्ण के पक्ष के राजाओं का क्रोध, सेना का प्रस्थान।

अष्टादश -दोनों सेनाओं का घोर युद्ध।

एकोनविंश- दोनों सेनाओं की व्यूहरचना तथा युद्ध का वर्णन।

विंश - शिशुपाल तथा कृष्ण के मध्य अनेक शस्त्रों से युद्ध, वाग्युद्ध, शिशुपाल के अपशब्दों से कुपित होकर कृष्ण द्वारा सुदर्शनचक्र से शिशुपाल का वध, शिशुपाल के तेज का कृष्ण में विलय।

3.5.1 शिशुपालवध का स्तोत्र एवं मूलकथा में परिवर्तन

माघ शिशुपालवध महाकाव्य की कथावस्तु का मूल स्त्रोत महाभारत का सभापर्व तथा श्रीमद्भागवतपुराण का दशम स्कन्ध है। महाकवि ने अपनी प्रतिभा से इसकी कथा में विविध प्रकार के परिवर्तन किए हैं। महाकवि माघ द्वारा किए गए परिवर्तन जहाँ महाभारत के सभापर्व तथा श्रीमद्भागवतपुराण के दशम स्कन्ध की संक्षिप्त कथा को मनोरमता, चमत्कारिता आदि से सिञ्चित करते हैं, वहीं कवि को अपनी विद्वता एवं कवित्व शक्ति का परिचय प्रस्तुत करने का अवसर भी प्राप्त हो गया है। महाकवि माघ ने महाभारत तथा श्रीमद्भागवतपुराण की मूलकथा में निम्नलिखित परिवर्तन किए हैं -

i. महाभारत में श्रीकृष्ण की आज्ञा से ही युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ की दीक्षा लेकर अपने सम्बन्धियों तथा मित्र राजाओं को निमन्त्रित करते हैं। भागवतपुराण में नारद पाण्डवों द्वारा किए जाने वाले राजसूय यज्ञ की सूचना देते हैं। जबकि शिशुपालवध में द्वारका में नारद का आगमनतथा श्रीकृष्ण द्वारा उनका सत्कार भागवतपुराण की कथा से साम्य रखता है। इसके अनन्तर नारद के द्वारा शिशुपाल के पूर्वजन्मों तथा उसके अत्याचारों का वर्णन कर इन्द्र के सन्देश के रूप में श्रीकृष्ण को शिशुपाल के वध के लिए प्रेरित करना, कृष्ण द्वारा शिशुपालवध की स्वीकृति आदि सभी कवि की कल्पना पर आधारित है। इस कथानक में परिवर्तन से कवि ने शिशुपालवध को इन्द्र से जोड़कर देवताओं की इस कार्य में स्वीकृति का वर्णन कर दिया है तथा देवता भी यह मानते हैं कि कृष्ण ही शिशुपाल के वध में समर्थ है। कवि ने इस परिवर्तन से अपने नायक के गुणों में उत्कर्ष का आधान कर दिया है।

ii. महाभारत अथवा भागवतपुराण में कृष्ण की बलराम तथा उद्धव के साथ मन्त्रणा का वर्णन नहीं है। इस वर्णन को स्वयं कवि ने महाकाव्य में सन्निवेश किया है। इसका सन्निवेश भी साभिप्राय है। इस वर्णन के द्वारा कवि को बलराम तथा उद्धव की उक्तियों से अपने राजनीति के विस्तृत ज्ञान को प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त हो गया।

© DDCE/COL/SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

iii. द्वारका से इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान का वर्णन भागवतपुराण तथा शिशुपालवध दोनों में किया गया है। भागवतपुराण में इस यात्रा में अनेक स्थानों का वर्णन है, जबकि शिशुपालवध में केवल रैवतकपर्वत तथा यमुना नदी का ही वर्णन है।

iv. षड् ऋतुओं, वनविहार, जल-क्रीड़ा, सायंकाल, चन्द्रोदय, शृंगारिक क्रीड़ाओं, पानगोष्ठी, रात्रिविहार तथा प्रभातकाल का वर्णन ये सभी माघ की अपनी कल्पनाएँ है। इस सभी वर्णनों से कवि को पर्याप्त कवित्व को प्रदर्शित करने का अवसर मिला है। इन वर्णनों में निश्चित रूप से कवि पर अपने पूर्ववर्ती कवि भारवि का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है।

v. युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव, श्रीकृष्ण की अग्रपूजा तथा भीष्म द्वारा कृष्ण की स्तुति, ये सभी महाभारत, भागवतपुराण तथा शिशुपालवध में समान रूप से वर्णित हैं। इससे शिशुपाल का कुपित होना भी सभी स्थलों पर समान है। इसके पश्चात् शिशुपाल के पक्ष के राजाओं का युद्ध के लिए तैयार होने का वर्णन कवि की अपनी कल्पना है। कवि ने यहाँ इस वर्णन में प्रतिनायक की शक्ति का उत्कर्ष प्रदर्शित किया है, जिससे प्रकारान्तर से नायक का उत्कर्ष भी परिलक्षित होता है। इसके पश्चात् कवि ने शिशुपालके दूत का श्रीकृष्ण से उभयार्थक शब्दों का प्रयोग, सात्यकि का उत्तर तथा दूत का पुनः शिशुपाल के पराक्रम का वर्णन कर पुनः अपनी राजनैतिक विशेषज्ञता को प्रदर्शित किया है।

vi. महाभारत तथा भागवतपुराण में राजसूय यज्ञ के स्थल पर ही शिशुपाल कृष्ण को सौ अपशब्द बोलता है। उसके उपरान्त सहदेव तथा भीम शिशुपाल के पक्ष के समस्त राजाओं को युद्ध के लिए आमन्त्रित करते हैं तथा अन्त में कृष्ण अपने सुदर्शन चक्र से उसका वध कर देते हैं। जबकि शिशुपालवध में श्रीकृष्ण के पक्ष के राजाओं का क्रोध प्रदर्शित किया गया है। तदनन्तर दोनों सेनाओं का प्रस्थान, दोनों सेनाओं के मध्य घोर युद्ध, व्यूहरचना तथा युद्ध का वर्णन का वर्णन किया गया है। शिशुपाल तथा कृष्ण के मध्य अनेक अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध, वाग्युद्ध, शिशुपाल के अपशब्दों से कुपित होकर कृष्ण द्वारा सुदर्शनचक्र से शिशुपाल का वध, शिशुपाल के तेज का कृष्ण में विलय का वर्णन किया गया है। इस अतिरिक्त वर्णन से कवि को अपने युद्धकौशल विषयक ज्ञान को प्रदर्शित करने का अवसर मिल गया है।

अतः स्पष्ट है कि माघ के द्वारा मूल कथा में किए गये परिवर्तन साभिप्राय एवं औचित्यपूर्ण हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य- प्रश्न

3. निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i. शिशुपालवध में प्रभातकाल का वर्णन ______सर्ग में प्राप्त होता है।

ii. शिशुपालवध महाकाव्य की कथावस्तु का मूल स्रोत ______ है।

iii. शिशुपालवध में ________सर्ग है।

iv. शिशुपालवध में श्लोकों की संख्या ______है।

3.6 शिशुपालवधम् का महाकाव्यत्व

संस्कृत काव्यशास्त्र में आचार्य भामह से प्रारम्भ होकर दण्डी, अग्निपुराणकार, रुद्रट, भोज एवं हेमचन्द्र तक एक सुदीर्घ परम्परा विद्यमान रही है, जिन्होंने महाकाव्य के लक्षण का कथन किया है। आचार्य विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत महाकाव्य के लक्षण में प्रायः सभी आचार्यों के मतों का समाहार है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार है -

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।।
सद्वंश क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकश्च फलं भवेत्।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।

इस लक्षण के आधार पर शिशुपालवध की समीक्षा इस प्रकार से प्रस्तुत है -

i. **सर्गबन्धो महाकाव्यम्**-महाकाव्य सर्गबन्ध होना चाहिए। शिशुपालवध 20 सर्गों में निबद्ध महाकाव्य है।

ii. **नायक** -शिशुपालवध का नायक श्रीकृष्ण चन्द्रवंश में उत्पन्न क्षत्रिय तथा दिव्यादिव्य कोटि के नायक हैं।

iii. **रस**-शिशुपालवध मेंअङ्गी रस वीर है तथा इसमें अंग रस के रूप में शृंगार, शान्त, रौद्र, भयानक, बीभत्स एवं अदभुत आदि सभी रस हैं।

iv. **ऐतिहासिकता** - इसमें कथावस्तु महाभारत के सभापर्व तथा श्रीमद्भागवतपुराण के दशम स्कन्ध पर आधारित है। अतः यह ऐतिहासिक कथानक वाला है।

v. **चतुर्वर्ग** - महाकाव्य में नायक का अन्तिम लक्ष्य शिशुपाल का वध (अर्थ) है, जो कि इन्द्रादि देवताओं की इच्छा तथा प्रजानुरञ्जन है। इसकी कथावस्तु में सभी चारों पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का वर्णन है।

vi. **मंगलाचरण**-इसमें मंगलाचरण वस्तुनिर्देशात्मक है।

vii. इसमें अनेक सुभाषितों के द्वारा दुष्ट जनों की निन्दा एवं सज्जनों की प्रशंसा की गयी है। जैसे - **'अनीत्वा पङ्कता धूलिमुदकं नावतिष्ठते।' (2/34), 'स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति(2/54)** आदि।

viii. **वृत्त** - शिशुपालवध में माघ ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। कुछ सर्गों में केवल एक ही छन्द प्रयुक्त है, परन्तु कुछ सर्गों में एकाधिक छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। सर्गान्त में छन्द परिवर्तन कर दिया गया है। मुख्य रूप से माघ ने वंशस्थ, अनुष्टुप, उपजाति, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

ix. **सर्ग संख्या** - शिशुपालवध के सर्ग न अधिक स्वल्प हैं तथा न अधिक दीर्घ। सर्वाधिक अल्प पद्यों की संख्या 68 है, जो एकादश तथा सप्तदश सर्ग में है। वहीं एकोनविंश सर्ग में सर्वाधिक 120 पद्य हैं।

x. **प्रकृति वर्णन** - शिशुपालवध में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, प्रातःकाल, सभी ऋतुओं का वर्णन तथा यात्रा आदि का वर्णन किया गया है।

xi. **नामकरण** - माघ की रचना कोशिशुपालवध अथवा माघकाव्य के नाम से जाना जाता है। 'शिशुपालवध' नामकरण का आधार इस महाकाव्य के प्रतिनायक शिशुपाल के नाम के आधार पर है तथा 'माघकाव्य' नामकरण का आधार इस महाकाव्य के कवि माघ के नाम के आधार पर है।

अतः स्पष्ट है कि शिशुपालवध पूर्णतः एक महाकाव्य है तथा इसमें काव्यशास्त्रियों द्वारा निर्देश किए गए महाकाव्य के समस्त लक्षण विद्यमान हैं।

पाठ्य – प्रश्न

4. सही उत्तर का चयन कीजिए ।

   i. महाकाव्यों का विभाजन होना चाहिए । सर्गों में/ अंकों में

   ii. महाकाव्य का नायक होना चाहिए। धीरोदात्त/ धीरललित

   iii. शिशुपालवधम् की काथावस्तु का स्त्रोत है । महाभारत सभापर्व/महाभारत वनपर्व

   iv. शिशुपालवधम् का नामकरण आधार है । प्रतिनायक/नायक

   v. शिशुपालवधम् में मंगलाचरण है । वस्तुनिर्देशात्मक/आशीर्वादात्मक

3.7 विषयगत विश्लेषण

3.7.1 माघे सन्ति त्रयो गुणा:

महाकवि माघ के विषय में अनेक प्रशस्तियाँ प्रचलित हैं। उनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रशस्ति है - 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः।' अर्थात् माघ में तीनों गुण हैं। अब जिज्ञासा होती है कि यहाँ माघ में रहने वाले वे तीन गुण कौनसे हैं? इसके उत्तर में एक श्लोक प्रसिद्ध है, जिसमें कालिदास, भारवि तथा दण्डी की विशेषताओं का भी उल्लेख है। श्लोक इस प्रकार से है -

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।

अर्थात् कालिदास के काव्य उपमा के लिए प्रसिद्ध है, भारवि का अर्थगौरव अप्रतिम है, दण्डी पदलालित्य के लिए जाने जाते है, परन्तु माघ में ये तीनों गुण हैं। अर्थात् माघकाव्य में उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य ये तीनों ही गुण हैं। यहाँ पर 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' का विवेचन पाठ्यक्रम में निर्धारित अंश के आधार पर ही किया जा रहा है।

उपमा - कालिदास संस्कृत साहित्य में उपमा के लिए जाने जाते हैं। परन्तु माघ के काव्य में भी उपमाएँ अत्यन्त स्वाभाविक हैं। उपमा का लक्षण है -**'साधर्म्यमुपमा भेदे।'** अर्थात् उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर साधर्म्य का कथन उपमा अलंकार कहलाता है। उपमा के मुख्यतः दो भेद होते हैं - पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा। जहाँ पर उपमान, उपमेय, साधारणधर्म तथा उपमावचाक शब्द का शब्दतः कथन होता है, वहाँ पूर्णोपमा होती है तथा जहाँ पर उक्त चारों में से किसी एक, दो अथवा तीन का लोप होता है, वहाँ लुप्तोपमा होता है।

पूर्णोपमा -

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम् ।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्।।

अर्थात् शरीर से किए जाने वाले (नित्य-नैमित्तिक) समस्त कार्यों में (उपाय आदि) पाँच अङ्गों के अतिरिक्त राजाओं के लिए (कार्यसिद्धि के लिए) कोई अन्य मन्त्र नहीं है, जिस प्रकार (इस शरीर में) पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त बौद्धों के मत में 'आत्मा' नाम का कोई अन्य तत्त्व नहीं होता है।

यहाँ पर बौद्धमत उपमान, राजा की कार्यसिद्धि उपमेय, पाँच अङ्ग साधारणधर्म तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है।'अङ्गस्कन्धपञ्चकम्' में श्लेष है, अतः यह श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा का उदाहरण होगा। इसके अतिरिक्त -

मन्त्रे योध इवाधीरः सर्वाङ्गैः संवृतैरपि।
चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशङ्कया।।

अर्थात् (कवच इत्यादि से) ढ़के हुए सभी अङ्गों के होते हुए भी शत्रुओं से भेदन की आशंका से भीरु योद्धा के समान (राजाओं की) मन्त्रणा भी शत्रुओं के द्वारा (गुप्तचर आदि के द्वारा) भेद की आशंका से देर तक स्थिरता को सहन नहीं करती है।

इस पद्य में भी पूर्णोपमा अलंकार भी है। यहाँ पर 'भीरू योद्धा' उपमान, 'मन्त्र' उपमेय, 'स्थिरता को सहन नहीं करती है' साधारणधर्म तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है। अतः यह भी श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा का उदाहरण होगा।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

इसके अतिरिक्त -

अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव।।

अर्थात् सुरतक्रीड़ा से भिन्न काल में स्त्रियों की लज्जा के समान पुरुष का पराभव न होने पर क्षमा भूषण है, परन्तु पराभव होने पर सुरतक्रीड़ा में स्त्रियों के वैयात्य-वचनों अर्थात् निषेधपरक वचनों के समान पुरुष का पराक्रम ही भूषण है।

इस पद्य में भी पूर्णोपमा अलंकार है। लक्षण पहले प्रदर्शित कर दिया गया है। यहाँ पर 'स्त्रियों की लज्जा' उपमान, 'पुरुषों की क्षमा' उपमेय, 'भूषणत्व' साधारण धर्म तथा 'इव' उपमावाचकशब्द है। यह पूर्णोपमा का उदाहरण है।

इसके अतिरिक्त -

सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपकाः।
प्रतप्तस्येव सहसा सर्पिषस्तोयबिन्दवः।।

अर्थात् क्रोधयुक्त उस (शिशुपाल) के लिए सामवचन (शान्तिपूर्वक वचन) अनायास ही तपे हुए धृत को जल की बूँदों के समान विपरीत होकर उद्दीप्त ही करेंगे।

इस पद्य में भी पूर्णोपमा अलंकार हैं। यहाँ पर 'जल की बूँदें' उपमान, 'सामवचन' उपमेय, 'उद्दीप्त करना' साधारण धर्म तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है। अतः यह पूर्णोपमा का उदाहरण है।

लुप्तोपमा-

तृप्तियोगः परेणापि महिम्ना न महात्मनाम्।
पूर्णश्चन्द्रोदयाकाङ्क्षी दृष्टान्तोऽत्र महार्णवः।।

अर्थात् महान् व्यक्तियों को बड़ी समृद्धि से भी सन्तोषलाभ नहीं होता है। यहाँ अर्थात् इस प्रसगं में चन्द्रमा के उदय को चाहने वाला पूर्ण महासमुद्र दृष्टान्त अर्थात् उदाहरण है।

इस पद्य में लुप्तोपमा अलंकार है।यहाँ 'पूर्ण महार्णव' उपमान, 'महान् व्यक्ति' उपमेय, 'बड़ी समृद्धि से भी सन्तोषलाभ न होना' साधारणधर्म तथा उपमावाचक शब्द का लोप होने से यह लुप्तोपमा का उदाहरण है।

इसके अतिरिक्त -

समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः।
प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रेदाहरणं रविः।।

अर्थात् स्वाभिमानी व्यक्ति शत्रुओं को समूल नष्ट कर उनका उन्मूलन किए बिना अभ्युदय को प्राप्त नहीं करते हैं, उस विषय में प्रगाढ़ अन्धकार को नष्ट करने वाला सूर्य उदाहरण है।

इस पद्य में भी लुप्तोपमा अलंकार है। यहाँ पर 'सूर्य' उपमान, 'मानी' उपमेय, 'परान् समूलघातमघ्नन्तः न उद्यन्ति' साधारणधर्म तथा उपमावाचक शब्द 'इव' का लोप होने से लुप्तोपमा है।

इसके अतिरिक्त -

स्वयं प्रणमतेऽल्पेऽपि परवायावुपेयुषि।
निदर्शनमसाराणां लघुर्बहुतृणं नरः।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अर्थात् सारहीन पदार्थों का उदाहरण तिनके के समान लघु अर्थात् पौरुषहीन मनुष्य थोड़े से भी शत्रुरूपी वायु के प्राप्त होने पर स्वयं ही झुक जाता है।

इस पद्य में लुप्तोपमा अलंकार है।'लघुर्बहुतृणं नरः' इस वाक्य में 'तृण' उपमान, 'नर' उपमेय,'लघुता' साधारणधर्म तथा उपमावाचक शब्द का लोप होने से लुप्तोपमा अलंकार है।

अतः स्पष्ट है कि महाकवि माघ द्वारा प्रयुक्त उपमाएँ स्वाभाविक तथा मनोहारी हैं।

अर्थगौरव-महाकवि भारवि अर्थगौरव के लिए संस्कृत जगत् में प्रख्यात हैं। परन्तु माघकाव्य में भी अर्थगौरव बहुलता से प्राप्त होता है। अर्थगौरव के विषय में स्वयं माघ ने कहा है -

वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता।।

अर्थात् कतिपय स्वरों के गुम्फित गान के समान परिमित अक्षरों से गुम्फित वचन की अनन्त विचित्रता होती है। विशेषरूप से जो अंश पाठ्यक्रम में निर्धारित है, उसमें सम्पूर्ण कथानक बलराम की उक्तियों से ही सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए कतिपय अर्थगौरव विषयक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

- **आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती।**

अपनी उन्नति और शत्रु की हानि, इन दो पर ही विचार करना चाहिए, बस इतनी सी ही राजनीति है।

- **तृप्तियोगः परेणापि महिम्ना न महात्मनाम्।**

महान् व्यक्तियों को बड़ी समृद्धि से भी सन्तोषलाभ नहीं होता है।

- **समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः।**

स्वाभिमानी व्यक्ति शत्रुओं को समूल नष्ट कर उनका उन्मूलन किए बिना अभ्युदय को प्राप्त नहीं करते हैं।

- **विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।**

विपक्ष अर्थात् शत्रुओं को नष्ट किए बिना प्रतिष्ठा निश्चित् ही दुर्लभ है।

- **ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम्।**

जब तक एक भी शत्रु स्थित है, तब तक सुख कहाँ ?

- **सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः।**

कृत्रिम सखा और शत्रु मुख्य हैं, क्योंकि वे कार्यवशात् होते हैं।

- **उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।**

उपकार करने वाले शत्रु के साथ सन्धि करनी चाहिए, न कि अपकारी मित्र के साथ।

- **क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः।**

बार-बार विरोध करने वाले (शत्रु) को कौन क्षमा करेगा ?

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

- **तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गण्यते।**

अत्यन्त दूर रहता हुआ भी तेजस्वी तेजस्वियों के मध्यगिना जाता है।

- **अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः।**

गोद में मृग को रखने वाला चन्द्रमा मृगलाञ्छन अर्थात् मृग के कलङ्क वाला कहा जाता है।

- **केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः।**

निष्ठुरता से मृगसमूह को मारने वाला सिंह मृगाधिप अर्थात् मृगों का स्वामी कहा जाता है।

- **चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।**

चतुर्थ उपाय (दण्ड) से वश में करने वाले शत्रु के विषय में साम का व्यवहार हानिकारक होता है।

- **सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपकाः।**

क्रोधयुक्तके लिए सामवचन उसको उद्दीप्त करने वाले ही होंगें।

पदलालित्य - संस्कृत साहित्य में पदलालित्य के लिए महाकवि दण्डी सुप्रसिद्ध हैं। पदलालित्य दो प्रकार से हो सकता है - सुनने में मधुर कोमलकान्त पदविन्यास के आधार पर अथवा अनुप्रासयुक्त पदों के आधार पर कालिदास, दण्डी आदि कवियों के काव्यों में पदलालित्य कोमलकान्त पदावली के आधार पर प्राप्त होता है तथा श्रीहर्ष, पण्डितराज आदि कवियों के काव्यों में पदलालित्य अनुप्रासयुक्त पदों के विन्यास के आधार पर प्राप्त होता है। माघ की पदलालित्य के सन्दर्भ में यह विशेषता है कि उनके काव्य में यह पदलालित्य उक्त दोनों प्रकार का मिलता है। अर्थात् शिशुपालवध ने माघ ने कुछ स्थलों पर कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया है तथा कहीं-कहीं पर वे अनुप्रासयुक्त पदों का भी सुन्दर प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए पाठ्यक्रम में निर्धारित पद्यों में से पदलालित्य के कुछ स्थल प्रस्तुत हैं।

कोमलकान्त पदावली के आधार पर पदलालित्य -शिशुपालवध के पाठ्यक्रम में निर्धारित इस अंश में कोमल पदों का विन्यास काव्य के अन्य अंशों की अपेक्षा प्रायः कम प्राप्त होता है। इसका प्रमुख कारण इस अंश का कथानक है। वस्तुतः इस अंश में सम्पूर्ण उक्तियाँ बलराम द्वारा कही गई हैं। बलराम स्वभावतः एक उद्धत वक्ता हैं। दूसरी बात यह है कि बलराम को उस समय उद्धव की प्रतीक्षा करने की नीति का खण्डन कर शिशुपाल पर शीघ्रातिशीघ्र आक्रमण करने के लिए कृष्ण को सहमत करना था। इसलिए इन पद्यों में पदों का विन्यास कुछ कठिन हो गया है। फिर भी कुछ स्थलों पर हमें कोमल पदों का प्रयोग देखने को मिलता है। यथा -

पदाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः।।

यहाँ स्पष्टतः प्रसाद गुण के व्यञ्जक वर्णों के होने से पदलालित्य है।
इसके अतिरिक्त -

मन्त्रे योध इवाधीरः सर्वागंङ्गैः संवृतैरपि।
चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशङ्कया।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

यहाँ पर माधुर्य गुण के व्यञ्जक वर्ण स्फुट रूप से है। अतः यहाँ भी पदलालित्य है।

अनुप्रासयुक्त पदों के आधार पर पदलालित्य - अनुप्रास के मुख्यतः दो भेद होते हैं - छेकानुप्रास तथा वृत्त्यानुप्रास। इन दोनों के ही उदाहरण हमें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। पदलालित्य के विषय में जब अनुप्रास के आधार पर विचार किया जाता है, तब यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि पदों की आवृत्ति में रसानुभूति में कोई बाधा उत्पन्न न हो। साथ ही पदों का विन्यास कृत्रिम भी नहीं होना चाहिए। व्यञ्जनों की रस के अनुरूप एक बाद आवृत्ति होने पर छेकानुप्रास होता है तथा एक से अधिक बार आवृत्ति होने पर वृत्त्यानुप्रास होता है। यथा -

तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गण्यते।
पञ्चमः पञ्चतपसस्तपनो जातवेदसाम्।।

यहाँ पर 'त्', 'ज्', स्', 'प्', 'ञ् आदि वर्णों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार है।

इसके अतिरिक्त -

मनागनभ्यावृत्त्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः।।

यहाँ पर 'व्', 'क्', 'य्' आदि वर्णों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास तथा 'क्ष्', 'म्' आदि वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

इसके अतिरिक्त -

अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा।

यहाँ पर 'व्' तथा 'ग्' वर्णों की एक से अधिक बार आवृत्ति होने के कारण वृत्त्यानुप्रास है।

इसके अतिरिक्त -

उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः।।

प्रस्तुत पद्य में 'प्', 'क्', 'र्', 'ल्' इत्यादि वर्णों की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

इसके अतिरिक्त -

अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः।
केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः।।

यहाँ पर 'म्' और 'ग्' की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

अतः स्पष्ट है कि शिशुपालवध नामक महकाव्य में कालिदास के समान उपमा, भारवि के समान अर्थगौरव तथा दण्डी के समान पदलालित्य बहुलता से प्राप्त होता है। इसीलिए यह उक्ति विद्वत्समुदाय में प्राचीन काल से अत्यन्त प्रसिद्ध रही है कि 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः।'

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

3.7.2 मेघे माघे गतं वयं

महाकवि माघविषयक प्रशस्तियों में एक यह प्रशस्ति भी विद्वत्समुदाय में प्रचलित है कि मेघदूत तथा माघकाव्य को पढ़ने में ही सारी आयु निकल गई। वस्तुतः यह कथन किसी यथार्थदर्शी विद्वान् का है। यह सत्य भी है। महाकवि कालिदास प्रणीत मेघदूत निस्सन्देह एक प्रणयकथा है, तथापि कालिदास ने मेघदूत के माध्यम से कुछ ऐसे तत्त्वों का सन्निवेश मेघदूत में किया है, जिनको समझने में बहुत काल की अपेक्षा है। अचेतन मेघ की दूत के रूप में कल्पना, यक्ष और यक्षपत्नी के एक वर्ष के विरह का अत्यन्त मनोरमता के साथ प्रस्तुतिकरण, रामगिरि आश्रम से अलकापुरी तक का विस्तार से मार्गवर्णन, मार्ग में आने वाले पर्वतों, नदियों आदि का मानवीकरण, यक्ष तथा यक्षपत्नी की विरहावस्था का वर्णन, सन्देशकथन, अभिज्ञानदान आदि सभी वर्णनों में मनोरमता के साथ अत्यन्त साहित्यिक वैशिष्ट्य है। यही कारण है कालिदास के अन्य काव्यों की अपेक्षा मेघदूत पर सर्वाधिक टीकाएँ अत्यन्त प्रौढ़ विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं।

मेघदूत में मेघ का जो मार्ग वर्णित किया गया है, वह वस्तुतः भारत की मानसूनी हवाओं का मार्ग है। अतः मेघदूत में यक्ष की कथा के व्याज से कालिदास ने भारत के मानसूनविज्ञान को अत्यन्त रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है। अतः संस्कृत काव्य तथा काव्यशास्त्र को जानने के साथ ही इसके अध्येता को भारत के मौसमविज्ञान की भी जानकारी अपेक्षित है। तभी वह इसका रसास्वाद कर पायेगा। इसके साथ ही उसे भारत के प्राचीन भूगोल यथा तत्कालीन पर्वतों, नदियों, भूभाग आदि का भी पर्याप्त ज्ञान अपेक्षित है। अतः कहने का अभिप्राय यह है कि मेघदूत में कवि के वास्तविक अभिप्राय को जानने के लिए एक अत्यन्त सुदीर्घ काल तक गहन चिन्तन-मनन की आवश्यकता है।

यही स्थिति माघकाव्य की भी है। महाकवि माघ ने शिशुपालवध में उत्कृष्ट कवित्व के साथ गूढ़ पाण्डित्य का भी निदर्शन कराया है। माघकाव्य का रसास्वादन करने के लिए किसी व्यक्ति का केवल सहृदय होना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उसे अनेक शास्त्रों में पारंगत होना भी आवश्यक है। विविध शास्त्रों में निपुणता को ही मम्मट आदि काव्यशास्त्रियों ने 'व्युत्पत्ति' कहा है। माघ के काव्य में कालिदास, भारवि, दण्डी की प्रमुख विशेषताएँ उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य प्रचुर मात्रा में है, यह प्रदर्शित किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त माघ ने अपने काव्य में वेद, वेदाङ्ग, कर्मकाण्ड, पुराणसाहित्य, काव्यशास्त्र, दर्शन, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, संगीतशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, कामशास्त्र आदि सभी शास्त्रों में अपनी विशेषज्ञता को प्रकट किया है। माघ की यह विलक्षण योग्यता है कि वह अपने काव्य में जब इन शास्त्रों की मान्यताओं का मञ्जुल सन्निवेश करते हैं, तब अल्प भी दुरूहता नहीं आती है। उनके समस्त वर्णन शास्त्रपरक होकर भी अत्यन्त स्वाभाविक लगते हैं। पाठ्यक्रम में निर्धारित अंश के आधार पर कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। प्रस्तुत सभी उदाहरणों में विविध शास्त्रों के साथ राजनीतिशास्त्र का सम्मिश्रण देखा जा सकता है। यथा -

धर्मशास्त्र -

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः।
ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम्।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अर्थात् मन्दबुद्धि व्यक्ति भी धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों को पढ़कर छः गुणों, तीन शक्तियों, तीन सिद्धियों तथा तीन उदयों की व्याख्या करने में समर्थ होते हैं। यहाँ पर बलराम के द्वारा श्रीकृष्ण से कहे गए इस कथन में धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों तथा उनके व्याख्याग्रन्थों में प्रतिपादित छः गुणों (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव), तीन शक्तियों (प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति तथा उत्साहशक्ति), तीन सिद्धियों (प्रभुसिद्धि, मन्त्रसिद्धि तथा उत्साहसिद्धि) तथा तीन उदयों (वृद्धि, क्षय और स्थान) का कथन किया गया है।

बौद्ध दर्शन -

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्।।

यहाँ पर राजाओं के लिए कार्यसिद्धि का वर्णन करते हुए बौद्ध दर्शन में प्रतिपादित शरीर में स्थित पाँच स्कन्धों का विवेचन किया गया है। बौद्धदर्शन के अनुसार शरीर में पाँच स्कन्ध - रूपस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, संज्ञास्कन्ध तथा संस्कारस्कन्ध माने गए हैं। इन्हीं पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त शरीर में 'आत्मा' नाम का कोई अन्य तत्त्व नहीं है।

राजनीतिशास्त्र -

आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती।
तदूरीकृत्य कृतिभिर्वाचस्पत्यं प्रतायते।।

यहाँ पर बलराम कहते हैं कि राजाओं को बस इस पर विचार करना चाहिए कि उनकी अपनी उन्नति और शत्रु की हानि कैसे हो सकती है ? यदि वे इन दो बातों पर ठीक से विचार कर लेते हैं तो उन्हें और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। यही राजनीति का सार है।

उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः।।

अर्थात् उपकार करने वाले शत्रु के साथ सन्धि करनी चाहिए, न कि अपकारी मित्र के साथ। इस कारण इन दोनों (मित्र तथा शत्रु) के लक्षण उपकार और अपकार दोनों को लक्ष्य करके करने चाहिए।

कामशास्त्र -

अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव।।

अर्थात् सुरतक्रीड़ा से भिन्न काल में यदि स्त्रियाँ पुरुषों की किसी बात का विरोध करती हैं तथा उस विरोध से यदि पुरुष स्वयं को अपमानित मानते हैं, तब पुरुषों को चाहिए कि वे स्त्रियों को क्षमा कर दें। क्योंकि लज्जा स्त्रियों का आभूषण होता है। कई बार वे लज्जा के कारण बहुत सी बातों का विरोध कर देती है। अतः ऐसी स्थिति में पुरुष यदि उन्हें क्षमा कर देते हैं तो यह पुरुषों का वास्तविक अपमान नहीं है तथा इस अवसर पर क्षमा पुरुषों का भूषण है। परन्तु यदि अवसर सुरतक्रीड़ा का हो तथा उस समय स्त्री बार-बार निषेधपरक वचनों का प्रयोग कर रही हो तथा इससे पुरुष स्वयं को पराभूत मान रहा हो। तब उस स्थिति में पुरुष को

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

चाहिए कि वह स्त्री के वैयात्यवचनों की परवाह न कर पराक्रम ही प्रदर्शित करे। उस अवसर पर पुरुष का पराक्रम भूषण ही माना जायेगा, दूषण नहीं।

व्याकरण तथा साहित्यशास्त्र -

असम्पादयतः कश्चिदर्थः जातिक्रियागुणैः।
यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम्।।

संकेतग्रह के सम्बन्ध में कई मत पाये जाते हैं। उनमें से वैयाकरणों का मत है कि व्यक्ति में संकेतग्रह मानने से आनन्त्य और व्यभिचार दोष उपस्थित हो जाते हैं, इसलिए व्यक्ति में संकेतग्रह न मानकर व्यक्ति की उपाधि - जाति (गोत्व), गुण (शुक्लादि), क्रिया (पाकादि) तथा यदृच्छा (डित्थादि) में संकेतग्रह मानना चाहिए। मम्मट ने काव्यप्रकाश में वैयाकरणों के इस संकेतग्रहविषयक मतको इस प्रकार से प्रस्तुत किया है - **'संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादिः।'**

ज्यौतिषशास्त्र -

तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत्।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्।।

यहाँ पर ज्योतिषशास्त्र के विषय सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण का प्रतिपादन किया गया है। समय-समय पर केतु के रूप में सूर्य को तथा राहु के रूप में चन्द्रमा को ग्रसता रहता है, जिसे 'ग्रहण' कहते हैं। परन्तु सूर्य तेजस्विता से युक्त होता है, इसलिए राहु सूर्य को देर से ग्रसता है तथा चन्द्रमा शीतल किरणों वाला होने से कोमल स्वभाव का होता है, इसलिए राहु चन्द्रमा को शीघ्र ही ग्रस लेता है। यहाँ पर यह स्पष्ट है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों समान रूप से राहु के शत्रु हैं, तथापि जब राहु को ग्रसना होता है, तब वह पहले चन्द्रमा को अपना लक्ष्य बनाता है, उसके बाद सूर्य को। अर्थात् सूर्यग्रहण की अपेक्षा चन्द्रग्रहण अधिक होता है।

योगशास्त्र -

तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गण्यते।
पञ्चमः पञ्चतपसस्तपनो जातवेदसाम्।।

योगशास्त्र में तप का बड़ा महत्त्व है। पृथिवी पर जब कोई तपस्वी पञ्चाग्नितप करता है, तब उसे स्वयं को पाँच अग्नियों के मध्य स्थित करना होता है। उसके पञ्चाग्नितप में सूर्य की गणना भी होती है। अर्थात् पञ्चाग्नितप में चार अग्नियाँ पर्जन्य, संसार, पुरुष तथा स्त्री को माना जाता है तथा पञ्चम अग्नि के रूप में सूर्य को स्वीकार किया जाता है।

चिकित्साशास्त्र -

चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति।।

अर्थात् चतुर्थ उपाय दण्ड से वश में करने वाले शत्रु के विषय में साम का व्यवहार हानिकारक होता है। पसीना लाने वाले अपरिपक्व ज्वर को कौन बुद्धिमान् जल से सींचता है? अर्थात् कोई नहीं। जैसे किसी को

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पसीना लाने वाले अपरिपक्व ज्वर हो जाये तथा वह किसी बुद्धिमान् चिकित्सक के पास उपचार के लिए जाये, तब कोई भी बुद्धिमान् चिकित्सक उसे जल से सींचकर उसके ज्वर को शान्त नहीं करता है।
यह केवल दिग्दर्शनमात्र है। इस प्रकार के असंख्य उदाहरण सम्पूर्ण माघकाव्य में प्राप्त होते हैं। कहने का भाव यह है कि पहले सहृदय उक्त धर्मशास्त्र, बौद्धदर्शन, राजनीतिशास्त्र, कामशास्त्र, व्याकरण, काव्यशास्त्र, ज्यौतिषशास्त्र, योगदर्शन, चिकित्साशास्त्र इत्यादि का सम्यक् रूप से टीकाओं, भाष्यग्रन्थों के साथ अध्ययन करे, तब ही वह माघकाव्य का रसास्वादन करने में समर्थ हो पायेगा। अब सुधी पाठक यह सरलता से समझ सकते हैं कि उक्त शास्त्रों के समुचित अध्ययन में कितने समय की अपेक्षा है ? अतः समालोचकों का माघकाव्य के विषय में यह कथन 'मेघे माघे गतं वयः' पूर्णत सत्य है तथा इसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है।

3.7.3 तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयं

महाकवि माघविषयक प्रशस्तियों में एक और प्रशस्ति भी विद्वत्समुदाय में प्रचलित है कि 'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।' अर्थात् भारवि की शोभा तब तक ही होती है, जब तक माघ का उदय नहीं होता है। यहाँ पर 'भारवि' तथा 'माघ' दोनों शब्दों में श्लेष है। 'भारवि' शब्द के अर्थ हैं - सूर्य तथा महाकवि भारवि और 'माघ' शब्द के भी दो ही अर्थ हैं - माघ नामक माह तथा महाकवि माघ। अर्थात् सूर्य की किरणों की प्रचण्डता तब तक ही होती है, जब तक माघ नामक माह का उदय नहीं हो पाता है। माघ नामक माह के आते ही सूर्य की किरणें मन्द हो जाती हैं। उसी प्रकार से कुछ काव्य-समीक्षकों का मानना है कि भारवि के काव्य की शोभा तब तक ही सहृदयों को प्रभावित करती है, जब तक उन्होंने माघ के काव्य को न पढ़ा हो। जब माघकाव्य को पढ़ लेते हैं, तब उसके सामने भारवि के काव्य की शोभा क्षीण प्रतीत हो जाती है।
महाकवि भारवि के द्वारा विचित्र मार्ग का अनुकरण कर एक नवीन कलात्मक काव्यशैली का प्रारम्भ किया गया था,जिसमें पूर्ववर्ती कालिदास आदि कवियों के द्वारा प्रयोज्य भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष को प्रधानता दी गई। परन्तु भारवि द्वारा प्रादुर्भूत नवीन काव्यशैली को प्रौढ़ता प्रदान करने का कार्य माघ ने किया। अधोलिखित कुछ बिन्दुओं के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है कि माघ के सामने भारवि के काव्य की शोभा किस प्रकार से क्षीण होती हुई प्रतीत होती है -

i. भारवि तथा माघ दोनों ने ही अपने काव्यों के मूल कथानक को महाभारत से लिया है। भारवि ने महाभारत के वनपर्व के अत्यन्त संक्षिप्त कथानक को ग्रहण कर 18 सर्गों में किरातार्जुनीय महाकाव्य की रचना की है, वहीं माघ ने उनसे प्रतिस्पर्धा करते हुए महाभारत के सभापर्व के अत्यन्त संक्षिप्त कथानक को ग्रहण कर 20 सर्गों में शिशुपालवध महाकाव्य की रचना की है। अतः सर्गों के विन्यास में माघ भारवि से आगे निकल गए हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

ii. भारवि ने किरातार्जुनीय का प्रारम्भ 'श्री' शब्द के साथ किया है तथा अन्त 'श्री' शब्द के पर्याय 'लक्ष्मी' शब्द से किया है। वहीं माघ ने आरम्भ तथा अन्त दोनों 'श्री' शब्द से ही कर भारवि से अधिक चमत्कार उपस्थित कर दिया है।

iii. भारवि ने प्रथम सर्ग का आरम्भ वनेचर द्वारा दुर्योधन की शासनव्यवस्था के वर्णन से प्रारम्भ किया है। माघ ने भी शिशुपाल का वर्णन देवर्षि नारद के मुख से कहलवाया है। नारद ने इस वर्णन में शिशुपाल के जन्मान्तर के कुकृत्यों का वर्णन कर प्रतिनायक शिशुपाल के वध की आवश्यकता का प्रतिपादन कर दिया है तथा इसे इन्द्रादि देवताओं की इच्छा के रूप में भी प्रतिपादित किया है। अतः स्पष्ट है कि यहाँ भी माघ भारवि से अधिक चमत्कार को उत्पन्न करने में सफल रहे हैं।

iv. भारवि ने द्वितीय सर्ग में भीमसेन के उद्धत वचनों को प्रस्तुत कर युधिष्ठिर के नीतियुक्त वचनों से उनका समाधान प्रस्तुत किया है। यही कार्य माघ ने भी किया है। माघ ने पहले बलराम से शिशुपाल पर अभी ही आक्रमण कर देना चाहिए, इस भाव के समर्थन में अनेक नीतियुक्त वचनों का संग्रह अनेक शास्त्रों से समन्वित कर प्रस्तुत किया है। उसके बाद उद्धव के नीतियुक्त वचनों से उनका खण्डन कर दिया है। उक्त दोनों ही प्रसंगों में माघ की वर्णनकुशलता भारवि से कहीं अधिक देखने को मिलती है।

v. भारवि के द्वारा प्रवर्तित कलात्मक पद्धति का माघकाव्य में अधिक प्रकर्ष देखने को मिलता है।

vi. भावों की अभिव्यक्ति में भी माघ भारवि से आगे हैं।

vii. विविध विषयों की सम्यक्, सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध व्यवस्थापन में भी माघ भारवि से श्रेष्ठ दिखाई देते हैं।

viii. अलंङ्कारों की विविधता तथा स्वाभाविकता में भी भारवि माघ से पीछे रह जाते हैं।

ix. भारवि ने शिव का वर्णन किया है, वहीं माघ ने विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण का वर्णन ही नहीं, अपितु उसे अपने काव्य का नायक बनाया है।

x. भारवि ने शरद् ऋतु के वर्णन को प्रमुखता दी है, वहीं माघ ने सभी छः ऋतुओं के वर्णन में अपनी कुशलता प्रदर्शित की है।

xi. भारवि ने किरातार्जुनीय के पञ्चम सर्ग में 16 छन्दों का प्रयोग किया है। वहीं माघ ने उनकी प्रतिस्पर्धा में शिशुपालवध के चतुर्थ सर्ग में 22 छन्दों का प्रयोग किया है। यहाँ छन्द प्रयोग के वैशिष्ट्य में भी माघ भारवि से कहीं आगे हैं।

xii. इसके अतिरिक्त पुष्पचयन, जलक्रीड़ा, प्रभातवर्णन, सन्ध्या तथा चन्द्रोदय वर्णन, नायक को आकर्षित करने के लिए स्त्रियों की मनोरम चेष्टाएँ, सैन्यशिविरवर्णन, युद्धवर्णन, चित्रलघड्डारों का

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

प्रयोग आदि दोनों महाकाव्यों में मिलते हैं, तथापि प्रत्येक स्थल पर भारवि की अपेक्षा माघ की ही वर्णनकुशलता देखी जाती है।

xiii. सर्गों में आकार की दृष्टि से भी शिशुपालवध के सर्गों का आकार किरातार्जुनीय के सर्गों के आकार से विस्तृत है।

अतः उक्त सभी तथ्यों के आद्धर पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारवि की काव्यत्मकता तभी तक ही सहृदयों को आकर्षित कर पाती है, जब तक् उन्होंने माघकाव्य को नहीं पढ़ा है। अतः समालोचकों का यह कथन कि 'तावद् भा भरवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः' पूर्णतः यथार्थ है।

पाठ्य-प्रश्न

5. निम्नलिखित प्रश्नों में सही/गलत उत्तर का चयन कीजिए।

i. 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः।' यह उक्ति कालिदास के लिए कही गई है।()

ii. भारवि अर्थगौरव के लिए प्रसिद्ध माने जाते हैं।()

iii. माघ पदलालित्य के लिए जाने जाते हैं।()

iv.मेघदूत कालिदास की रचना है।()

v. माघ ने शिशुपालवधम् का प्रारम्भ एवं अन्त दोनों 'श्री' शब्द से किया है।()

3.8 सारांश

छात्रो! प्रस्तुत पाठ के अध्ययन से आपने महाकवि माघ के जन्मस्थान एवं समय को जाना तथा उनके पारिवारिक पृष्ठभूमि से भी परिचित हुए। तत्पश्चात् शिशुपालवधम् महाकाव्य का नामकरण कवि अथवा प्रतिनायक के नाम के आधार पर किया गया है इसके सम्बन्ध में आपने साहित्यदर्पण की लक्ष्मी, विवृत्ति इत्यादि टीकाओं तथा विद्वानों के अनेक मतों का अध्ययन किया और समझा कि इस महाकाव्य का नाम कवि तथा प्रतिनायक दोनों के नाम पर निर्धारित किया गया है। शिशुपालवधम् की मूलकथा का स्त्रोत महाभारत के सभापर्व तथा श्रीमद्भागवत्पुराण के दशम स्कन्ध से माना जाता है तथापि महाकवि माघ ने इसमें परिवर्तन करते हुए 2० सर्गों तथा 1650 पद्यों में इसकी रचना की है। प्रस्तुत महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की कथावस्तु को आपने जाना। महाकवि माघ के लिए संस्कृत साहित्य जगत में अनेक उक्तियों का प्रयोग किया

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

गया है जैसे - माघे सन्ति त्रयो गुणाः, मेघे माघे गतं वयः, तावद् भा भारवेर्भाति नोदयः इत्यादि इन कथनों के विषय में विस्तारपूर्वक समझा तथा साथ ही महाकवि माघ के वैशिष्ट्य को समझने में सक्षम हो सके।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

मुक्त्वा	-	छोड़कर
महीभृताम्	-	राजा
पुंस:	-	पुरुष
प्रध्वंस	-	नष्ट करना
मानिन:	-	स्वाभिमानी
वैयात्य	-	निषेध
महार्णव	-	समुद्र
सामवादा:	-	सामवचन (शान्तिपूर्ण वचन)

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

3.10 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1.
   i. महाकवि माघ
   ii. किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम्
   iii. माघ से
   iv. सुप्रभदेव
   v. दत्तक
   vi. वसन्तगढ़
   vii. 675ई.

2.
   i. 4
   ii. साहित्यदर्पण
   iii. दोनों के आधार पर

3.
   i. प्रथम सर्ग
   ii. ii. महाभारत का सभापर्व तथा श्रीमद्भागवत्पुराण दशम् स्कन्ध
   iii. iii. 20 सर्ग
   iv. iv. 1650 श्लोक

4.
   i. सर्गों में
   ii. धीरोदात्त
   iii. महाभारत सभापर्व
   iv. प्रतिनायक
   v. वस्तुनिर्देशात्मक

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

iv. शिशुपाल v. अंगीरस वीर, अंग रस श्रृंगार, शान्त, रौद्र, भयानक, बीभत्स तथा अद्भुत	5. i. गलत ii. ii. सही iii. iii. गलत iv. iv. सही v. v. सही

3.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. महाकवि माघ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. शिशुपालवध के प्रथम सर्ग की कथावस्तु का वर्णन कीजिए।
3. **'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।'** इस उक्ति का विश्लेषण कीजिए।

3.12 सन्दर्भ-ग्रंथ

- शास्त्री, हरगोविन्द(व्या-), *शिशुपालवधम्*, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2013

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य-सामग्री

- शास्त्री, शालिग्राम(व्या.), *साहित्यदर्पण*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2000
- काणे, पी.वी., *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2002
- शर्मा 'ऋषि', उमाशंकर, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 1999

© DDCE, COL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ–4

शिशुपालवधम् (द्वितीय सर्ग-पद्य संख्या 26-37): मूलपाठ, अनुवाद, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ

संरचना

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 पद्यांश की व्याख्या(द्वितीय सर्ग 26-37)

  4.3.1 राजनीतिक व्यवस्था वर्णन

  4.3.2 राजा के आवश्यक कर्तव्य

  4.3.3 राजमंत्रणा वर्णन

  4.3.4 राजसम्पत्ति व्यवस्था

  4.3.5 शत्रु विनाश सम्बन्धी मंत्रणा

  4.3.6 शत्रु एवं मित्र भेद

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

4.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

4.8 संदर्भ ग्रंथ

4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

4.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी :

- महाकवि माघ के साहित्यिक शैली से परिचित होंगे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- बलराम, उद्धव तथा श्रीकृष्ण के संवाद (भाषा शैली) का बोध होगा।
- राजनीति सम्बन्धी प्रमुख बिन्दुओं को समझ पायेंगे।
- पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान होगा।
- शिशुपालवधम् द्वितीय सर्ग (पद्य संख्या 26-37) के विषय-वस्तु से सब परिचित होंगे।

4.2 प्रस्तावना

इन्द्र नारद को दूत बनाकर श्रीकृष्ण के पास द्वारका भेजते हैं। नारद इन्द्र का सन्देश सुनाते हुए कहते हैं कि इस समय लोककल्याण के लिए शिशुपाल का वध करना आवश्यक है तथा यह पुनीत कार्य आप ही कर सकते हो। तब श्रीकृष्ण के पास दो विकल्प हैं- या तो वह युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के निमन्त्रण को स्वीकार कर उनके यज्ञ में जायें अथवा देवकार्य के सम्पादन के लिए शिशुपाल से युद्ध करने चेदि राज्य में जायें। यह संशय होने पर वे उद्धव और बलराम से इस विषय पर मन्त्रणा करते हैं। उद्धव कुछ बोलना चाहते हैं, परन्तु वे बलराम को बोलने का इच्छुक जानकर चुप हो जाते हैं। तदनन्तर कृष्ण के लिए अब शिशुपाल पर आक्रमण करना चाहिए, इस बात के समर्थन में बलराम अनेक नीतियुक्त वचन कहते हैं।

4.3 पद्यांश की व्याख्या (द्वितीय सर्ग 26-27)

4.3.1 राजनीतिक व्यवस्था वर्णन

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः।
ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम्।।26।।

अन्वय -दुर्मेधसः अपि ग्रन्थान् अधीत्य षड्गुणाः, तिस्रः शक्तयः, (तिस्रः) सिद्धयः त्रयः उदयाः च इति व्याकर्तुम् अलम् (भवन्ति)।

शब्दार्थ -दुर्मेधसः = मन्दबुद्धि व्यक्ति, अपि = भी, ग्रन्थान् = ग्रन्थों को, अधीत्य = पढ़कर, षड्गुणाः = छः गुण, तिस्रः = तीन (स्त्रीलिंग), शक्तयः = शक्तियाँ, सिद्धयः = सिद्धियाँ, त्रयः = तीन (पुल्लिङ्ग), उदयाः = उदय, च = और, व्याकर्तुम् = व्याख्या करने में, अलम् = समर्थ।

अनुवाद -मन्दबुद्धि व्यक्ति भी (धर्मशास्त्रीय) ग्रन्थों को पढ़कर छः गुणों, तीन शक्तियों, तीन सिद्धियों तथा तीन उदयों की व्याख्या करने में समर्थ होते हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

व्याख्या -(बलराम श्रीकृष्ण से कहते हैं कि) मन्दबुद्धि व्यक्ति भी धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों तथा उनके व्याख्याग्रन्थों को पढ़कर उनमें वर्णन किए गए छः गुणों (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव), तीन शक्तियों (प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति तथा उत्साहशक्ति), तीन सिद्धियों (प्रभुसिद्धि, मन्त्रसिद्धि तथा उत्साहसिद्धि) तथा तीन उदयों (वृद्धि, क्षय और स्थान) की व्याख्या करने में समर्थ होते हैं। परन्तु किस अवसर पर क्या करना चाहिए, यह तो नीतिनिपुण व्यक्ति ही जान सकते हैं। केवल पुस्तकज्ञान रखने वाले व्यक्ति इसमें समर्थ नहीं होते हैं।

i. **विशेष** - यहाँ पर व्याजोक्ति से बलराम उद्धव की निन्दा में इस वाक्य को कहते हैं। बलराम का आशय यह है कि उद्धव के पास मात्र पुस्तकज्ञान है। पुस्तकों को पढ़कर तो कोई भी ऊपर कहे गए धर्मशास्त्रिय तत्त्वों की व्याख्या करने में समर्थ हो सकता है, परन्तु कब किस अवसर पर क्या करना चाहिए, यह तो नीतिज्ञ व्यक्ति ही जानते हैं, उद्धव जैसे व्यक्ति नहीं।

ii. षड्गुण-मनु के अनुसार षड्गुण निम्न प्रकार से हैं -

सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा।।

सन्धि -शत्रु को जीतने के लिए किसी अन्य राजा के साथ मित्रता 'सन्धि' कहलाती है।
विग्रह- विरोध को 'विग्रह' कहते हैं।
यान- शत्रु को जीतने के लिए उसके राज्य की ओर यात्र 'यान' कहलाता है।
आसन- उचित समय की प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहना आसन कहलाता है।
दैधीभाव- कार्यसिद्धि के लिए सेना के दो भाग कर देना दैधीभाव कहलाता है।
संश्रय - शत्रु से पीड़ित होकर किसी बलवान का आश्रय लेना संश्रय कहलाता है।

iii. **तिस्रः शक्तयः** - प्रभुशक्ति (कोष, दुर्ग, दण्ड), मन्त्रशक्ति तथा उत्साहशक्ति ये तीन शक्तियाँ कहलाती हैं।

iv. **सिद्धयः** - उक्त तीन प्रकार की शक्तियों में सफलता प्राप्त कर लेना तीन प्रकार की - प्रभुसिद्धि, मन्त्रसिद्धि तथा उत्साहसिद्धि ये सिद्धियाँ कहलाती हैं।

v. **त्रयः उदयाः** - वृद्धि, क्षय और स्थान ये तीन उदय कहलाते हैं।

vi. **षड्गुण**, तीन शक्तियों तथा तीन उदयों को नीतिशास्त्रियों ने 'त्रिवर्ग' भी कहा है -

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः प्रभावोत्साहमन्त्रजाः।
क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च त्रिवर्गो नीतिवेदिनाम्।।

vii. **छन्द** - इस सर्ग के सभी पद्यों में अनुष्टुप छन्द है। लक्षण है -

श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अर्थात् श्लोक अर्थात् अनुष्टुप् छन्द में प्रत्येक चरण का छठा वर्ण गुरु होता है तथा पंचम वर्ण सर्वत्र लघु होता है, द्वितीय तथा चतुर्थ पाद का सप्तम वर्ण ह्रस्व होता है तथा प्रथम तथा तृतीय पाद का सप्तम वर्ण दीर्घ होता है।

viii. **व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ** - दुर्मेधसः- दुष्टा मेधा येषां ते। बहुव्रीहि समास।

व्याकर्तुम् -व्याख्यातुम् अलं समर्थाः। 'पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु' सूत्र से समर्थ अर्थ में तुमुन् प्रत्यय।

अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा।
निमित्तादपराद्धेषोर्धानुष्कस्येव वल्गितम्।।27।।

अन्वय -अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्मिनः वाग्जालं निमित्तात् अपराद्धेषोः धानुष्कस्य वल्गितम् इव वृथा (भवति)।

शब्दार्थ -अनिर्लोडितकार्यस्य = कार्य का आलोडन (विचार) न करने वाले का, वाग्मिनः = बहुत बोलने वाले व्यक्ति का, वाग्जालं = वचनों का समूह, निमित्तात् = लक्ष्य से, अपराद्धेषोः = भ्रष्ट हुए बाण वाले, धानुष्कस्य = धनुर्धर के, वल्गितम् = चपलता, इव = के समान, वृथा = व्यर्थ।

अनुवाद -किसी कार्य का आलोडन न करने वाले अर्थात् कार्य के विषय में सम्यक् रूप से विचार न करने वाले वाग्मी (बहुत बोलने वाले व्यक्ति) का वाग्जाल (वचनों का समूह) निमित्त अर्थात् लक्ष्य से भ्रष्ट हुए बाण वाले धनुर्धर की चपलता के समान व्यर्थ ही होता है।

व्याख्या -जिस प्रकार कोई धनुर्धर अपने लक्ष्य पर जहाँ उसे बाण छोड़ना है, पर्याप्त विचार किए बिना ही बाण छोड़ देता है तथा बाण छोड़ने के बाद व्यर्थ ही उछल-कूद करने लग जाता है। परन्तु बाद में पता चलता है कि उसका बाण तो लक्ष्य पर लगा ही नहीं। तब वह उपहास का पात्र बनता है। ठीक उसी प्रकार से किसी कार्य को हमें करना है, उसको करने से पूर्व उसमें लगने वाले समय, उसके परिणाम आदि पर पर्याप्त विचार-विमर्श कर लेना चाहिए। जो व्यक्ति किसी कार्य को करने से पहले उसके परिणाम आदि पर ठीक से विचार-विमर्श नहीं करता है तथा अपनी प्रशंसा में बहुत बढ़-चढ़ कर बातें करने लगता है, उसकी वही स्थिति होती है, जैसी स्थिति लक्ष्य से भ्रष्ट हुए बाण वाले धनुर्धर की होती है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

विशेष - i. इस पद्य से भी यही ध्वनि प्रतीत हो रही है कि कृष्ण को उद्धव की बातों को बहुत गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए। उद्धव में केवल वाग्मिता है।

ii. अलंकार - इस पद्य में अनुप्रास तथा दृष्टान्त अलंकार हैं। अनुप्रास अलंकार का लक्षण है - 'वर्णसाम्यमनुप्रासः।' अर्थात् स्वरों का भेद होने पर भी व्यञ्जनों की समानता से अनुप्रास अलंकार होता है। एक बार आवृत्ति होने पर छेकानुप्रास तथा अनेक बार आवृत्ति होने पर वृत्त्यानुप्रास होता है। प्रस्तुत पद्य के द्वितीय चरण में 'व्' तथा 'ग्' वर्णों की एक से अधिक बार आवृत्ति होने के कारण वृत्त्यानुप्रास है।

दृष्टान्त अलंकार का लक्षण है - **'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्।'** अर्थात् उपमान, उपमेय, उनके विशेषण और साधारणधर्म आदि का बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है। यहाँ पर चपल धनुर्धर तथा वाग्मी के साधारण धर्मों में कवि ने बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव प्रदर्शित किया है।

iii. व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ -अनिर्लोडितकार्यस्य - अनिर्लोडितं नालोकितं कार्यं येन तस्य। बहुव्रीहि समास।

वाग्मी-वाचोऽस्य सन्तीति वाग्मी वावदूकः ।वाच्+ग्मिनि प्रत्यय।

धानुष्कस्य -धनुः प्रहरणम् अस्य इति धानुष्कः।

4.3.2 राजा के आवश्यक कर्तव्य

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रे महीभृताम्।।28।।

अन्वय -सर्वकार्यशरीरेषु अङ्गस्कन्धपञ्चकं मुक्त्वा सौगतानाम् आत्मा इव महीभृतां अन्यो मन्त्रः नास्ति।

शब्दार्थ-सर्वकार्यशरीरेषु = शरीर से किए जाने वाले (नित्य-नैमित्तिक) समस्त कार्यों में, अङ्गस्कन्धपञ्चकं = उपाय आदि पाँच अङ्ग, बौद्ध दर्शन में प्रतिपादित पाँच स्कन्ध, मुक्त्वा = छोड़कर, सौगतानाम् = बौद्धों के, महीभृतां = राजाओं का, नास्ति = नास्ति।

अनुवाद-शरीर से किए जाने वाले (नित्य-नैमित्तिक) समस्त कार्यों में (उपाय आदि) पाँच अङ्गों के अतिरिक्त राजाओं के लिए (कार्यसिद्धि के लिए) कोई अन्य मन्त्र नहीं है, जिस प्रकार (इस शरीर में) पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त बौद्धों के मत में 'आत्मा' नाम का कोई अन्य तत्त्व नहीं होता है।

व्याख्या - राजाओं के लिए कार्यसिद्धि के लिए पाँच अङ्गों का निर्देश नीतिकारों ने किया है। वे पाँच अङ्ग हैं - कार्य के आरम्भ करने के उपाय, कार्य के लिए उपयोगी समस्त पदार्थों का संग्रह, कार्य के लिए उचित देश, काल आदि का विभाग, कार्य के समापन में सम्भावित समस्त विपत्तियों का प्रतीकार तथा कार्य की सिद्धि। जो राजा इन पाँच अङ्गों को समुचित रूप से जानकर उनको अपनी राजनीति में कार्यान्वित करता

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

है, उसके समस्त कार्य सिद्ध हो जाते है। इन पाँच अङ्गों के अतिरिक्त राजा की कार्यसिद्धि के लिए कोई अन्य मन्त्र नहीं है। बलराम कहते हैं कि ये सभी हमारे पास हैं। अतः अब हमें और प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए तथा शिशुपाल पर आक्रमण कर देना चाहिए। जिस प्रकार बौद्धदर्शन के अनुसार शरीर में पाँच स्कन्ध - रूपस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, संज्ञास्कन्ध तथा संस्कारस्कन्ध माने गए हैं। इन्हीं पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त शरीर में 'आत्मा' नाम का कोई अन्य तत्त्व नहीं है।

विशेष - i. **अङ्गस्कन्धपञ्चकम्** -कामन्दक ने राजाओं की कार्यसिद्धि के पाँच अङ्ग बताए हैं -

सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः।
विपत्तेश्च प्रतीकारः सिद्धिः पञ्चाङ्गमिष्यते।।

बौद्धदर्शन के अनुसार शरीर में पाँच स्कन्ध होते हैं। संसार में दिखाई देने वाले सभी पदार्थों का आकार रूपस्कन्ध है। उनका ज्ञान वेदनास्कन्ध है। उनका स्मरण रहना तथा धाराप्रवाह होने वाला आश्रय ज्ञान विज्ञानस्कन्ध है। समस्त पदार्थों का नाम संज्ञास्कन्ध तथा समस्त वासनाओं के प्रपञ्च को संस्कार स्कन्ध कहते हैं। इन्हीं पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त शरीर में 'आत्मा' नाम का कोई अन्य तत्त्व नहीं है।

ii. सौगतानाम् - 'सौगत' शब्द बौद्धों के लिए प्रयुक्त होता है। 'सुगत' शब्द का अर्थ बुद्ध है। 'सुगतो भक्तिर्भजनीय एषां ते सौगता बौद्धाः।' अर्थात् बुद्ध के लिए भक्ति है जिनकी, वे बौद्ध।

iii. अलंकार - इस पद्य में उपमा अलंकार है। लक्षण है -**'साधर्म्यमुपमा भेदे।'** अर्थात् उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर साधर्म्य का कथन उपमा अलंकार कहलाता है। यहाँ पर बौद्धमत उपमान, राजा की कार्यसिद्धि उपमेय, पञ्चाङ्ग साधारणधर्म तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है। 'अङ्गस्कन्धपञ्चकम्' में श्लेष है, अतः यह श्लेषानुप्राणित उपमा का उदाहरण होगा।

iv. व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ -सर्वकार्यशरीरेषु -सर्वाणि कार्याणि सन्ध्यादीनि तानि शरीराणि। उपमित समास।

मुक्त्वा-मुच्+क्त्वा प्रत्यय।

महीभृताम् -महीं बिभर्त्ति पालयति इति। भृ+क्विप्।

4.3.3 राजमंत्रणा वर्णन

मन्त्रे योध इवाधीरः सर्वाङ्गैः संवृतैरपि।
चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशङ्कया।।29।।

अन्वय -संवृतैः सर्वाङ्गैः अपि परेभ्यः भेदशङ्कया अधीरः योधः इव मन्त्रः चिरं स्थातुं न सहते।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

शब्दार्थ - संवृतैः = ढके हुए, सर्वाङ्गैः = सभी अङ्गों, परेभ्यः = शत्रुओं से, भेदशङ्कया = भेदन की आशंका से (भीरु योद्धा के पक्ष में), भेद की आशंका से (राजा के पक्ष में), अधीरः = भीरु, योधः = योद्धा, मन्त्रः = मन्त्रणा, चिरं = देर तक, स्थातुं = स्थिरता (विलम्ब) को, सहते = सहन करती है।

अनुवाद - (कवच इत्यादि से) ढ़के हुए सभी अङ्गों के होते हुए भी शत्रुओं से भेदन की आशंका से भीरु योद्धा के समान (राजाओं की) मन्त्रणा भी शत्रुओं के द्वारा (गुप्तचर आदि के द्वारा) भेद की आशंका से देर तक स्थिरता को सहन नहीं करती है।

व्याख्या - जिस प्रकार से कोई योद्धा युद्ध में जाते समय अपने समस्त शरीर के अङ्गों को कवच इत्यादि से भली प्रकार से ढक लेता है, परन्तु वह स्वभाव से भीरु होने के कारण उसे सदैव ही शत्रुओं से भेदन की आशंका रहती है। उसी प्रकार से भले ही कोई राजा पूर्वोक्त पाँच उपायों से सुरक्षित है, परन्तु शत्रु के गुप्तचर इत्यादि द्वारा उसके मन्त्रभेद की आशंका सदैव ही बनी रहती है। ऐसी स्थिति में भीरु योद्धा के समान राजाओं की मन्त्रणा भी देर तक स्थिर नहीं रहती है। अतः हमें अब और समय की प्रतीक्षा किए बिना तुरन्त ही शिशुपाल पर आक्रमण कर देना चाहिए, बलराम के इस कथन का यह आशय है।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में 'सर्वाङ्गैः' तथा 'भेदशङ्कया' पदों में श्लेष अलंकार है। लक्षण है -

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसौ।

अर्थात् अर्थ का भेद होने पर समान आकार के भिन्न-भिन्न शब्द एक साथ उच्चारण के कारणजब परस्पर मिल कर एक हो जाते हैं, वह श्लेष अलंकार होता है।

इस पद्य में उपमा अलंकार भी है।यहाँ पर 'भीरू योद्धा' उपमान, 'मन्त्र' उपमेय, 'स्थिरता को सहन नहीं करती है' साधारणधर्म तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है। अतः यह भी श्लेषानुप्राणित उपमा का उदाहरण होगा।

ii. **व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ - स्थातुम्** -स्था+तुमुन् प्रत्यय।

भेदशङ्कया-भेदस्य शङ्कया। षष्ठी तत्पुरुष।

आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती।
तदूरीकृत्य कृतिभिर्वाचस्पत्यं प्रतायते।।30।।

अन्वय - आत्मोदयः परज्यानिः इति द्वयम् इयती नीतिः, तद् ऊरीकृत्य कृतिभिः वाचस्पत्यं प्रतायते।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

शब्दार्थ - आत्मोदयः = अपनी उन्नति, परज्यानिः = शत्रु की हानि, द्वयम् = दो, इयती = इतनी सी ही, नीतिः = राजनीति, तद् = उन दोनों (अपनी उन्नति और शत्रु की हानि), ऊरीकृत्य = आश्रय लेकर, कृतिभिः = कुशलों के द्वारा, वाचस्पत्यं = वाग्मिता, प्रतायते = विस्तार किया जाता है।

अनुवाद - अपनी उन्नति (और) शत्रु की हानि, इन दो (पर ही विचार करना चाहिए, बस) इतनी सी ही राजनीति है, उन दोनों (अपनी उन्नति और शत्रु की हानि) का आश्रय लेकर कुशल (राजाओं) के द्वारा वाग्मिता का विस्तार किया जाता है।

व्याख्या - बलराम कहते हैं कि राजाओं को बस इस पर विचार करना चाहिए कि उनकी अपनी उन्नति और शत्रु की हानि कैसे हो सकती है ? यदि वे इन दो बातों पर ठीक से विचार कर लेते हैं तो उन्हें और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। यही राजनीति का सार है। कुशल राजा अपनी उन्नति और शत्रु की हानि इन दो कार्यो को करते हुए ही अपनी वाग्मिता का विस्तार करते हैं। बलराम के इस कथन का आशय यह है कि अब हमें अपनी उन्नति और शिशुपाल की हानि कैसे हो, बस इसी पर विचार करना चाहिए।

विशेष - i. व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ - आत्मोदयः -आत्मनः उदयः। षष्ठी तत्पुरुष।

ज्यानिः -'वीज्याज्वरिभ्यो निः' इस औणादिक सूत्र से निः प्रत्यय।

ऊरीकृत्य -'ऊर्यादिच्विडाचश्च' सूत्र से गतिसंज्ञा होने पर 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से समास में क्त्वा के अर्थ में ल्यप् प्रत्यय।

4.3.4 राजसम्पत्ति व्यवस्था

तृप्तियोगः परेणापि महिम्ना न महात्मनाम्।
पूर्णश्चन्द्रोदयाकाङ्काक्षी दृष्टान्तोऽत्र महार्णवः।।31।।

अन्वय - महात्मनां परेणापि महिम्ना तृप्तियोगः न (भवति)। अत्र चन्द्रोदयाकाङ्क्षी पूर्णः महार्णवः दृष्टान्तः (अस्ति)।

शब्दार्थ - महात्मनां = महान् व्यक्तियों को, परेणापि = बड़ी भी, महिम्ना = समृद्धि से, तृप्तियोगः = सन्तोषलाभ, अत्र = यहाँ अर्थात् इस प्रसङ्ग में, चन्द्रोदयाकाङ्क्षी = चन्द्रमा के उदय को चाहने वाला, महार्णवः = महासमुद्र, दृष्टान्तः = उदाहरण।

अनुवाद- महान् व्यक्तियों को बड़ी समृद्धि से भी सन्तोषलाभ नहीं होता है। यहाँ अर्थात् इस प्रसङ्ग में चन्द्रमा के उदय को चाहने वाला पूर्ण महासमुद्र दृष्टान्त अर्थात् उदाहरण है।

व्याख्या - बलराम कहते हैं महान् व्यक्ति चाहे जितनी भी बड़ी समृद्धि को प्राप्त कर ले, उन्हें कभी भी सन्तोषलाभ नहीं होता है। अर्थात् वे कभी भी समृद्धि के विषय में सन्तुष्ट नहीं होते हैं। जैसे चन्द्रमा प्रतिदिन

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

एक-एक कला के साथ बढ़ता रहता है, परन्तु समुद्र उसके उदय को निरन्तर चाहता है। उसी प्रकार से चन्द्रमा की कलाओं के समान भले ही राजा की समृद्धि निरन्तर बढ़ती रहे, फिर भी राजा को कभी अपनी समृद्धि से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। अतः बलराम के इस कथन का आशय है कि भले ही हमारे शत्रु शिशुपाल की हानि होती है या नहीं, हमें अपनी समृद्धि के विषय में सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में उपमा अलंकार है। यहाँ 'महान् व्यक्तियों को बड़ी समृद्धि से भी सन्तोषलाभ नहीं होता है' इस तथ्य की पुनरुक्ति न हो, इसलिए महार्णव को महान् व्यक्तियों के विशेषणरूप में प्रतिपादित किया है। पद्य में 'दृष्टान्त' शब्द को देखकर दृष्टान्त अलंकार की सम्भावना नहीं करनी चाहिए। दृष्टान्त में प्रकृत और अप्रकृत में बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होता है, जो यहाँ नहीं है। यहाँ 'पूर्ण महार्णव' उपमान, 'महान् व्यक्ति' उपमेय, 'बड़ी समृद्धि से भी सन्तोषलाभ न होना' साधारणधर्म तथा उपमावाचक शब्द का लोप होने से यह लुप्तोपमा का उदाहरण है।

ii. राजाओं को अपनी समृद्धि के विषय में कभी भी सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। कहा भी गया है -

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टाश्च महाभुजः।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जा च कुलाङ्गना।।

अर्थात् असन्तुष्ट ब्राह्मण नष्ट हो जाते हैं और सन्तुष्ट होकर राजा नष्ट हो जाते हैं, लज्जा से युक्त होकर गणिका (वेश्या) नष्ट हो जाती है तथा बिना लज्जा के कुलाङ्गना अर्थात् घर की स्त्री नष्ट हो जाती है।

iii. व्याकरणात्मक टिप्पणी -महिम्ना -महतो भावः, इमनिच् डित्वेन टिलोपः।

संपदा सुस्थिरंमन्यो भवति स्वल्पयापि यः।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम्।।32।।

अन्वय - यः स्वल्पयापि संपदा सुस्थिरंमन्यः भवति, तस्य तां कृतकृत्यः विधिः न वर्धयति (इति अहम्) मन्ये।

शब्दार्थ - यः = जो, स्वल्पयापि = थोड़ी भी, संपदा = सम्पत्ति, सुस्थिरंमन्यः = स्वयं को सुस्थिर मानने वाला, भवति = होता है, तस्य = उसकी, तां = उस (सम्पत्ति को), कृतकृत्यः = कृतार्थ, विधिः = विधाता अथवा दैव, वर्धयति = बढ़ाता है, मन्ये = मानता हूँ।

अनुवाद - जो थोड़ी भी सम्पत्ति से स्वयं को सुस्थिर मानने वाला होता है, उसकी उस सम्पत्ति को कृतार्थ विधाता अथवा दैव नहीं बढ़ाता है, मैं ऐसा मानता हूँ।

व्याख्या - बलराम कहते हैं कि राजा को कभी भी अपनी सम्पत्ति के विस्तार से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। सम्पत्ति के विस्तार की कोई सीमा नहीं होती है। वह जितनी बढ़े, राजा के लिए उतना ही श्रेयस्कर है। दूसरी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

बात यह भी है कि सम्पत्ति कभी स्थिर भी नहीं रहती है। अतः उससे कभी सन्तुष्ट क्यों हुआ जाये ? इसलिए जो राजा थोड़ी भी सम्पत्ति को पाकर यह मान लेता है कि अब मैं सम्पत्ति के विषय में सुस्थिर हो गया हूँ, ऐसे राजा की उस सम्पत्ति को समस्त प्राणियों के लिए कृतार्थ विधाता अथवा दैव भी नहीं बढ़ाता है, मैं ऐसा मानता हूँ। क्योंकि पुरुषार्थहीन व्यक्ति से तो दैव भी जुगुप्सा करता है। अतः बलराम के इस कथन का आशय है कि जो सम्पत्ति हमनें प्राप्त कर ली है, उसकी वृद्धि में हमें निरन्तर प्रयासरत रहना चाहिए।

विशेष - i. अपनी सम्पत्ति से स्वयं को सुस्थिर मानने वाले पुरुषार्थहीन व्यक्ति की सम्पत्ति को दैव भी नहीं बढ़ाता है। इस विषय में कहा गया है -'पौरुषहीनाद् दैवमपि जुगुप्सते।' अर्थात् पुरुषार्थहीन व्यक्ति से दैव भी जुगुप्सा करता है।

ii. **व्याकरणात्मक टिप्पणी** - सुस्थिरंमन्यः -'आत्ममाने खश्च' सूत्र से खश् प्रत्यय होकर 'मुम्' का आगम।

4.3.5 शत्रु विनाश सम्बन्धी मंत्रणा

समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः।
प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रेदाहरणं रविः।।33।।

अन्वय - मानिनः परान् समूलघातमघ्नन्तः न उद्यन्ति, तत्र प्रध्वंसितान्धतमसः रविः उदाहरणम् (अस्ति)।

शब्दार्थ - मानिनः = स्वाभिमानी व्यक्ति, परान् = शत्रुओं को, समूलघातमघ्नन्तः = समूल नष्ट कर उनका उन्मूलन किए बिना, उद्यन्ति = अभ्युदय को प्राप्त करते हैं, तत्र = उस विषय में, प्रध्वंसितान्धतमसः =प्रगाढ़ अन्धकार को नष्ट करने वाला, रविः = सूर्य।

अनुवाद- स्वाभिमानी व्यक्ति शत्रुओं को समूल नष्ट कर उनका उन्मूलन किए बिना अभ्युदय को प्राप्त नहीं करते हैं, उस विषय में प्रगाढ़ अन्धकार को नष्ट करने वाला सूर्य उदाहरण है।

व्याख्या - बलराम कहते हैं कि स्वाभिमानी व्यक्तियों का स्वभाव ही होता है कि वे अभ्युदय को प्राप्त करते हैं। इसके लिए वे शत्रुओं को समूल नष्ट करते हैं। उनका अभ्युदय शत्रुओं का समूल उन्मूलन किए बिना नहीं होता है। इस विषय में सूर्य हमारे समक्ष उदाहरण है। जब सूर्योदय का काल होता है, तब आकाश में प्रगाढ़ अन्धकार होता है। अतः जब सूर्य उदित होता है तब वह सम्पूर्ण आकाश को व्याप्त करने वाले प्रगाढ़ अन्धकार को नष्ट करके ही उदित होता है। अतः यदि हम भी यदि सम्पूर्ण रूप से अपना अभ्युदय चाहते हैं तब हमें भी अपने शत्रु शिशुपाल का सम्पूर्ण रूप से विनाश करना होगा।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में उपमा अलंकार है। लक्षण और स्पष्टीकरण पूर्व में पद्य संख्या 31 में किया जा चुका है। यहाँ पर 'सूर्य' उपमान, 'मानी' उपमेय, 'शत्रु को समूल नष्ट कर उनका उन्मूलन किए बिना अभ्युदय को प्राप्त नहीं करते हैं' साधारणधर्म तथा उपमावाचक शब्द 'इव' का लोप होने से लुप्तोपमा है।

ii. व्याकरणात्मक टिप्पणी -प्रध्वंसितान्धतमसः -प्रध्वंसितं अन्धतमसं येन सः। बहुव्रीहि समास।

विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पघङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते।।34।।

अन्वय - विपक्षम् अखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा। (हि) धूलिं पङ्कताम् अनीत्वा उदकं न अवतिष्ठते।

शब्दार्थ - विपक्षम् = शत्रुओं को, अखिलीकृत्य = नष्ट किए बिना, खलु = निश्चित् ही, पघङ्कताम् = कीचड़ (का भाव), अनीत्वा = बनाए बिना, उदकं = जल, अवतिष्ठते = ठहरता है।

अनुवाद - विपक्ष अर्थात् शत्रुओं को नष्ट किए बिना प्रतिष्ठा निश्चित् ही दुर्लभ है। (क्योंकि) धूलि को कीचड़ बनाए बिना जल (भूमि पर) नहीं ठहरता है।

व्याख्या - बलराम कहते हैं हमें प्रतिष्ठा को प्राप्त करना है तथा इसके लिए शत्रुओं को नष्ट करना परम आवश्यक है। बिना शत्रुओं को नष्ट किए हमारे लिए प्रतिष्ठा को प्राप्त करना निश्चित् ही दुर्लभ है। जिस प्रकार जब जल को भूमि पर प्रतिष्ठित होना होता है तथा उस भूमि पर यदि सर्वत्र धूलि व्याप्त हो तब वह जल पहले अपनी शक्ति से धूलि को कीचड़ बनाता है। तब ही वह उस भूमि के भाग पर ठहर पाता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धूलि उसे उस स्थान पर टिकने नहीं देती है। ऐसे ही हमें हमारे शत्रु को समूल नष्ट कर प्रतिष्ठा का प्राप्त करना है।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में दृष्टान्त अलंकार है। लक्षण है -'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्।' अर्थात् उपमान, उपमेय, उनके विशेषण और साधारण धर्म आदि का बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है। यहाँ उपमान 'उदक' तथा उपमेय 'विपक्ष' में बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होनेपर दृष्टान्त अलंकार है।

ii. व्याकरणात्मक टिप्पणी - अखिलीकृत्य -खिलम् उत्सन्नम् अकृत्वा इति अनुन्मूल्य इति अर्थः।

ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम्।
पुरः क्लिश्नाति सोमं हि सैंहिकेयोऽसुरद्रुहाम्।।35।।

अन्वय - यावत् एकः अपि रिपुः ध्रियते तावत् सुखं कुतः ? हि असुरद्रुहाम् पुरः (एव) सैंहिकेयः सोमं क्लिश्नाति।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

शब्दार्थ - यावत् = जब तक, रिपुः = शत्रु, ध्रियते = स्थित है, तावत् = तब तक, कुतः = कहाँ, हि = क्योंकि, असुरद्रुहाम् = देवताओं के, पुरः = सामने, सैंहिकेयः = राहु, सोमं = चन्द्रमा को, क्लिश्नाति = पीड़ित करता है।

अनुवाद- जब तक एक भी शत्रु स्थित है, तब तक सुख कहाँ ? क्योंकि देवताओं के सामने ही राहु चन्द्रमा को पीड़ित करता है।

व्याख्या - बलराम कहते हैं कि हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हमारा केवल एक शिशुपाल ही शत्रु है। विजय की इच्छा रखने वाले स्वाभिमानी व्यक्तियों के लिए एक शत्रु भी पर्याप्त होता है। अतः शिशुपाल के रूप में जब तक हमारा एक भी शत्रु स्थित है, तब तक हमें सुख कहाँ ? इसका उदाहरण भी स्पष्ट देखा जा सकता है। चन्द्रमा को सभी देवताओं का समर्थन प्राप्त है। उसकी उत्पत्ति भी क्षीरसागर से होने के कारण पवित्र है। पृथिवी पर सभी मनुष्यों के लिए भी वह पूज्य है, परन्तु देवताओं के सामने ही न कि एकान्त में राहु चन्द्रमा को निरन्तर पीड़ित करता है। अर्थात् जब सभी देवताओं के सहायक होने के उपरान्त भी चन्द्रमा एकमात्र राहु के प्रकोप से नहीं बच सकता है, तब अन्य राजाओं के द्वारा हमारी सहायता करने के उपरान्त भी क्या हम शिशुपाल से बच पायेंगे ? हमें इस पर गम्भीरता से विचार करते हुए हमारे एकमात्र शत्रु शिशुपाल की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार है। लक्षण है -

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।

अर्थात् सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन होने पर अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यहाँ सामान्य (जब तक एक भी शत्रु स्थित है, तब तक सुख कहाँ) का विशेष (देवताओं के सामने ही राहु चन्द्रमा को पीड़ित करता है) से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

ii. व्याकरणात्मक टिप्पणी -सैंहिकेयः -सिंहिकायाः अपत्यं पुमान् इति संहिकेयः।

iii. सैंहिकेयः -सिंहिका का पुत्र होने के कारण राहु को सैंहिकेय कहते है। पुराणों की कथा के अनुसार यह देवताओं की पंक्ति में बैठकर चोरी से अमृत पी रहा था। इसकी शिकायत सूर्य तथा चन्द्रमा ने विष्णु से कर दी। विष्णु ने इसका चक्र से शिर काट दिया। परन्तु तब तक यह अमृत पी चुका था, इसलिए अमर हो गया। इसका मस्तक राहु तथा धड़ केतु कहलाया। इस घटना के उपरान्त ही यह सूर्य तथा चन्द्रमा से द्वेष रखता है तथा समय-समय पर केतु के रूप में सूर्य को तथा राहु के रूप में चन्द्रमा को ग्रसता रहता है, जिसे 'ग्रहण' कहते हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

4.3.6 शत्रु एवं मित्र भेद

सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः।
स्यातामामित्रै मित्रे च सहजप्राकृतावपि।।36।।

अन्वय - कृत्रिमः सखा शत्रुः च गरीयान्, हि तौ कार्यतः (भवन्ति)। सहजप्राकृतौ अमित्रै अपि मित्रे च स्याताम्।

शब्दार्थ - गरीयान् = मुख्य, हि = क्योंकि, तौ = वे दोनों, कार्यतः = कार्यवशात्, सहजप्राकृतौ = सहज और प्राकृत, अमित्रै = शत्रु, मित्रे = मित्रता को, स्याताम् = प्राप्त हो जाते हैं।

अनुवाद- कृत्रिम सखा और शत्रु मुख्य हैं, क्योंकि वे कार्यवशात् होते हैं। सहज और प्राकृत शत्रु भी (कार्यवश) मित्रता को प्राप्त हो जाते हैं।

व्याख्या - मित्र और शत्रु के तीन-तीन भेद होते हैं - सहज, प्राकृत और कृत्रिम। इनमें सहज मित्र भुआ और मामा के पुत्र होते हैं। प्राकृत मित्र पड़ौसी राज्य के बाद वाले राज्य का राजा होता है तथा प्राकृत मित्र वह होता है, जिसका हमने किसी प्रयोजन से उपकार किया है। इसी प्रकार सहज शत्रु चाचा के पुत्र होता है। प्राकृत शत्रु पड़ौस वाले राज्य का राजा होता है तथा प्राकृत शत्रु वह होता है, जिसका हमने किसी प्रयोजन से अपकार किया है। बलराम कहते हैं कि इनमें से कृत्रिम सखा और शत्रु ही मुख्य हैं, क्योंकि वे कार्यवशात् होते हैं। अर्थात् कृत्रिम मित्र और शत्रु की मित्रता और शत्रुता किसी कार्य के कारण होती है। साथ ही जो सहज और प्राकृत शत्रु हैं, उनको भी कार्यवश मित्र बनाया जा सकता है। इस आधार पर शिशुपाल हमारा सहज शत्रु है और उसका प्रतिकार करना हमारे लिए सर्वाधिक आवश्यक है।

विशेष - i. व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ - कृत्रिमः -क्रियया उपकारापकारान्यतररूपया निर्वृत्तः कृत्रिमः।

सहजः -सहजातः एकशरीरावयवत्वात् सहजः।

प्राकृतः -प्रकृत्या सिद्धः प्राकृतः।

उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः।।37।।

अन्वय - उपकर्त्र अरिणा (सह) सन्धिः (कार्यः), न अपकारिणा मित्रेण (सह)। हि एतयोः लक्षणम् उपकारापकारौ लक्ष्यम्।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

शब्दार्थ - उपकर्त्रा = उपकार करने वाले, अरिणा = शत्रु के साथ, अपकारिणा = अपकार करने वाले, हि = इस प्रकार से, एतयोः = इन दोनों के, उपकारापकारौ = उपकार और अपकार दोनों को, लक्ष्यम् = लक्ष्य करके करने चाहिए।

अनुवाद- उपकार करने वाले शत्रु के साथ सन्धि करनी चाहिए, न कि अपकारी मित्र के साथ। इस कारण इन दोनों (मित्र तथा शत्रु) के लक्षण उपकार और अपकार दोनों को लक्ष्य करके करने चाहिए।

व्याख्या - बलराम कहते हैं कि यदि सन्धि करनी ही हो तो उपकार करने वाले शत्रु के साथ ही सन्धि करनी चाहिए, न कि अपकारी मित्र के साथ। अब हम किस आधार पर यह समझे कि कौन हमारा मित्र है तथा कौन शत्रु ? इस पर बलराम का मानना है कि उपकार तथा अपकार के आधार पर ही हमें मित्र और शत्रु का निर्धारण करना चाहिए। अर्थात् जो हमारे लिए उपकार करने वाला हो, वह हमारा मित्र होता है तथा जो हमारे लिए अपकार करने वाला होता है, वह हमारा शत्रु मानना चाहिए। कारण इन दोनों (मित्र तथा शत्रु) के लक्षण उपकार और अपकार दोनों को लक्ष्य करके करने चाहिए। बलराम के इस कथन का आशय यह है कि शिशुपाल हमारा फुफेरा भाई होने के कारण सहज मित्र है, तथापि वह हमारे लिए अपकारी है। अतः हमें उसके साथ सन्धि नहीं करनी चाहिए। उसने हमारे प्रति अभी तक अपकार ही किए हैं, अतः कार्यवश वह हमारा कृत्रिम शत्रु ही सिद्ध होता है। अतः उसका शीघ्रातिशीघ्र प्रतिकार करना चाहिए।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में अनुप्रास तथा काव्यलिङ्ग अलंकार हैं। प्रस्तुत पद्य में 'प्', 'क्', 'र्', 'ल्' इत्यादि वर्णों की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास अलंकार है। काव्यलिङ्ग अलंकार लक्षण है -'काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता।' अर्थात् हेतु का वाक्यार्थ अथवा पदार्थ रूप में कथन करना काव्यलिङ्ग अलंकार कहलाता है। यहाँ 'मित्र तथा शत्रु के लक्षण उपकार और अपकार दोनों को लक्ष्य करके करने चाहिए' इस कार्य का हेतु 'उपकार करने वाले शत्रु के साथ सन्धि करनी चाहिए, न कि अपकारी मित्र के साथ' वाक्यार्थ के रूप में कथन किया गया है।

ii. व्याकरणात्मक टिप्पणी - उपकर्त्ररिणा -उपकर्त्र+अरिणा, दीर्घ सन्धि।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों में सही उत्तर का चयन कीजिए।
   i. राजनीतिशास्त्र में गुण के प्रकार होते हैं। छः/आठ
   ii. बौद्ध दर्शन के अनुसार स्कन्ध भेद हैं। पाँच/तीन
   ii. शिशुपालवधम् में किसका संवाद मिलता है। कृष्ण-शिशुपाल/कृष्ण-बलराम
   iii. राहु द्वारा ग्रसन किया जाता है। चन्द्रमा/समुद्र
   iv. सन्धि अङ्ग माना जाता है। षाड्गुण्य/सामादि उपाय

4.4 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने शिशुपालवधम् महाकाव्य के द्वितीय सर्ग के पद्य संख्या 26 से 37 तक का शब्दार्थ, अनुवाद एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी जैसे सन्धि, समास, छन्द, अलंकार इत्यादि के विषय में जाना। साथ ही, प्रत्येक पद के विषय-वस्तु को भी समझा। राजा को सुरक्षा के पाँच उपाय बताए गए हैं-कार्य के आरम्भ का उपाय, कार्य के लिए उपयोगी समस्त पदार्थों का संग्रह, कार्य के लिए उचित देश, काल आदि का विभाग, कार्य के समापन में सम्भावित समस्त विप्रतिपत्तियों का प्रतिकार तथा कार्य की सिद्धि। इसकी तुलना बौद्धदर्शन के अनुसार शरीर में पाँच स्कन्ध- रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कार। इसके साथ ही राजनीति के सन्दर्भ में बताया गया कि राजा को स्वयं की उन्नति और शत्रु की हानि इन दो पर विचार करना चाहिए। इन दोनों के आश्रय से ही राजा अपने राजधर्म में अपनी वाग्मिता का विस्तार कर सकते हैं। राजा के अभ्युदय के अनेक बिन्दुओं को इसमें बताया गया है। जिसमें उनके लिए शत्रुओं के भेदन को अनिवार्य बताया गया है। कहा गया है कि जब तक शत्रु तब तक राजा की प्रतिष्ठा नहीं होती और उसे सुखप्राप्ति भी नहीं होती। राजनीति के मुख्य तत्त्व षाड्गण्य के सन्दर्भ में भी आपको जानकारी दी गई है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

व्याकर्तुम् – व्याख्या करने के लिए

अमल् – समर्थ

वाग्जालं – वचनों का समूह

वल्गितम् – चपलता

वृथा – व्यर्थ

स्थातुं – स्थिरता

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

ऊरीकृत्य – आश्रय लेकर

महार्णव – महासमुद्र

महिम्ना – समृद्धि

उदकं – जल

क्लिश्नाति – पीड़ित

उपकर्त्री – उपकार करने वाले

4.6 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1. i. छः ii. पाँच iii. कृष्ण-बलराम iv. चन्द्रमा v. षाड्गुण्य	

4.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न

1. शिशुपालवधम् में राजनीति का विश्लेषण कीजिए।
2. शिशुपालवधम् द्वितीय सर्ग के अनुसार कृष्ण-बलराम संवाद पर निबन्ध लिखिए।

4.8 सन्दर्भ–ग्रंथ

- शास्त्री, हरगोविन्द(व्या-), *शिशुपालवधम्*, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2013

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य–सामग्री

- शास्त्री, शालिग्राम(व्या.), *साहित्यदर्पण*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2000
- काणे, पी.वी., *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2002
- शर्मा 'ऋषि', उमाशंकर, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 1999

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

पाठ–5

शिशुपालवधम् (द्वितीय सर्ग-पद्य संख्या 42-56): मूलपाठ, अनुवाद, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ

संरचना

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 पद्यांश की व्याख्या
5.3.1 शत्रुओं के प्रति उदासीन भाव की उपेक्षा
5.3.2 अपमानपूर्ण जीवन की निन्दा
5.3.3 मनुष्य जन्म की सार्थकता
5.3.4 स्वाभिमानपूर्ण व्यक्तित्व – वैशिष्ट्य
5.3.5 सौम्य स्वभाव का दुष्परिणाम
5.3.6 पौरुषहीन व्यक्ति का लक्षण
5.3.7 तेजस्वी व्यक्तित्व की श्रेष्ठता
5.3.8 शत्रुओं का विनाश
5.3.9 दण्ड उपाय की श्रेष्ठता
5.3.10 शत्रु(शिशुपाल) के प्रति साम उपाय का निषेध
5.3.11 शत्रुस्वरूप अयोग्य अमात्य का त्याग
5.4 सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर
5.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

5.8 संदर्भ ग्रंथ

5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

5.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी-

- महाकवि माघ के काव्य वैशिष्ट्य से परिचित होंगे।
- राजा का शत्रुओं के प्रति व्यवहार को समझ सकेंगे।
- राजधर्म में दण्ड उपाय एवं अपराध व्यवस्था को जान पायेंगे।
- माघ के राजनीति सम्बन्धी ज्ञान से परिचित होंगे।

5.2 प्रस्तावना

छात्रो! पूर्व पाठ में आपने कृष्ण और बलराम संवाद के माध्यम से राजनीति के तत्त्वों को पढ़ा और समझा। प्रस्तुत पाठ में शिशुपालवधम् के पद्य संख्या (42-56) तक के श्लोकों के माध्यम से राजनीति विद्या के प्रमुख तत्त्व शत्रु के सम्बन्ध में वर्णन किया गया जाएगा। इस पाठ में आप लोगों को राजा को शत्रुओं के प्रति किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए तथा उनके प्रति चतुर्विध उपायों (साम्, दाम, दण्ड और भेद) में से दण्ड उपाय का प्रयोग करने पर बल दिया गया है। प्रस्तुत पाठ में आप महाकवि माघ की भाषा-वैशिष्ट्य से परिचित होंगे, जिसमें माघ ने संवादशैली का प्रयोग करते हुए सरल शब्दों में भावगाम्भीर्य को प्रस्तुत किया है। और अनेक सौन्दर्यपूर्ण एवं वैभवयुक्त वचनों से तथा शास्त्रीय दृष्टान्तों के माध्यम से एक प्रमुख विषय को आपके समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

5.3 पद्यांश की व्याख्या

5.3.1 शत्रुओं के प्रति उदासीन भाव की उपेक्षा

विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्।।42।।

अन्वय - ये नरः सामर्षे अरौ वैरं विधाय उदासते, ते कक्षे उदर्चिषं प्रक्षिप्य अभिमारुतं शेरते।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

शब्दार्थ - ये = जो, नरः = मनुष्य, सामर्षे = क्रोधयुक्त, अरौ = शत्रु से, वैरं = शत्रुता को, विधाय = स्थापित कर, उदासते = उदासीन होकर बैठ जाते हैं, ते = वे, कक्षे = घास के ढ़ेर में, उदर्चिषं = जलती हुई अग्नि को, प्रक्षिप्य = फेंक कर, अभिमारुतं = हवा के सामने, शेरते = सोते हैं।

अनुवाद- जो मनुष्य क्रोधयुक्त शत्रु से शत्रुता को स्थापित कर उदासीन होकर बैठ जाते हैं, उस प्रकार के व्यक्ति घास के **ढेर** में जलती हुई अग्नि को फेंक कर हवा के सामने सोते हैं।

व्याख्या - बलराम कहते हैं कि शिशुपाल हमारे प्रति क्रोध से भरा हुआ है। उसने अभी तक जितने भी कार्य किएहैं, उनसे उसकी हमारे प्रति शत्रुता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। जैसे उसने रुक्मिणी-विवाह के समय हमारा विरोध किया था। जब कृष्ण भौमासुर को परास्त करने के लिए गए थे, तब भी शिशुपाल ने द्वारका को घेर लिया था। शिशुपाल ने यादवों की स्त्रियों का अपहरण किया था तथा उसने अनेक अवसरों पर आपका अर्थात् कृष्ण का स्पष्ट रूप से विरोध किया है। अतः वह हमारा शत्रु है तथा अनेक बार हमसे पराभूत होने के कारण हमारे प्रति क्रोध से युक्त होकर वह बदले की भावना से हमें परास्त करने के लिए किसी उचित अवसर की तलास में है। अतः हमें उसके प्रति उदासीन होकर नहीं बैठना चाहिए। जो व्यक्ति क्रोधयुक्त शत्रु की उपेक्षा कर उदासीन होकर बैठ जाता है, उसका परिणाम वही होता है, जैसे कोई व्यक्ति सूखी हुई घास के ढ़ेर में स्वयं ही जलती हुई अग्नि को फेंक कर जिधर से हवा चल रही हो, उसी के ही सामने सो जाए और अपनी ही फेंकी हुई अग्नि से स्वयं ही जलकर नष्ट हो जाए।

विशेष -

i. **अलंकार** - इस पद्य में निदर्शना अलंकार है। लक्षण है -'निदर्शना अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः।' अर्थात् जहाँ वस्तु का असम्भव सम्बन्ध उपमा में पर्यवसित हो जाता है, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है। इस पद्य में क्रोधयुक्त शत्रु से शत्रुता को स्थापित कर उदासीन होकर बैठना तथा घास के ढ़ेर में जलती हुई अग्नि को फेंक कर हवा के सामने सोते रहना में कोई सम्बन्ध स्पष्टतः उपपन्न न होकर उपमा में पर्यवसित हो गया है। अर्थात् क्रोधयुक्त शत्रु से शत्रुता को स्थापित कर उदासीन होकर बैठने वाला उसी प्रकार से नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार घास के ढ़ेर में जलती हुई अग्नि को फेंक कर हवा के सामने सोते रहने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है।

ii. **व्याकरणात्मक टिप्पणी** - विधाय -वि+धा+ल्यप्।

सामर्षे -स + अमर्षे, दीर्घ सन्धि।

नरः -नृ + जस्। (बहुवचन)।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

प्रक्षिप्य -प्र+क्षिप्+ल्यप्।

अभिमारुतम् - अव्ययीभाव समास।

मनागनभ्यावृत्त्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः।।43।।

अन्वय - यः क्षमी मनाग् अनभ्यावृत्त्या वा विराध्यन्तं कामं क्षाम्यतु, क्रियासमभिहारेण कः क्षमेत ?

शब्दार्थ - यः = जो, क्षमी = क्षमाशील, मनाग् = थोड़ा सा, अनभ्यावृत्त्या = एक बार, वा = अथवा, विराध्यन्तं= विरोध करने वाले को, कामं = भले ही, क्षाम्यतु = क्षमा कर दे, क्रियासमभिहारेण= बार-बार, कः = कौन, क्षमेत = क्षमा करेगा।

अनुवाद- जो क्षमाशील मनुष्य थोड़ा सा अथवा एक बार विरोध करने वाले को भले ही क्षमा कर दे, (परन्तु) बार-बार विरोध करने वाले (शत्रु) को कौन क्षमा करेगा ? अर्थात् कोई भी नहीं।

व्याख्या - क्षमाशीलता मनुष्यों के लिए बहुत अच्छा गुण माना जाता है, परन्तु उसी को ही क्षमा करना चाहिए, जिसने आपके प्रति थोड़ा सा अथवा एक बार विरोध किया हो। अर्थात् थोड़ा सा अथवा एक बार विरोध करने वाले शत्रु को यदि क्षमा किया जाता है, तब तो क्षमाशीलता को गुण कहा जा सकता है, परन्तु यदि कोई शत्रु आपका निरन्तर बार-बार विरोध कर रहा हो, ऐसे शत्रु को भला कौन क्षमा करेगा ? अर्थात् कोई भी नहीं। इस प्रकार बलराम के इस कथन का भाव है कि शिशुपाल ने हमारा थोड़ा सा अथवा एक बार ही विरोध नहीं किया है। उसने अनेक बार हमारा विरोध किया है। अतः अब हमें उसको क्षमा नहीं करना चाहिए। यदि अब भी हम उसे क्षमा करते हैं तो यह क्षमाशीलता हमारा गुण नहीं अपितु दोष ही माना जायेगा।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में अनुप्रास अलंकार है। यहाँ पर 'व्', 'क्', 'य्' आदि वर्णों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास तथा 'क्ष्', 'म्' आदि वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

ii. इस पद्य में काकु है। यहाँ 'क्रियासमभिहारेण कः क्षमेत' अर्थात् 'बार-बार विरोध करने वाले (शत्रु) को कौन क्षमा करेगा ?' इस वाक्य में काकु से 'कोई भी क्षमा नहीं करेगा' यह अर्थ आता है।

iii. व्याकरणात्मक टिप्पणी - क्षमी -'शमित्याष्टाभ्यो घिनुण्' इस सूत्र से घिनुण् प्रत्यय।

अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव।।44।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

अन्वय - अन्यदा (सुरतव्यतिरिक्तकाले) योषितः लज्जा इव पुंसः (अपरिभवे) क्षमा भूषणम्, परिभवे (तु) सुरतेषु वैयात्यम् इव पराक्रमः (एव भूषणम्)।

शब्दार्थ - अन्यदा=अन्य अर्थात् सुरतक्रीड़ा से भिन्न काल में, योषितः = स्त्रियों की, लज्जेव = लज्जा के समान, पुंसः = पुरुष का, परिभवे = पराभव हो जाने पर, सुरतेषु = सुरतक्रीड़ाओं में, वैयात्यम् = निषेधपरक वचन, इव = समान।

अनुवाद- अन्य अर्थात् सुरतक्रीड़ा से भिन्न काल में स्त्रियों की लज्जा के समान पुरुष का पराभव न होने पर क्षमा भूषण है, परन्तु पराभव होने पर सुरतक्रीड़ा में स्त्रियों के वैयात्य-वचनों अर्थात् निषेधपरक वचनों के समान पुरुष का पराक्रम ही भूषण है।

व्याख्या - सुरतक्रीड़ा से भिन्न काल में यदि स्त्रियाँ पुरुषों की किसी बात का विरोध करती हैं तथा उस विरोध से यदि पुरुष स्वयं को अपमानित मानते हैं, तब पुरुषों को चाहिए कि वे स्त्रियों को क्षमा कर दें। क्योंकि लज्जा स्त्रियों का आभूषण होता है। कई बार वे लज्जा के कारण बहुत सी बातों का विरोध कर देती है। अतः ऐसी स्थिति में पुरुष यदि उन्हें क्षमा कर देते हैं तो यह पुरुषों का वास्तविक अपमान नहीं है तथा इस अवसर पर क्षमा पुरुषों का भूषण है। परन्तु यदि अवसर सुरतक्रीड़ा का हो तथा उस समय स्त्री बार-बार निषेधपरक वचनों का प्रयोग कर रही हो तथा इससे पुरुष स्वयं को पराभूत मान रहा हो। तब उस स्थिति में पुरुष को चाहिए कि वह स्त्री के वैयात्यवचनों की परवाह न कर पराक्रम ही प्रदर्शित करे। उस अवसर पर पुरुष का पराक्रम भूषण ही माना जायेगा, दूषण नहीं। यहाँ बलराम का कहने का आशय है कि क्षमाशीलता मनुष्य का सदैव ही भूषण नहीं होती, कहीं-कहीं शत्रु को पराभूत करने के लिए तथा स्वयं को अपमान से बचाने के लिए क्षमाशीलता का त्याग भी करना आवश्यक है। अतः शिशुपाल को अब हमें क्षमा नहीं करना चाहिए।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में उपमा अलंकार है। लक्षण पहले प्रदर्शित कर दिया गया है। यहाँ पर 'स्त्रियों की लज्जा' उपमान, 'पुरुषों की क्षमा' उपमेय, 'भूषणत्व' साधारण धर्म तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है। यह पूर्णोपमा का उदाहरण है।

5.3.2 अपमानपूर्ण जीवन की निन्दा

माजीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति।
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः।।45।।

अन्वय - यः परावज्ञादुःखदग्धः अपि माजीवन् जीवति, जननीक्लेशकारिणः तस्य अजननिः एव अस्तु।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

शब्दार्थ - यः = जो, परावज्ञादुःखदग्धः = शत्रु द्वारा किए गए अपमान से होने वाले दुःख से संतप्त होकर, अपि = भी, माजीवन् = निन्दित जीवन को व्यतीत करते हुए, जीवति = जीता है, जननीक्लेशकारिणः = जननी के लिए (प्रसव के समय) दुःख देने वाले, तस्य = उसके, अजननिः = जन्म न लेना, एव = ही, अस्तु = हो।

अनुवाद - जो व्यक्ति शत्रु द्वारा किए गए अपमान से होने वाले दुःख से संतप्त होकर भी निन्दित जीवन को व्यतीत करते हुए जीता है, जननी के लिए (प्रसव के समय) दुःख देने वाले उस व्यक्ति का जन्म न ही होता तो अच्छा था।

व्याख्या - जिस व्यक्ति का शत्रु निरन्तर अपमान कर रहा है तथा वह उसके द्वारा किए गए अपमान से दुःखी भी है। उसके द्वारा दिए गए अपमानजन्य दुःख से संतप्त होकर वह अपना जीवन जी रहा है, तो निश्चित ही वह निन्दित जीवन जी रहा है। स्वाभिमानी व्यक्ति इस प्रकार के निन्दित जीवन को कदापि नहीं जीते हैं। और वास्तव में उसका इस प्रकार का जीवन, जीवन कहलाने के योग्य भी नहीं है। इससे अच्छा होता कि उसका जन्म ही न हुआ होता। यदि उसका जन्म न हुआ होता तो उसके जन्म से पहले जो गर्भधारण इत्यादि तथा जन्म के समय जो प्रसव इत्यादि कष्ट उसकी माता को भोगने पड़े थे, उन कष्टों से उसकी माता बच जाती। अतः इस प्रकार के व्यक्ति का जन्म लेना अथवा न लेना दोनों ही समान है। यहाँ बलराम के इस कथन का आशय है कि शिशुपाल निरन्तर हमारा अपमान कर रहा है तथा हम उसके द्वारा किए गए अपमान के दुःख से संतप्त हैं, फिर भी हम जीवित हैं। अतः हम निन्दित जीवन को जी रहे हैं। हमारा यह जीवन महापुरुषों के द्वारा प्रशंसनीय जीवन नहीं है। यदि हमें आगे भी इसी प्रकार से अपमान को सहन करते हुए दुःखी होकर ही जीना है, तब तो अच्छा होता कि हमारा जन्म ही न होता।

विशेष - i. व्याकरणात्मक टिप्पणी - अजननिः -नञपूर्वक जनि धातु से अनि प्रत्यय।

पदाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः।।46।।

अन्वय - यत् रजः पदाहतम् उत्थाय मूर्धानम् अधिरोहति, अपमाने अपि स्वस्थात् देहिनः तत् वरम् एव।

शब्दार्थ - यत् = जो, रजः = धूलि, पदाहतम् = पैरों से आहत होकर, उत्थाय = उठकर, मूर्धानम् = मस्तक पर, अधिरोहति = चढ़ जाती है, अपमाने = अपमान होने पर, अपि = भी, स्वस्थात् = सन्तुष्ट रहने वाले, देहिनः = व्यक्ति से, तत् = वह, वरम् = श्रेष्ठ, एव = ही।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अनुवाद- जो धूलि पैरों से आहत होने पर उठकर मस्तक पर चढ़ जाती है, अपमान होने पर भी सन्तुष्ट रहने वाले व्यक्ति से वह धूलि ही श्रेष्ठ है।

व्याख्या - लोक में देखा जाता है कि धूलि निरन्तर मार्ग में चलने वाले व्यक्तियों के पैरों से आहत होती रहती है, परन्तु वह अपने इस होने वाले अपमान को सहन कर निष्क्रिय होकर नहीं बैठती है, अपितु उसी समय उठकर उस व्यक्ति के मस्तक पर चढ़ जाती है तथा उसके मस्तक को स्वयं (धूलि) से आवृत्त कर अपने अपमान का बदला उसी समय ले लेती है। यह स्थिति तो अचेतन पदार्थों की है। परन्तु यदि कोई चेतन पुरुष निरन्तर शत्रु के द्वारा अपमानित किया जा रहा है तथा उसके बाद भी वह सन्तुष्ट होकर बैठा रहता है, तब तो ऐसे (चेतन) व्यक्ति से वह (अचेतन) धूलि ही श्रेष्ठ है। बलराम के इस कथन का अभिप्राय यह है कि लोक में अचेतन पदार्थ भी अपने अपमान को सहन नहीं करते हैं तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार तुरन्त ही शत्रु का प्रतिकार करते है। हम तो चेतन है तथा समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ कहे जाने वाले मनुष्य हैं। शिशुपाल निरन्तर हमारा अपमान कर रहा है, उसके उपरान्त भी हम सन्तुष्ट होकर बैठे हैं तथा उसका कोई प्रतिकार नहीं कर रहे हैं। अतः ऐसी स्थिति में तो वह पैरों की धूलि ही हमसे श्रेष्ठ है, जो तुरन्त ही उसका दलन करने वाले व्यक्ति का उसके मस्तक पर चढ़कर प्रतिकार करती है। अतः हमें शीघ्र ही शिशुपाल का प्रतिकार करना चाहिए।

विशेष - i. **अलंकार** - इस पद्य में आचार्य मल्लिनाथ के अनुसार व्यतिरेक अलंकार है। लक्षण है - 'आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताथवा।' अर्थात् जहाँ उपमान से उपमेय के आधिक्य का वर्णन किया जाय, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। यहाँ पर चेतन मनुष्य की अपेक्षा अचेतन धूलि के गुणों के उत्कर्ष का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार है।

5.3.3 मनुष्य जन्म की सार्थकता

असम्पादयतः कश्चिदर्थः **जातिक्रियागुणैः।**

यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम्।।47।।

अन्वय - जातिक्रियागुणैः **कश्चिद्** अर्थम् असम्पादयतः पुंसः जन्म यदृच्छाशब्दवत् केवलं संज्ञायै (भवति)।

शब्दार्थ - जातिक्रियागुणैः = जाति, क्रिया और गुणों के द्वारा, किञ्चद् = किसी, अर्थम् = अर्थ को, असम्पादयतः = सम्पादन न करते हुए, पुंसः = पुरुष का, यदृच्छाशब्दवत् = यदृच्छा शब्द के समान, संज्ञायै = नाम के लिए।

अनुवाद - जाति, क्रिया और गुणों के द्वारा किसी अर्थ का सम्पादन न करते हुए पुरुष का जन्म यदृच्छा शब्द के समान केवल नाम के लिए होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

व्याख्या - व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी जाति अर्थात् जिस कुल में उसका जन्म हुआ है, उस कुल के अनुरूप व्यवहार करे। उसके द्वारा की जाने वाली समस्त क्रियाओं से किसी प्रयोजनविशेष की सिद्धि हो। उसकी क्रियाएँ उसके कुल के अनुरूप होनी चाहिए तथा वे निष्फल न हों। उसमें शौर्य आदि विशेष गुण हों तथा वे गुण भी किसी विशेष प्रयोजन को सिद्ध करने वाले होने चाहिए। जो व्यक्ति अपनी जाति, क्रिया और गुणों के द्वारा किसी अर्थविशेष का सम्पादन नहीं करता है, उस पुरुष का जन्म यदृच्छा (किसी व्यक्ति की इच्छा के आधार पर रखे गए नाम) शब्द के समान केवल नाम के लिए होता है। अर्थात् उसका जन्म केवल नाममात्र के लिए होता है। उसकी जाति, क्रिया और गुणों से किसी को कोई लाभ नहीं होता है। बलराम के इस कथन का आशय है कि हमें अपनी जाति, क्रिया और गुणों के द्वारा किसी विशेष अर्थ का सम्पादन करना चाहिए, अन्यथा हमारे नाम 'कृष्ण' अर्थात् लोक को आकर्षित करने वाला तथा 'बलराम' अर्थात् बल के द्वारा लोक को आनन्दित करने वाला केवल नाममात्र के लिए ही हैं, किसी प्रयोजनविशेष के लिए।

विशेष - i. संकेतग्रह के सम्बन्ध में कई मत पाये जाते हैं। उनमें से वैयाकरणों का मत है कि व्यक्ति में संकेतग्रह मानने से आनन्त्य और व्यभिचार दोष उपस्थित हो जाते हैं, इसलिए व्यक्ति में संकेतग्रह न मानकर व्यक्ति की उपाधि - जाति (गोत्व), गुण (शुक्लादि), क्रिया (पाकादि) तथा यदृच्छा (डित्थादि) में संकेतग्रह मानना चाहिए। मम्मट ने काव्यप्रकाश में वैयाकरणों के इस संकेतग्रहविषयक मत को इस प्रकार से प्रस्तुत किया है - 'संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादिः।'

ii. **व्याकरणात्मक टिप्पणी** - यदृच्छाशब्दवत् -इच्छाप्रकल्पितस्य जात्यादिप्रवृत्तिनिमित्तशून्यस्य डित्थादिशब्दस्य इव। यहाँ 'तत्र तस्येव' सूत्र से वति प्रत्यय है।

5.3.4 स्वाभिमानपूर्ण व्यक्तित्व - वैशिष्ट्य

तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता।
अलङ्घनीयताहेतुरुभयं तन्मनस्विनि।।48।।

अन्वय - अद्रौ तुङ्गत्वम् (भवति) इतरा अगाधता न (भवति), सिन्धौ (अगाधता भवति किन्तु) इदं (तुङ्गत्वम्) न (भवति, परन्तु) मनस्विनि (तु) अलङ्घनीयताहेतुः तत् (तुङ्गत्वम् अगाधता च) उभयम् (भवतः)।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

शब्दार्थ - अद्रौ = पर्वत में, तुङ्गत्वम् = ऊँचाई, इतरा = अन्य, अगाधता = गाम्भीर्य, न = नहीं, सिन्धौ = समुद्र में, मनस्विनि = मनस्वी पुरुष में, अलङ्घनीयताहेतुः = कोई उसका उल्लंघन न कर सके, इसके दोनों कारण, उभयम् = दोनों।

अनुवाद - पर्वत में **तुङ्गत्व** अर्थात् ऊँचाई होती है, परन्तु अन्य अगाधता अर्थात् गाम्भीर्य नहीं होता है, समुद्र में गाम्भीर्य होता है, किन्तु ऊँचाई नहीं होती है, परन्तु मनस्वी पुरुष में **अलङ्घनी**यता (कोई उसका उल्लंघन न कर सके, इसके) के दोनों कारण ऊँचाई और गाम्भीर्य दोनों होते हैं।

व्याख्या - पर्वत में ऊँचाई होती है, परन्तु उसमें गाम्भीर्य नहीं होता है, इसलिए कुशल पर्वतारोही उस पर आरोहण करने में समर्थ हो जाते हैं। समुद्र में गाम्भीर्य होता है, किन्तु ऊँचाई नहीं होती है, इसलिए कुशल तैराक उसको पार करने में समर्थ हो जाते हैं। कहने का भाव यह है कि पर्वत में गाम्भीर्य न होने के कारण तथा समुद्र में ऊँचाई न होने के कारण वे दोनों ही मनुष्यों के द्वारा अनुल्लघ्घनीय नहीं होते हैं। मनुष्य उनका उल्लंघन कर सकते हैं। परन्तु मनस्वी पुरुष में अलघ्घनीयता के दोनों कारण ऊँचाई अर्थात् महानता और गाम्भीर्य अर्थात् स्वभाव में गम्भीरता दोनों होते हैं। अतः मनस्वी व्यक्ति का कोई तिरस्कार नहीं कर सकता है। बलराम के इस कथन का आशय है कि हमें मनस्विता को अपने स्वभाव में लाना होगा, जिससे शिशुपाल के जैसे शत्रु हमारा तिरस्कार न कर सकें।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में व्यतिरेक अलंकार है। लक्षण पूर्व में प्रदर्शित कर दिया है। यहाँ पर पर्वत और समुद्र की अपेक्षा मनस्वी व्यक्ति के गुणों के उत्कर्ष का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार है।

ii. व्याकरणात्मक टिप्पणी - सिन्धावगाधता -सिन्धौ + अगाधता। औ + अ = आव्। अयादि सन्धि।

5.3.5 सौम्य स्वभाव का दुष्परिणाम

तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत्।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्।।49।।

अन्वय - स्वर्भानुः तुल्ये अपराधे (अपि) यत् भानुमन्तं चिरेण, हिमांशुम् आशु ग्रसते, तत् म्रदिम्नः स्फुटं फलम् (लक्ष्यते)।

शब्दार्थ - स्वर्भानुः = राहु, तुल्ये= समान, भानुमन्तं = सूर्य को, चिरेण = देर से, हिमांशुम् = चन्द्रमा को, आशु = शीघ्र ही, ग्रसते = ग्रसता है, तत् = वह, म्रदिम्नः = कोमलता का, स्फुटं = स्पष्ट।

अनुवाद - राहु समान अपराध होने पर भी जिस सूर्य को देर से तथा (वहीं अन्य) चन्द्रमा को शीघ्र ही ग्रसता है, वह कोमलता का स्पष्ट फल दिखाई देता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

व्याख्या - राहु के प्रति सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों ने समान अपराध किया है। इसके द्वारा देवताओं की पंक्ति में बैठकर चोरी से अमृत पीने पर सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों ने ही इसकी शिकायत विष्णु से की थी। तब विष्णु ने इसका चक्र से सिर काट दिया था। परन्तु तब तक यह अमृत पी चुका था, इसलिए अमर हो गया। इसका मस्तक राहु तथा धड़ केतु कहलाया। इस घटना के उपरान्त ही यह सूर्य तथा चन्द्रमा से द्वेष रखता है तथा समय-समय पर केतु के रूप में सूर्य को तथा राहु के रूप में चन्द्रमा को ग्रसता रहता है, जिसे 'ग्रहण' कहते हैं। परन्तु सूर्य तेजस्विता से युक्त होता है, इसलिए राहु सूर्य को देर से ग्रसता है तथा चन्द्रमा शीतल किरणों वाला होने से कोमल स्वभाव का होता है, इसलिए राहु चन्द्रमा को शीघ्र ही ग्रस लेता है। यहाँ पर यह स्पष्ट है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों समान रूप से राहु के शत्रु हैं, तथापि जब राहु को ग्रसना होता है, तब वह पहले चन्द्रमा को अपना लक्ष्य बनाता है, उसके बाद सूर्य को। अर्थात् सूर्यग्रहण की अपेक्षा चन्द्रग्रहण अधिक होता है। इस पौर्वापर्य का कारण चन्द्रमा का कोमल स्वभाव तथा सूर्य का तेजस्वी होना ही है। बलराम कहते हैं कि हमें भी अपने स्वभाव को तेजस्वी बनाना चाहिए। यदि हमारा स्वभाव इसी प्रकार से कोमल बना रहा तो शिशुपाल के हमारे से अन्य शत्रु होते हुए भी वह सर्वप्रथम हम पर ही आक्रमण करेगा।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। लक्षण है -'अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया।' अर्थात् अप्राकरणिक (अप्रस्तुत) अर्थ के कथन के द्वारा प्राकरणिक (प्रस्तुत) विषय का आक्षेप अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। यहाँ अप्रस्तुत सूर्य तथा चन्द्रमा के कथन द्वारा सारूप्य के कारण प्रस्तुत विषय कृष्ण आदि की अकर्मण्यता का कथन किए जाने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

ii. व्याकरणात्मक टिप्पणी - म्रदिम्नः- 'पृथ्वादिभ्यः इमनिच्' सूत्र से इमनिच् प्रत्यय।

5.3.6 पौरुषहीन व्यक्ति का लक्षण

स्वयं प्रणमतेऽल्पेऽपि परवायावुपेयुषि।
निदर्शनमसाराणां लघुर्बहुतृणं नरः।।50।।

अन्वय - असाराणां निदर्शनं बहुतृणं लघुः नरः अल्पे अपि परवायौ उपेयुषि स्वयं प्रणमते।

शब्दार्थ- असाराणां = सारहीन पदार्थों का, निदर्शनं = उदाहरण, बहुतृणं = तिनके के समान, लघुः = पौरुषहीन, नरः = मनुष्य, अल्पे = थोड़े, अपि = भी, परवायौ = शत्रुरूपी वायु के, उपेयुषि = प्राप्त होने पर, प्रणमते = झुक जाता है।

अनुवाद- सारहीन पदार्थों का उदाहरण तिनके के समान लघु अर्थात् पौरुषहीन मनुष्य थोड़े से भी शत्रुरूपी वायु के प्राप्त होने पर स्वयं ही झुक जाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

व्याख्या - बलराम कहते हैं कि यदि लोक में सारहीन पदार्थों का उत्कृष्ट उदाहरण देखना हो तो वह पौरुषहीन व्यक्ति को देखा जा सकता है। पौरुषहीन व्यक्ति संसार में तिनके के समान लघु होता है। वह जिधर की हवा चले, उधर ही चल पड़ता है। उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता है। जब कभी उस पर अल्प शक्ति वाला शत्रु भी आक्रमण कर देता है, तब वह उसके सामने बिना कोई प्रतिकार किए उसी प्रकार से झुक जाता है, जैसे हल्की वायु के चलने पर तिनका उस हवा के अनुरूप उड़ने लगता है। अतः हमें पौरुषयुक्त होना चाहिए। शिशुपाल हमारा कोई बहुत शक्तिशाली शत्रु नहीं है। परन्तु यदि हम पौरुष से हीन होकर ऐसे ही आचरण करते रहे तो शिशुपाल भी हमें अपने प्रताप से नष्ट कर देगा।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में उपमा और रूपक अलंकार हैं।'लघुर्बहुतृणं नरः' इस वाक्य में 'तृण' उपमान, 'नर' उपमेय, 'लघुता' साधारणधर्म तथा उपमावाचक शब्द का लोप होने से लुप्तोपमा अलंकार है। 'परवायौ' पद में रूपक अलंकार है। लक्षण है - 'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।' अर्थात् अत्यन्त साम्य के कारण प्रसिद्ध वैधर्म्यवाचक उपमान और उपमेय में अभेदारोप रूपक अलंकार कहलाता है। यहाँ पर शत्रु तथा वायु में अभेद आरोप किया गया है, जिसके कारण रूपक अलंकार है।

ii. **व्याकरणात्मक टिप्पणी -**बहुतृणम्- 'विभाषा सुपो बहुच्पुरस्तात्' सूत्र से बहुच् प्रत्यय। यह प्रत्यय प्रकृति से पूर्व प्रयोग होता है।

परवायावुपेयुषि - परवायौ + उपेयुषि। औ + उ = आव्। अयादि सन्धि।

5.3.7 तेजस्वी व्यक्तित्व की श्रेष्ठता

तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गण्यते।
पञ्चमः पञ्चतपसस्तपनो जातवेदसाम्।।51।।

अन्वय - दवीयान् अपि तेजस्वी तेजस्विमध्ये (तथैव) गण्यते, (यथा) पञ्चतपसः तपनः जातवेदसां पञ्चमः (स्वीक्रियते)।

शब्दार्थ - दवीयान् = अत्यन्त दूर रहता हुआ, अपि = भी, तेजस्विमध्ये = तेजस्वियों के मध्य, गण्यते = गिना जाता है, पञ्चतपसः = पञ्चाग्नितप करने वाले तपस्वियों की, तपनः = सूर्य, जातवेदसां = अग्नियों में।

अनुवाद - अत्यन्त दूर रहता हुआ भी तेजस्वी तेजस्वियों के मध्य (उसी प्रकार से) गिना जाता है, (जैसे) पञ्चाग्नितप करने वाले तपस्वियों की (पञ्चाग्नियों में) सूर्य अग्नियों में पञ्चम अग्नि (स्वीकार किया जाता है)।

व्याख्या - तेजस्वी व्यक्ति शत्रु से दूर रहता हो अथवा निकट रहता हो, इसमें कोई विभेद नहीं है। पृथिवी पर जब कोई तपस्वी पञ्चाग्नितप करता है, तब उसे स्वयं को पाँच अग्नियों के मध्य स्थित करना होता है। उसके

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पञ्चाग्नितप में सूर्य की गणना भी होती है। अर्थात् पञ्चाग्नितप में चार अग्नियाँ पर्जन्य, संसार, पुरुष तथा स्त्री को माना जाता है तथा पञ्चम अग्नि के रूप में सूर्य को स्वीकार किया जाता है। जबकि देखा जाय तो सूर्य पृथिवी से अत्यन्त दूर रहता है। सूर्य का पाँच अग्नियों के मध्य परिगणन इसीलिए ही होता है कि वह तेजस्वी है। तीनों लोकों के महान् तेजस्वियों के मध्य उसकी गणना सदैव उसके अद्भुत तेज के कारण ही होती है। अतः हमें भी स्वयं को तेजस्वी बनाना चाहिए, जिससे हम शिशुपाल से दूर रहने पर हमारे तेज का अनुभव उसे हो सके।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में अनुप्रास तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार हैं। दोनों अलङ्कारों के लक्षण पूर्व में प्रदर्शित कर दिए गए हैं। यहाँ पर 'त्', 'ज्', स्', 'प्', 'ञ्' आदि वर्णों की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार है। विशेष (सूर्य अग्नियों में पञ्चम अग्नि स्वीकार किया जाता है) से सामान्य (अत्यन्त दूर रहता हुआ भी तेजस्वी तेजस्वियों के मध्य गिना जाता है) का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है।

ii. **व्याकरणात्मक टिप्पणी -**पञ्चतपसः -पञ्चाग्निसाध्यं तपो यस्य सः। बहुव्रीहि समास।

5.3.8 शत्रुओं का विनाश

अकृत्वा हेलया पादमुच्चैर्मूर्धसु विद्विषाम्।
कथङ्कारमनालम्बा कीर्तिर्द्यामधिरोहति।।52।।

अन्वय - विद्विषां उच्चैः मूर्धसु हेलया पादम् अकृत्वा अनालम्बा कीर्तिः कथङ्कारम् द्याम् अधिरोहति ?

शब्दार्थ - विद्विषां = शत्रुओं के, उच्चैः = उन्नत, मूर्धसु = मस्तकों पर, हेलया= तिरस्कारपूर्वक, पादम् = पैर को, अनालम्बा = आलम्बनरहित, कथङ्कारम् = कैसे, द्याम् = स्वर्ग को, अधिरोहति = जाती है।

अनुवाद- शत्रुओं के उन्नत मस्तकों पर तिरस्कारपूर्वक पैर को रखे बिना आलम्बनरहित कीर्ति कैसे स्वर्ग को जाती है ? अर्थात् कभी नहीं जाती है।

व्याख्या - लोक में जैसे किसी को ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी की आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही कीर्ति को भी ऊपर जाने में किसी न किसी सीढ़ी का आवश्यकता पड़ेगी ही। लोक में प्रयोग की जाने वाली सीढ़ी को तो हम सब जानते ही हैं, परन्तु यह कीर्ति के लिए ऊपर चढ़ने वाली कौनसी सीढ़ी होती है, जिसका यहाँ कवि ने निर्देश किया है ? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि वह सीढ़ी है - शत्रुओं के उन्नत मस्तक। जो मनस्वी यह चाहता है कि उसकी कीर्ति स्वर्गलोक तक पहुँचे, उसे चाहिए कि वह अपने शत्रुओं के मस्तकों पर तिरस्कारपूर्वक पैर को रखे। अर्थात् शत्रुओं के मस्तकों को कुचले बिना कोई व्यक्ति अपनी कीर्ति को स्वर्ग तक नहीं पहुँचा सकता है। अतः जिस प्रकार लोक में ऊँचाई पर जाने के लिए सीढ़ी की आवश्यकता होती है,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

उसी प्रकार से वीरों की कीर्ति को भी शत्रुओं के मस्तक रूपी आलम्बन की आवश्यकता होती है। बलराम के इस कथन का आशय है कि यदि हमें कीर्ति की इच्छा है तो हमें पौरुष का आलम्बन लेकर शिशुपाल के मस्तक को कुचलना होगा।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में समासोक्ति अलंकार हैं। लक्षण है -'परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।' अर्थात् श्लिष्ट विशेषणों द्वारा अप्रकृत के व्यवहार का कथन अर्थात् दो अर्थों का संक्षेप में कथनसमासोक्ति अलंकार कहलाता है। यहाँ अप्रस्तुत प्रासाद आदि पर आरोहण का कथन होने से समासोक्ति अलंकार है।

अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः।
केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः।।53।।

अन्वय - (लोके) अङ्काधिरोपितमृगः चन्द्रमा मृगलाञ्छनः (कथ्यते, तथा च) निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथः केसरी मृगाधिपः (कथ्यते)।

शब्दार्थ- अङ्काधिरोपितमृगः = गोद में मृग को रखने वाला, मृगलाञ्छनः = मृग के कलघङ्क वाला, निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथः = निष्ठुरता से मृगसमूह को मारने वाला, केसरी = सिंह, मृगाधिपः = मृगों का स्वामी।

अनुवाद- (लोक में) गोद में मृग को रखने वाला चन्द्रमा मृगलाञ्छन अर्थात् मृग के कलंक वाला (कहा जाता है, तथा) निष्ठुरता से मृगसमूह को मारने वाला सिंह मृगाधिप अर्थात् मृगों का स्वामी (कहा जाता है)।

व्याख्या - लोक में देखा जाय तो मृग का सम्बन्ध चन्द्रमा के साथ भी होता है और सिंह के साथ भी। परन्तु दोनों में बहुत बड़ा विभेद है। चन्द्रमा मृग को अपनी गोद में रखता है, इसलिए उसे मृगलाञ्छन अर्थात् मृग के कलघङ्क वाला कहा जाता है तथा सिंह निष्ठुरता से मृगसमूह पर आक्रमण कर उसको मारने वाला होता है, इसलिए उसे मृगाधिप अर्थात् मृगों का स्वामी कहा जाता है। अतः लोक में पौरुष का आश्रय लेने वाले ही प्रशंसनीय होते हैं। हमें भी अपने पौरुष में वृद्धि करनी चाहिए, यही बलराम के इस कथन का तात्पर्य है।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में अनुप्रास तथा अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार हैं। दोनों अलङ्कारों के लक्षण पूर्व में प्रदर्शित किए जा चुके हैं। यहाँ पर 'म्' और 'ग्' की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास अलंकार है। अप्रस्तुत चन्द्रमा और सिंह के कथन से पौरुष का आश्रय लेने वाले ही लोक में प्रशंसनीय होते हैं, यह प्रदर्शित किया गया है।

ii. **व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ -** अङ्काधिरोपितमृगः -अङ्कम् अधिरोपितो मृगो येन सः। बहुव्रीहि समास।

निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथः - निष्ठुरे क्षिप्तो मृगयूथो येन सः। बहुव्रीहि समास।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

5.3.9 दण्ड उपाय की श्रेष्ठता

चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति।।54।।

अन्वय - चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वम् अपक्रिया (भवति), स्वेद्यम् आमज्वरं कः प्राज्ञः अम्भसा परिषिञ्चति ?

शब्दार्थ - चतुर्थोपायसाध्ये = दण्ड से वश में करने योग्य, रिपौ = शत्रु के विषय में, सान्त्वम् = साम का व्यवहार, अपक्रिया = हानिकारक, स्वेद्यम् = पसीना लाने वाले, आमज्वरं = अपरिपक्क ज्वर को, कः = कौन, प्राज्ञः = बुद्धिमान्, अम्भसा = जल से, परिषिञ्चति = सींचता है।

अनुवाद- चतुर्थ उपाय (दण्ड) से वश में करने वाले शत्रु के विषय में साम का व्यवहार हानिकारक (होता है), पसीना लाने वाले अपरिपक्क ज्वर को कौन बुद्धिमान् जल से सींचता है ? अर्थात् कोई नहीं।

व्याख्या - शत्रु को वश में करने के चार उपाय प्रसिद्ध है - साम, दान, भेद तथा दण्ड। सबसे पहले शत्रु को बात करके वश में किया जाय, यदि यह उपाय सिद्ध न हो तब उसे दान अर्थात् धन आदि का लालच देकर वश में करना चाहिए। दान भी सफल न होने पर उसके मन्त्रियों अथवा सेना में भेद डाल देना चाहिए तथा यदि इस उपाय से भी शत्रु वश में न हो पाये तब अन्तिम अर्थात् चतुर्थ उपाय दण्ड का प्रयोग कर शत्रु को वश में करना चाहिए। जो शत्रु के दण्ड की भाषा समझता है, उसके विषय में साम का प्रयोग प्रयोक्ता के लिए हानिकारक होता है। जैसे किसी को पसीना लाने वाले अपरिपक्क ज्वर हो जाये तथा वह किसी बुद्धिमान् चिकित्सक के पास उपचार के लिए जाये, तब कोई भी बुद्धिमान् चिकित्सक उसे जल से सींचकर उसके ज्वर को शान्त नहीं करता है। बलराम के इस कथन का अभिप्राय है कि यही स्थिति हमारे शत्रु शिशुपाल की है। वह साम को नहीं समझता है। अतः उसके लिए केवल एकमात्र दण्ड के प्रयोग का विकल्प ही अब शेष बचा है और हमें अब उस पर दण्ड का प्रयोग शीघ्रातिशीघ्र कर देना चाहिए।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार हैं। लक्षण पूर्व में प्रदर्शित किया जा चुका है। यहाँ पर सामान्य (चतुर्थ उपाय अर्थात् दण्ड से वश में करने वाले शत्रु के विषय में साम का व्यवहार हानिकारक होता है) का विशेष (पसीना लाने वाले अपरिपक्क ज्वर को कोई बुद्धिमान् जल से नहीं सींचता है) से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार हैं।

5.3.10 शत्रु(शिशुपाल) के प्रति साम उपाय का निषेध

सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपकाः।
प्रतप्तस्येव सहसा सर्पिषस्तोयबिन्दवः।।55।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अन्वय - सकोपस्य तस्य सामवादाः सहसा प्रतप्तस्य सर्पिषः तोयबिन्दवः इव प्रत्युत दीपकाः (भविष्यन्ति)।

शब्दार्थ - सकोपस्य = क्रोधयुक्त, तस्य = उस (शिशुपाल) के लिए, सामवादाः = शान्तिपूर्वक वचन, सहसा = अनायास ही, प्रतप्तस्य = तपे हुए, सर्पिषः = घृत को, तोयबिन्दवः = जल की बूँदों, इव = के समान, प्रत्युत = विपरीत होकर, दीपकाः = उद्दीप्त।

अनुवाद- क्रोधयुक्त उस (शिशुपाल) के लिए सामवचन (शान्तिपूर्वक वचन) अनायास ही तपे हुए धृत को जल की बूँदों के समान विपरीत होकर उद्दीप्त ही करेंगे।

व्याख्या - जल की बूँदों का स्वभाव शीतल होता है, यह सर्वविदित है। परन्तु यदि उन्हीं जल की बूँदों को तपते हुए घी पर डाल दिया जाये तो घी और अधिक उद्दीप्त हो जाता है। इसी प्रकार से शान्तिपूर्वक वचनों से प्रत्येक व्यक्ति को अपने अनुकूल बनाया जा सकता है, परन्तु यदि उनका प्रयोग किसी क्रोधयुक्त व्यक्ति पर कर दिया जाये तो उसका क्रोध पहले से अधिक बढ़ जाता है तथा वह उन सामवचनों को प्रयोग करने वाले व्यक्ति की दुर्बलता समझता है। अतः हमें अब और शिशुपाल के लिए शान्तिपूर्वक वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि अब उसका स्वभाव अनायास ही तपे हुए धृत के समान है तथा हम यदि उसके लिए जल की बूँदों के समान सामवचनों का प्रयोग करेंगे तो वे वचन अपने स्वभाव से विपरीत होकर उसके क्रोध को उद्दीप्त ही करेंगे। अतः यहाँ पर बलराम यह कहना चाहते हैं कि हमें शिशुपाल के प्रति एकमात्र दण्ड का ही व्यवहार करना चाहिए।

विशेष - i. अलंकार - इस पद्य में उपमा अलंकार हैं। लक्षण पूर्व में प्रदर्शित किया जा चुका है। यहाँ पर 'जल की बूँदें' उपमान, 'सामवचन' उपमेय, 'उद्दीप्त करना' साधारण धर्म तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है। अतः यह पूर्णोपमा का उदाहरण है।

5.3.11 शत्रुस्वरूप अयोग्य अमात्य का त्याग

गुणानामायथातथ्यादर्थं विप्लावयन्ति ये।
अमात्यव्यञ्जना राज्ञां दूष्यास्ते शत्रुसंज्ञिताः।।56।।

अन्वय - गुणानाम् आयथातथ्यात् ये अर्थं विप्लावयन्ति, ते अमात्यव्यञ्जनाः राज्ञां दूष्याः शत्रुसंज्ञिताः (भवन्ति)।

शब्दार्थ - गुणानाम् = गुणों के, आयथातथ्यात् = यथायोग्य न करने से, ये = जो, अर्थं = प्रयोजन को, विप्लावयन्ति = बिगाड़ देते हैं, ते = वे, अमात्यव्यञ्जनाः = अमात्य के वेष में, राज्ञां = राजाओं को, दूष्याः = दूषित करने वाले, शत्रुसंज्ञिताः = शत्रु ही।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अनुवाद- गुणों के यथायोग्य न करने से जो (राजा के) प्रयोजन को बिगाड़ देते हैं, वे अमात्य के वेष में राजाओं को दूषित करने वाले शत्रु ही होते हैं।

व्याख्या - जिस राजा के मन्त्री आदि सन्धि, विग्रह आदि गुणों का प्रयोग यथायोग्य नहीं करते हैं, वे राजा के समस्त प्रयोजनों को बिगाड़ देते हैं। वस्तुतः राजा की सफलता अथवा असफलता सभी योग्य मन्त्रियों पर ही निर्भर रहती है। अतः वे ही मन्त्री राजा के प्रयोजनों को सिद्ध करते करते हैं, जो सन्धि, विग्रह आदि छः गुणों का प्रयोग यथासमय राजा के उन्नति के लिए करते हैं। जो अमात्य ऐसा नहीं करते हैं, वे अमात्यों के वेष में राजाओं को दूषित करने वाले ही होते हैं और ऐसे अमात्यों को अमात्य नहीं अपितु शत्रु ही कहा जाना चाहिए। बलराम यहाँ पर व्याजोक्ति में यह कहना चाहते हैं कि उद्धव आदि आपके (कृष्ण के) अमात्य के रूप में छिपे हुए शत्रु ही हैं। क्योंकि वे यथावसर सन्धि आदि गुणों का उचित प्रयोग नहीं करते हैं। अतः ऐसे अमात्य के रूप में छिपे हुए शत्रुओं को पहचान कर अपने प्रयोजनों को विफल होने से बचाना चाहिए।

विशेष - i. व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ - अमात्यव्यञ्जनाः -अमात्यानां व्यञ्जनं येषां ते। बहुव्रीहि समास।

पाठ्य प्रश्न

1 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

i. अपमान होने पर भी सन्तुष्ट रहने वाले व्यक्ति से श्रेष्ठ ……को माना जाता है?

ii. पुरुष का जन्म .... शब्द के समान केवल नाम के लिए होता है।

iii. मनस्वी पुरुष में .... दोनों होते हैं।

iv. राहु के प्रति .... दोनों का समान अपराध प्राप्त होता है।

2. निम्नलिखित प्रश्नों में सही/ गलत उत्तर का चयन कीजिए ।

i. गोद में मृग को रखने वाला चन्द्रमा मृगलांछन कहा जाता है।

ii. निष्ठुरता से मृगसमूह को मारने वाला सिंह मृगाधिप (मृगों का स्वामी) कहा जाता है।

iii. लोक में पौरुषहीनता का आश्रय लेने वाला प्रशंसनीय माना जाता है।

iv. क्रोधयुक्त शत्रु के प्रति सामवचन का प्रयोग करना चाहिए ।

v. पञ्चाग्नियों में सूर्य को पञ्चम अग्नि माना जाता है ।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

5.4 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने शिशुपालवधम् महाकाव्य के द्वितीय सर्ग के पद्य संख्या 26 से 37 तक का शब्दार्थ, अनुवाद एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी जैसे सन्धि, समास, छन्द, अलंकार इत्यादि के विषय में जाना। साथ ही, प्रत्येक पद के विषय-वस्तु को भी समझा। राजा को सुरक्षा के पाँच उपाय बताए गए हैं-कार्य के आरम्भ का उपाय, कार्य के लिए उपयोगी समस्त पदार्थों का संग्रह, कार्य के लिए उचित देश, काल आदि का विभाग, कार्य के समापन में सम्भावित समस्त विप्रतिपत्तियों का प्रतिकार तथा कार्य की सिद्धि। इसकी तुलना बौद्धदर्शन के अनुसार शरीर में पाँच स्कन्ध-रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कार। इसके साथ ही राजनीति के सन्दर्भ में बताया गया कि राजा को स्वयं की उन्नति और शत्रु की हानि इन दो पर विचार करना चाहिए। इन दोनों के आश्रय से ही राजा अपने राजधर्म में अपनी वाग्मिता का विसतार कर सकते हैं। राजा के अभ्युदय के अनेक बिन्दुओं को इसमें बताया गया है। जिसमें उनके लिए शत्रुओं के भेदन को अनिवार्य बताया गया है। कहा गया है कि जब तक शत्रु तब तक राजा की प्रतिष्ठा नहीं होती और उसे सुखप्राप्ति भी नहीं होती। राजनीति के मुख्य तत्व षाड्गण्य के सन्दर्भ में भी आपको जानकारी दी गई है।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

अरौ — शत्रु

वैरं — शत्रुता को

उदर्चिषं — जलती हुई अग्नि को

योषिट: — स्त्री

वैयात्यं — निषेधपरक वचन

क्रियासमभिहारणे — बार-बार

विराध्यन्तं — विरोध करने वाले को

अनभ्यावृत्त्या — एक बार

अद्रौ — पर्वत में

तुंगत्वमद्य् — ऊँचाई

अगाधता — गाम्भीर्य

आशु — शीघ्र ही

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

मुदिम्नः	—	कोमलता
स्फुटं	—	स्पष्ट
असाराणां	—	सारहीन पदार्थों का
निदर्शन	—	उदाहरण
परवायौ	—	शत्रुरूपी वायु
उपेयुषि	—	प्राप्त होने पर
जातवेदसाम्	—	अग्नि के मध्य में
हेलया	—	तिरस्कारपूर्वक
द्याम्	—	स्वर्ग (आकाश)
दूण्याः	—	दूषित करने वाले

5.6 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1.	2.
i. धूल	i. सही
ii. यदृच्छा	ii. सही
iii. ऊँचाई(महानता) और स्वभाव गाम्भीर्य	iii. गलत
iv. सूर्य और चन्द्रमा	iv. गलत
v. सारहीन पदार्थ (तिनका) के समान लघु	v. सही
	vi. गलत

5.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

प्रश्न 1 'शिशुपालवध महाकाव्य है', इस कथन की पुष्टि कीजिए।

प्रश्न 2 शिशुपालवध के पठितांश के आधार पर 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' कथन की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 3 निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद कीजिए -

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

मन्त्रे योध इवाधीरः सर्वाङ्गैः संवृतैरपि।
चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशङ्कया।।
अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः।
केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः।।

प्रश्न 4 निम्नलिखित श्लोक की सप्रसंग व्याख्या कीजिए -

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रे महीभृताम्।।
तृप्तियोगः परेणापि महिम्ना न महात्मनाम्।
पूर्णश्चन्द्रोदयाकङ्क्षी दृष्टान्तोऽत्र महार्णवः।।

प्रश्न 5 निम्नलिखित शब्दों पर व्याकरणात्मक टिप्पणी लिखिए -

सुस्थिरंमन्यः, उपकर्त्रीरिणा,परवायावुपेयुषि,पञ्चतपसः

5.8 सन्दर्भ-ग्रंथ

- शास्त्री, हरगोविन्द(व्या-), *शिशुपालवधम्*, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2013

5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य-सामग्री

- शास्त्री, शालिग्राम(व्या.), *साहित्यदर्पण*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2000
- काणे, पी.वी., *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2002
- शर्मा 'ऋषि', उमाशंकर, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 1999

© DDCE, COL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ–6 इकाई–3

गीतिकाव्य एवं भर्तृहरि विरचित नीतिशतकम

संरचना

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 गीतिकाव्य का परिचय

6.3.1 गीतिकाव्य का उद्भव एवं विकास

6.4 भर्तृहरि परिचय

6.4.1 समय एवं जीवनवृत्त

6.4.2 भर्तृहरि:शतकत्रय

6.5 नीतिशतक:परिचय

6.5.1 नीतिशतक में वर्ण्य-विषय

6.5.2 नीतिशतक का काव्य-वैशिष्ट्य

6.6 सारांश

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

6.8 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

6.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

6.10 संदर्भ ग्रंथ

6.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

6.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी-

- गीतिकाव्य से परिचित होंगे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- भर्तृहरि के जीवन-परिचय को जान पायेंगे।
- भर्तृहरि के कृतित्व शतकत्रय का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
- भर्तृहरि रचित नीतिशतक के विषय में अवबोध होगा।
- संस्कृत के पारिभाषिक शब्दावली को समझ पायेंगे ।

6.2 प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय में पद्यकाव्य साहित्य की एक विशाल एवं समृद्ध परम्परा रही है। जिसको महाकाव्य, गीतिकाव्य, मुक्तकाव्य इत्यादि अनेक भेदों एवं उपभेदों में विभक्त किया गया है। इसी क्रम में गीतिकाव्य के एक उपभेद मुक्तक काव्य प्राप्त होता है। मुक्तक काव्य वह काव्य है जहाँ अन्य पूर्वापर पदों की अपेक्षा नहीं रहती तथा जो स्वतन्त्र रहता है । मुक्तक काव्य की परम्परा को देखें तो भर्तृहरि एवं उनकी शतकत्रय(शृंगारशतक, वैराग्यशतक तथा नीतिशतक) रचना अग्रणी स्थान पर प्राप्त होता है। मुक्तक काव्य के अन्तर्गत अमरूकशतक, भामिनिविलास इत्यादि अन्य अनेक ग्रंथ प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत पाठ में आप गीतिकाव्य का परिचय, उद्भव एवं विकास को पढ़ेंगे, साथ ही भर्तृहरि के जीवन-परिचय, उनकी रचनाओं तथा उनके काव्य-वैशिष्ट्य का अध्ययन किया जायेग जिसके माध्यम से आप मुक्तक काव्य के वर्ण्य-विषय तथा भर्तृहरि के योगदान को भी समझ पायेंगे।

6.3 गीतिकाव्य का परिचय

संस्कृत भाषा के विपुल साहित्य में उपलब्ध समस्त विधाओं में गीतिकाव्य (खण्डकाव्य)अत्यन्त रमणीय विधा है। गीत या गीति का अर्थ सामान्यतया साज- शृंगार अथवा गायन-वादन ग्रहण कर लिया जाता है, किन्तु यहाँ गीति से तात्पर्य अन्तरात्मा के भावों की अभिव्यक्ति से है। जिसमें गेयात्मकता व संगीतात्मकता का सम्मिश्रण होता है। शास्त्रीय दृष्टि से गीतिकाव्य को ही खण्डकाव्य कहा जाता है, चूँकि इसमें महाकाव्य के समस्त लक्षण घटित नहीं होते हैं। प्रथमतया गीतिकाव्य अथवा खण्डकाव्य आकार में महाकाव्य से छोटा होता है, इसमें कवित्व के साथ-साथ संगीत अथवा लयात्मकता भी होती है अर्थात् जहाँ भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों की प्रधानता होती है। दूसरा, इसमें मानव-जीवन के किसी एक मार्मिक पक्ष अथवा भाव यथा प्रेम, भक्ति, विरह, नीति, शोक, वैराग्य, प्रकृति वर्णन एवं देवस्तुति आदि को केन्द्रित करके उसे गेय बनाकर संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जाता है—

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

"खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।"

साहित्यदर्पण 6/239

गीतिकाव्य वह काव्य प्रकार है, जिसमें हृदय में स्थित कोमल भावों एवं संवेगों का स्वतः स्फुरण होता है। इन भावों का परस्पर मेल भी अपेक्षित नहीं होता अर्थात् शोक में शृंगार का अथवा शृंगार में शोक का मिश्रण पूर्णतः असंगत माना जाता है। इसलिए गीतिकाव्य में जीवन के किसी एक पक्ष या भाव को केन्द्रित करके ही वर्णन किया जाता है। गीतिकाव्य में जहाँ संक्षिप्तता का प्रमुख स्थान है, वहीं गेयात्मकता का भी वैशिष्ट्य है। चूँकि किसी भी एक भाव को यदि विस्तार से वर्णित किया जाएगा, वहाँ नीरसता आना स्वाभाविक है। इसलिए गीतिकाव्य में किसी भी एक विषय को संगीतमय रागों या छन्दों के माध्यम से संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। अतः संक्षेप में 'गीतिकाव्य' का यह लक्षण दिया जा सकता है—

"भावानामात्मनिष्ठानां कल्पनावलितं लघु।
स्फुरणं गेयरूपेण गीतिकाव्यं निगद्यते।।"

6.3.1 गीतिकाव्य का उद्भव एवं विकास

गीतिकाव्य का उद्भव अन्य साहित्यिक विधाओं के समान ही वेद की ऋचाओं से माना गया है। ऋग्वैदिक ऋचाओं में वर्णित अग्नि, इन्द्र, उषस्, सविता, वरुण, पृथ्वी आदि विविध देवी-देवताओं के स्तुतिपरक मन्त्र एवं सामवेद का संगीत-पक्ष, साथ ही अथर्ववेद में भूमि की स्तुति में उत्कृष्ट गीतिकाव्य का विन्यास है। अथर्वा ऋषि ने 63 मन्त्रों के माध्यम से पृथ्वी देवी के प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति की है (अथर्ववेद-12/1) ये सभी संस्कृत गीतिकाव्य के उद्भव हेतु ठोस आधारशिला प्रदान करते हैं।

लौकिक साहित्य की दृष्टि से गीतिकाव्य के लक्षण वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि में वर्णित राम एवं श्रीकृष्ण की स्तुतियों में दृष्टिगत होते हैं। श्रीमद्भवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण के विराट् रूप का वर्णन भी उत्तम गीतिकाव्य अथवा स्तोत्रकाव्य के रूप में स्वीकृत है। इसके अतिरिक्त पुराणों में विष्णु, नारद, भागवत आदि विविध देवों की स्तुतियाँ गीतिकाव्य को ही निर्दिष्ट करती हैं। किन्तु गीतिकाव्य का परिष्कृत रूप महाकवि कालिदास द्वारा रचित मेघदूत तथा ऋतुसंहार में ही परिलक्षित होता है। गीतिकाव्य परम्परा को पोषित करने वाले अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में सातवाहनवंशीय राजा हाल द्वारा रचित गाथा-सप्तशती, 22 पद्यों में निबद्ध घटकर्पर काव्य, भर्तृहरि विरचित शतकत्रय, अमरुक का अमरुकशतक, बिल्हण कृत चौरपञ्चाशिका, महाकवि जयदेव विरचित गीतगोविन्द, गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती तथा पण्डितराज जगन्नाथ का भामिनीविलास आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त अनेक धार्मिक स्तोत्र ग्रन्थ भी इसी समृद्ध परम्परा के वाहक हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

विषय प्रतिपादन की दृष्टि से गीतिकाव्य को दो श्रेणियों में बाँटा गया है प्रबन्ध तथा मुक्तक। प्रबन्ध गीतिकाव्य में किसी एक घटना का क्रमबद्ध विवेचन होता है तथा वर्ण्य-विषय की दृष्टि से प्रत्येक श्लोक एक-दूसरे पर निर्भर करता है। महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूत' सुप्रसिद्ध एवं उत्कृष्ट प्रबन्ध गीतिकाव्य है। जबकि मुक्तक काव्य से तात्पर्य उन छन्दोबद्ध रचनाओं से है, जिनमें प्रत्येक पद्य (श्लोक) स्वतन्त्र रूप से अपने अर्थ प्रकाशन में समर्थ होता है। ऐसे पद्यों में पूर्वापर प्रसंग की आवश्यकता नहीं होती। अग्निपुराण (337/36) में भी यही प्रतिपादित है-

"मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्॥"

महाकवि भर्तृहरि विरचित शृंगारशतक, नीतिशतक तथा वैराग्यशतक मुक्तक काव्य के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। वस्तुतः यहाँ नीतिशतकम् प्रधान विवेच्य विषय है, अतः इस ग्रन्थ के विवेचन से पूर्व इसके रचनाकर्ता महाकवि भर्तृहरि के विषय में जानना अपेक्षित है।

पाठ्य प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों में सही तथा गलत उत्तर का चयन कीजिए।
   i. गीतिकाव्य का दूसरा नाम खण्डकाव्य है।
   ii. गीतिकाव्य के अन्तर्गत महाकाव्य आता है।
   iii. गीतिकाव्य विस्तृत काव्य होता है।
   iv. गीतिकाव्य का उद्भव वेद की ऋचाओं से माना गया है।
2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   i. गीतिकाव्य को ________ श्रेणियों में विभाजित किया गया है।
   ii. कालिदास कृत मेघदूत __________ माना जाता है।
   iii. भर्तृहरि कृत शतकत्रय __________ सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।
   iv. पण्डित जगन्नाथ की रचना का नाम ________ है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

6.4 भर्तृहरि परिचय

6.4.1 समय एवं जीवनवृत्त

गीतिकाव्य परम्परा में मुक्तक काव्य के सृजनकर्त्ता, कुशल राजा, वैयाकरण एवं कवि के रूप में प्रसिद्ध भर्तृहरि के समय तथा जीवनवृत्त के विषय में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं- प्रसिद्ध जनश्रुति अनुसार भर्तृहरि मालवा प्रदेश के राजा गन्धर्वसेन के पुत्र थे और विक्रम संवत् के संस्थापक विक्रमादित्य (57 ई.पू.) के अग्रज भी। किन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में इस विषय पर पर्याप्त मतभेद हैं। एक अन्य मतानुसार, भर्तृहरि हूणों को पराजित करने वाले राजा विक्रमादित्य (644 ई.) के भाई भी बताए जाते हैं।

चीनी यात्री इत्सिंग के मतानुसार- 641 ई. में भर्तृहरि नामक वैयाकरण का देहान्त हुआ। यही भर्तृहरि वाक्यपदीय एवं महाभाष्यदीपिका जैसे उत्कृष्ट व्याकरण ग्रन्थों के रचयिता भी माने गए हैं। इत्सिंग ने यह भी उल्लेख किया है कि भर्तृहरि नामक व्यक्ति सांसारिक जीवन से विरक्त होकर कई बार गृहत्याग करके पुनः गृहस्थी बने और अन्त में बौद्ध धर्म को अपनाया। यद्यपि भर्तृहरि कृत शतकत्रय और वाक्यपदीय के मंगलाचरण का विमर्श करने पर वे शैव या अद्वैत वेदान्ती सिद्ध होते हैं, तथापि इत्सिंग द्वारा उल्लिखित भर्तृहरि के गृहत्याग एवं पुनः गृहस्थाश्रम प्रवेश की कथा आज भी प्रचलित है और शतकत्रय के अध्ययन से भी विदित होती है। डॉ. कीथ ने भी उपर्युक्त इसी भर्तृहरि को शतकत्रय एवं वाक्यपदीय का प्रणेता स्वीकार करते हुए इनका समय 640 ई. के निकट माना है।

इसके अतिरिक्त विष्णुशर्मा कृत पञ्चतन्त्र में भी भर्तृहरि द्वारा रचित पद्य उपलब्ध होते हैं। पञ्चतन्त्र का रचनाकाल विभिन्न विद्वानों द्वारा 300 ई. के पश्चात् तथा 600 ई. से पूर्व निर्धारित किया गया है। तदनुसार भर्तृहरि का समय छठी शताब्दी से भी पहले का ही सिद्ध होता है। अतः भर्तृहरि के कालविषयक विविध मतों के परिणामस्वरूप उनका समय 300 ई. से 600 ई. के मध्य माना जा सकता है।

भर्तृहरि के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालने वाली एक प्रसिद्ध किंवदन्ती से ज्ञात होता है कि भर्तृहरि का जन्म किसी राजवंश में हुआ था। विक्रमादित्य उनके सौतेले भाई थे। उनकी पिघõला नामक रूपवती पत्नी थी। कहा जाता है कि भर्तृहरि रानी पिङ्गला पर बहुत अधिक मोहित थे। एक बार एक ब्राह्मण योगी भर्तृहरि को ऐसा फल देते हैं, जिसे खाने से चिरयौवन एवं अमरत्व की प्राप्ति होती है। किन्तु भर्तृहरि ने वह फल स्वयं न खाकर अपनी प्राणप्रिया पत्नी को दे दिया, जिससे वह चिरकाल तक यौवना बनी रहे और अमरत्व प्राप्त करे। रानी पिङ्गला राज्य के किसी अन्य पुरुष से गुप्त प्रेम करती थी, अतः उसने वह फल उस पुरुष को दे दिया और वह पुरुष नगर की एक रूपवती वेश्या में आसक्त होने के कारण उसे वह फल भेंटस्वरूप दे देता

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

है। लेकिन नगर की वह गणिका (वेश्या) स्वयं भर्तृहरि के गुणों पर मोहित थी। फलतः वह राजा भर्तृहरि के चिरयौवन और अमरत्व की कामना करती हुई वह विशिष्ट फल उन्हें अर्पित करती है। पुनः वही फल वेश्या द्वारा पाकर भर्तृहरि को परम आश्चर्य हुआ और अन्ततः सम्पूर्ण रहस्य उन्हें स्पष्ट हो गया।

इस सम्पूर्ण घटनाक्रम से विशेषरूप से रानी पिङ्गला की दुश्चरित्रता से भर्तृहरि अत्यन्त दुःखी हुए और वे वैराग्ययुक्त होकर राज्य का त्याग कर वन की ओर प्रवृत्त हुए। नीतिशतक के कुछ संस्करणों में उपलब्ध प्रस्तुत श्लोक उक्त घटना की सत्यता को पुष्ट करता है—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च।।

नीतिशतक,02

6.4.2 भर्तृहरि: शतकत्रय

मुक्तक काव्य के सन्दर्भ में महाकवि भर्तृहरि की तीन रचनाएँ उपलब्ध होती हैं-शृंगारशतक, नीतिशतक और वैराग्यशतक। तीनों में 100-100 पद्य हैं, इसलिए इन्हें शतकत्रय कहा जाता है। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

1. शृंगारशतक- शृंगारशतक में कवि ने अत्यन्त कोमल शैली में स्त्रियों के मनमोहक एवं आकर्षक सौन्दर्य, उनकी विविध चेष्टाओं के प्रति पुरुष-हृदय का आकर्षण, युवावस्था में काम की प्रबलता आदि विषयों का चित्रण किया है। किन्तु भर्तृहरि धीरे-धीरे शृंगार रस से उत्पन्न आकर्षण की क्षणभंगुरता एवं निस्सारता को चित्रित करते हुए अन्ततः मनुष्य को विकर्षण अथवा शान्तरस की ओर प्रवृत्त कराते हैं। कवि ने स्पष्ट शब्दों में उक्त भावों का चित्रण इस श्लोक में किया है-

कान्ताकारधरा नदीयमभितः क्रुराशया नेष्यते।
संसारर्णवमज्जनं यदि ततो दूरेण संत्यज्यताम्।।

शृंगारशतक,51

इस प्रकार शृंगार शतक का नाम शृंगार परक होने पर भी कवि भर्तृहरि जहाँ पहले स्त्रियों के प्रति आकर्षण का वर्णन करते हैं, वहीं अन्त में पाठक को वैराग्य की ओर उन्मुख करते हैं।

2. नीतिशतक - नीतिशतक में नीति एवं सदाचार से सम्बद्ध 100 श्लोक हैं, जो मानव के व्यावहारिक जीवन हेतु अत्यन्त उपयोगी हैं। प्रकृत ग्रन्थ में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध, विद्या, परोपकार, सत्सघöति, साहस,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

मैत्री, मूर्ख-निन्दा, विद्वत्प्रशंसा आदि मानव की उदार मनोवृत्तियों का सरल भाषा में प्रतिपादन किया गया है। साथ ही इन नैतिक-सिद्धान्तों को व्यक्तिगत जीवन में ग्रहण करने की सद्प्रेरणा भी दी गई है। कवि भर्तृहरि कर्म की प्रधानता को बताते हुए आलस्य को त्यागकर निरन्तर परिश्रमपूर्वक कर्म करने का उपदेश देते हुए कहते हैं-

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति।।

नीतिशतक,87

3. वैराग्यशतक- वैराग्यशतक में कवि ने सम्पूर्ण विश्व को क्षणभंगुर तथा भयभीत हुआ दिखाया है। इस गीतिकाव्य में महाकवि भर्तृहरि ने भक्ति एवं वैराग्य को ही मानव जीवन के अन्तिम पुरुषार्थ का साधन बताया है। तीनों शतकों में वैराग्यशतक इनकी सर्वोत्तम कृति है। इसमें आशा-तृष्णा की प्रबलता, यौवन की अस्थिरता, भोग-विलास का त्याग, संसार की विषमता एवं निस्सारता का मार्मिक चित्रण करते हुए मानव-मात्र को वैराग्य युक्त तपस्वी जीवन की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया है। यथा कवि ने मनुष्य को यह उपदेश दिया है कि-

कौपीनं शतखण्डजर्ज्जरतरं कन्थापुनस्तादृशी।
निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यमशतं शÕया श्मशाने वने।।
मित्रमित्रं समानताऽतिविमला चिन्ताऽथशून्यालये।
ध्वस्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं तिष्ठति।।

भर्तृहरि की काव्यकला अनुपम है। इनकी रचनाओं में प्रायः दीर्घ समासों का अभाव है। कम से कम शब्दों में अधिकाधिक भावों को प्रस्तुत करने में कवि सिद्धहस्त हैं अर्थात् जो कुछ वे लिखते हैं, वह अपने आप में पूर्ण होता है। जैसे कवि ने मूर्ख व्यक्ति विषयक एक ही पंक्ति में सब कुछ कह दिया-

सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।

अपण्डितों की शोभा विषयक श्लोक को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे किसी कोश की पंक्ति हो – **"विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।"** इनकी भाषा-शैली सहज, सरल तथा प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से युक्त है। महाकवि ने जीवन के सभी पक्षों को अत्यन्त निकट से देखा अथवा अनुभव किया है, ऐसा जान पड़ता है। इसलिए भर्तृहरि के काव्य में कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष की प्रधानता दृष्टिगत होती है। निष्कर्षतः जीवन के विविध पक्षों का मार्मिक चित्रण करते हुए अन्ततः वैराग्य की ओर पाठक को उन्मुख करने का उनका प्रधान उद्देश्य परिलक्षित होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

चूँकि भर्तृहरि कृत 'नीतिशतक' यहाँ प्रधान विवेच्य विषय है, अतः तत्सम्बद्ध विस्तृत विवेचन अपेक्षित है—

पाठ्य – प्रश्न

3. निम्नलिखित प्रश्नों में सही उत्तर का चयन कीजिए।

i. भर्तृहरि का समय क्या माना गया है – 300 ई. से 600 ई. / 600ई.-800ई.

ii. वाक्यपदीय रचना मानी जाती है – भर्तृहरि/ पाणिनी

iii. भर्तृहरि ने किस काव्य विधा में अपनी रचनाएँ की हैं – मुक्तक काव्य/ महाकाव्य

iv. पञ्चतंत्र के रचनाकार हैं – विष्णुशर्मा/ भर्तृहरि

6.5 नीतिशतक : परिचय

'नी नये' वा 'नी प्रापणे' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय जोड़ने पर 'नीति' शब्द निष्पन्न होता है, जो सामान्यतः आचरण, निर्देशन, उपाय, व्यवहारकुशलता और राजनीतिज्ञता आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। किन्तु नीतिशतक के सन्दर्भ में नीति से तात्पर्य नैतिक कुशलता अथवा लोकव्यवहारगत कुशलता ही है, न कि राजनीति या अर्थनीतिगत कुशलता। संस्कृत साहित्य में नीतिपरक काव्यों के प्रणयन की सुदीर्घ परम्परा रही है। यथा- चाणक्यनीति, नीतिसार, नीतिरत्न, नीति-मञ्जरी, विदुरनीति और नीति द्विषष्टिका आदि अनेक सुभाषित संग्रह उपलब्ध होते हैं। समस्त नीतिकाव्यों में भर्तृहरि कृत 'नीतिशतक' सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

नीतिशतक में प्रतिपादित सभी नैतिक सिद्धान्त किसी जाति, वर्ग एवं सम्प्रदाय विशेष के लिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवजाति के लिए अत्युत्तम औषधि हैं। प्रत्येक उपदेश व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले लोकव्यवहार के निर्धारण में उत्तम मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है। वस्तुतः मम्मटाचार्य द्वारा प्रतिपादित 'व्यवहारविदे' काव्यप्रयोजन का ही अनुमोदन सही अर्थों में नीतिशतक ग्रन्थ करता है।

6.5.1 नीतिशतक में वर्ण्य-विषय

नीतिशतक में व्यावहारिक जीवन की सम-विषम परिस्थितियों का विभिन्न पद्धतियों द्वारा विवेचन किया गया है। यथा-मूर्ख पद्धति, विद्वत्पद्धति, मानशौर्यपद्धति, अर्थ पद्धति, दुर्जन-निन्दा पद्धति, सज्जन-प्रशंसा

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पद्धति, परोपकार पद्धति, धैर्य-पद्धति, दैव-पद्धति तथा कर्मपद्धति। इन सभी पद्धतियों में भर्तृहरि ने विद्या, मान, वीरता, तप, त्याग, स्वाभिमान, परोपकार, भाग्य एवं पुरुषार्थ आदि सभी मनोभावों का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। यथा नीतिशतक में अल्पज्ञानी मूर्ख व्यक्ति की हठधर्मिता का वर्णन करते हुए कहा है कि ऐसी कोटि के व्यक्ति का समाधान स्वयं ब्रह्मा के पास भी नहीं है-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।

ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि नरं न रञ्जयति।।

नीतिशतक,03

सज्जन एवं महापुरुषों के सद्गुणों का विवेचन स्पष्टतः सदाचरण की ओर प्रेरित करता ही है। यथा-

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।

यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।

नीतिशतक,53

मधुर वाणी मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ आभूषण है। अन्य कृत्रिम आभूषण तो समय बीतने पर नष्ट हो जाते हैं, किन्तु मधुर वाणी रूपी आभूषण नित्य, स्थायी आभूषण है। स्वयं भर्तृहरि के शब्दों में-

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।

नीतिशतक,20

इस प्रकार नीतिशतक में प्रत्येक विषय को कवि ने उपदेशात्मक शैली में बड़े ही सहज ढंग से निरूपित किया है, जो भर्तृहरि के मानवतावादी दृष्टिकोण को दर्शाता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण 'नीतिशतक' ग्रन्थ सर्वाधिक लोकप्रिय एवं विश्वव्यापी बन गया।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

6.5.2 नीतिशतक का काव्य-वैशिष्ट्य

नीतिशतक में सर्वत्र सरल भाषा का प्रयोग दृष्टिगत होता है। भर्तृहरि ने प्रसाद और माधुर्य गुणों से युक्त वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है। इसलिए प्रत्येक पद्य अपने वास्तविक अर्थ को अभिव्यक्त करता हुआ अत्यन्त स्वाभाविक और प्रासंगिक बन पड़ा है। यथा मूर्ख व्यक्ति के सम्पर्क मात्र को पापदायक बताते हुए कवि कहते हैं-

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजन सम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि।।

नीतिशतक,15

प्रस्तुत श्लोक में लघु-लघु समासों के प्रयोग से शब्दयोजना इतनी सरल बन गई है कि पाठकगण को शीघ्र ही अर्थ समझ आ जाता है। इसके अतिरिक्त कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों को सरलतापूर्वक प्रस्तुत करना भर्तृहरि की अन्यतम विशेषता है। उदाहरण के लिए, विद्या के विविध गुणों की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं,
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्या विहीनः पशुः।।

नीतिशतक,17

नीतिशतक में सर्वाधिक शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य छन्दों यथा अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, आर्या, उपजाति, पृथ्वी, शिखरिणी, वंशस्थ और स्रग्धरा आदि का भी प्रयोग किया गया है। वसन्ततिलका छन्द का भी अनेकशः प्रयोग किया गया है। यथा सत्संगति विषयक निम्न पद्य में वसन्ततिलका छन्द का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है-

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सङ्.गति कथय किं न करोति पुंसाम्।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE COL SOL, University of Delhi

अर्थात् सत्संगति अथवा सज्जन पुरुषों की संगति हर प्रकार से मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध होती है।

अलंकार प्रयोग में कवि ने कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं किया है। नीतिशतक की सूक्तियों में विशेषतः उपमा, उत्प्रेक्षा, निदर्शना, समुच्चय, दृष्टान्त, परिसंख्या, स्वाभावोक्ति अप्रस्तुतप्रशंसा और अर्थान्तरन्यास आदि अलघ्कारों का प्रयोग हुआ है। इसलिए नीतिशतक में अलंकारों का बहुत ही स्वाभाविक प्रयोग दिखाई देता है। यथा

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गणेषु।
प्रकृतिरियं सत्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः।।

नीतिशतक, 37

प्रस्तुत श्लोक का प्रत्येक शब्द कानों में एक प्रकार की झंकार को उत्पन्न करता हुआ प्रतीत होता है।

निष्कर्षतः नीतिशतक के सभी पद्यों में जीवन जीने की कला के सूत्र पिरोए गए हैं, जिनको ग्रहण कर मनुष्य इहलौकिक एवं पारलौकिक सुख की प्राप्ति करता है।

University of Delhi

पाठ्य – प्रश्न

4. निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प का चयन कीजिए।

i. नीतिशतक के रचनाकार है –

क. विष्णुशर्मा ख. भर्तृहरि ग. अमरूक घ. जयदेव

ii. नीतिशतक का वर्ण्य विषय क्या है –

क. राजनीति ख. अर्थनीति ग. आन्वीक्षीकि घ. व्यवहारनीति

iii. भर्तृहरि किस रीति के कवि हैं –

क. पाञ्चाली ख. वैदर्भी ग. गौड़ी घ. लाटी

iv. नीतिशतक काव्य है –

क. मुक्तक काव्य ख. महाकाव्य ग. गद्यकाव्य घ. चम्पूकाव्य

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

6.6 सारांश

प्रस्तुत पाठ में आपने गीतिकाव्य के सम्बन्ध में जाना कि जो किसी एक घटना या खण्ड को लेकर लिखी जाती है तथा जो गेयातमक पद्धति में भावयुक्त विषयों को प्रस्तुत करता है उसे गीतिकाव्य कहते हैं और इसी क्रम में आपने गीतिकाव्य के एक अवान्तर उपभेद मुक्तकाव्य के विषय में जाना जो स्वतंत्र रूप में लिखा जाता है। मुक्तक काव्य के प्रसिद्ध कवि एवं साथ ही एक मूर्धन्य वैयाकरण के रूप में भर्तृहरि के जीवन व्यक्तित्व को समझा और उनकी कृतियों का भी ज्ञान प्राप्त किया। भर्तृहरि की प्रसिद्ध रचना नीतिशतक के वर्ण्यविषय जो प्रायः लोकनीति या व्यवहारनीति के रूप में प्राप्त होती है उसको समझते हुए भर्तृहरि के काव्यशैली से भी आप परिचित हुए जिससे आपको आगे के पाठ को समझने में सुगमता होगी।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

स्फुरण - स्पन्दन

निगद्यते - कहा जाता है

विरक्त - उन्मुख होना

सतत - निरन्तर

परितुष्यति - व्याकुल

रिपु - शत्रु

उद्यम - परिश्रम

अज्ञ - ज्ञानशून्य

रञ्जयति - प्रसन्न करना

मूर्धजाः - केश

धार्यते - धारण करना

दुर्ग - दुर्गम

भ्रान्त - भ्रमण करना

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

6.8 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1. क. सही ख. गलत ग. गलत घ. सही 2. क. दो ख. प्रबन्ध गीतिकाव्य ग. मुक्तक काव्य घ. भामिनीविलास 3. क. 300ई.- 600ई. ख. भर्तृहरि ग. मुक्तक काव्य घ. विष्णुशर्मा	4. क.भर्तृहरि ख. व्यवहारनीति ग. वैदर्भी रीति घ. मुक्तक काव्य

© DDCE, SOL, SOL, University of Delhi

6.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. भर्तृहरि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. नीतिशतक के वर्ण्य-विषय का विवेचन कीजिए।
3. नीतिशतक के काव्य-वैशिष्ट्य का विश्लेषण कीजिए।
4. भर्तृहरि के शतकत्रय पर निबन्ध लिखिए।

6.10 सन्दर्भ-ग्रंथ

- झा, तारिणीश(व्या.), *भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्*, संस्कृत टीका, हिन्दी व अंग्रेजी व्याख्यानुवादसहित, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, 1976.

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- त्रिपाठी, बाबूराम(सं), *भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्*, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1986.
- शास्त्री, शर्मा. विष्णुदत्त(व्या.), *भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्*, विमलचन्द्रिकासंस्कृतटीका व हिन्दी व्याख्यासहित, ज्ञान प्रकाशन, मेरठ. संवत् 2034.

6.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य-सामग्री

- Keith, A.B., *History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.
- Shastri, Gaurinath, *A Concise History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.
- उपाध्याय, बलदेव, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001.
- काणे, पी.वी., शास्त्री, इंद्रचंद्र(अनु.), *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2011.

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© *Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi*

पाठ–7

नीतिशतकम् : मूल पाठ, अनुवाद एवं टिप्पणियां

संरचना

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 मंगलाचरण

7.4 सांसारिक निस्सारता का वर्णन

7.5 मूर्ख पद्धति का वर्णन

7.5.1 सुभाषित वचनों के प्रति उदासीनता

7.5.2 अल्पज्ञानी व्यक्ति की हठधर्मिता

7.5.3 मूर्ख व्यक्ति की दुराग्राहिता

7.5.4 मूर्खजनों का हितसाधक गुण

7.5.5 अल्पज्ञान तथा विशिष्ट ज्ञान में भेद

7.5.6 तुच्छ व्यक्ति की अज्ञानता

7.5.7 विवेकशून्य व्यक्ति का पतन

7.5.8 मूर्खता निवारण हेतु औषधि का अभाव

7.5.9 विद्या की महत्ता

7.5.10 मानवोचित गुणों की महत्ता

7.5.11 मूर्ख व्यक्ति की संगति का निषेध

7.6 सारांश

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

7.8 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

7.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

7.10 संदर्भ ग्रंथ

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

7.1 उद्देश्य

इस पाठ के अधययन के पश्चात विद्यार्थी -

- व्यवहारिक सदुक्तियों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- मूर्ख पद्धति के विविध विषयों को समझ सकेंगे।
- विद्या की विशेषता से परिचित होंगे।
- अल्पज्ञान तथा विशिष्ट ज्ञान के अन्तर को समझ पायेंगे।
- मानवोचित गुणों की विशिष्टता से जान पायेंगे।
- भर्तृहरि के काव्यशैली से परिचित होंगे।

7.2 प्रस्तावना

छात्रो! पूर्व पाठ में आपने भर्तृहरि के जीवन परिचय तथा उनकी रचनाओं का अध्ययन किया तथा नीतिशतक के वर्ण्य-विषय तथा भाषा शैली से परिचित हुए। नीतिशतक भर्तृहरि के शतकत्रय ग्रंथों में से एक प्रमुख ग्रंथ है। नीतिशतक से तात्पर्य है नीति सम्बन्धित 100 श्लोकों का संग्रह। इस ग्रंथ में भर्तृहरि ने सामाजिक विषयों को उपस्थापित करते हुए विभिन्न नीतियों का वर्णन किया है और विद्वान को ही सर्वप्रमुख माना गया है।

प्रस्तुत पाठ में नीतिशतक के प्रारम्भिक 15 पद्यों की सप्रसंग अनुवाद एवं व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है जिसमें मूर्खपद्धति के विविध विषयों को प्रस्तुत करते हुए विद्या की महत्ता बतलाई गई और विद्या से युक्त मानवोचित गुणों की प्रशंसा की गई है। नीतिशतक में भर्तृहरि ने मूर्खों की संगति न करने का भी उपदेश दिया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

7.3 मंगलाचरण

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे।।1।।

अन्वय-दिक्कालाद्यनवच्छिन्नान्तचिन्मात्रमूर्त्तये स्वानुभूत्येकमानाय शान्ताय तेजसे नमः।

प्रसंग-नीतिशतक के इस प्रथम श्लोक में मंगलाचरण का निर्वहन करते हुए आचार्य भर्तृहरि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद-दश दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि) और काल (भूत, वर्तमान, भविष्य) आदि से जो अपरिमित, अनन्त और ज्ञानस्वरूप है, (जो) अपने ही अनुभव से जानने योग्य है, उस शान्त स्वभाव वाले तेजमयी परब्रह्म को नमस्कार है।

व्याख्या-प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि मंगलाचरण के रूप में परमात्मा की स्तुति करते हुए कहते हैं कि जिस परमब्रह्म को देश- कालादि की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता अर्थात् जिसकी सत्ता ब्रह्माण्ड के कण-कण में विद्यमान हैं, जिसका न आदि न अन्त है। वह सम्पूर्ण ज्ञान स्वरूप- चैतन्यरूप है, जिसका बोध केवल आत्मानुभव से ही हो सकता है। ऐसे शान्तमय, सर्वप्रकाशक- ज्योतिस्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है। वस्तुतः काव्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए उसके प्रारम्भ, मध्य और अन्त में मंगलाचरण श्रेयस्कर होता है। मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है-आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक। प्रसिद्ध काव्यशास्त्री आचार्य दण्डी के शब्दों में-**आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्।**
अतः नीतिशतक के इस प्रथम श्लोक में नमस्कारात्मक मंगलाचरण का निर्वहन किया गया है।

- प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है, जिसका लक्षण है-

श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विःचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

- प्रस्तुत श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार है, जिसका लक्षण है- **स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।**

व्याख्यात्मक टिप्पणी

दिक्कालाद्यनवच्छिन्न- दिक्-काल का अर्थ अनुवाद और व्याख्या में स्पष्ट किया जा चुका है। यहाँ 'आदि' पद से अभिप्राय घट-पट, शरीर आदि समस्त उत्पन्न पदार्थ एवं आकाशादि पदार्थों के ग्रहण से है अर्थात् 'ब्रह्म' इन सभी परिमाणों से मापा नहीं जा सकता है। उसकी सत्ता व्यापक वा अपरिमित है। तैत्तिरीयोपनिषद् का यह वाक्य इस विषय में प्रमाण है- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मय्।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

स्वानुभूत्येकमानाय-इस पद का सामान्य अर्थ है- आत्म अनुभव मात्र से प्रत्यक्ष करने योग्य अर्थात् निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार मन, वाणी अथवा चक्षु इन्द्रिय से नहीं हो सकता, वह केवल स्वयं अनुभूति का विषय है। वह स्वतः प्रकाशित है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

सन्धि-	कालाद्यनवच्छिन्न	-	कालादि + अनवच्छिन्न
	अनवच्छिन्नानन्त	-	अनवच्छिन्न + अनन्त
	स्वानुभूत्येकमानाय	-	स्वानुभूति + एकमानाय
	चिन्मात्र	-	चित् + मात्र

कारक-

दिक्काल-'नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च' सूत्र से 'नमः' पद के योग में ब्रह्म के सभी विशेषणों यथा दिक्काल-, स्वानुभूत्येकमानाय, शान्ताय, तेजसे- इन सभी पदों में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

पाठ्य प्रश्न

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।
   i. नीतिशतक में ________मंगलाचरण की गई है।
   ii. परब्रह्म को _________ में बाँधा नहीं जा सकता ।
   iii. नीतिशतक के प्रथम श्लोक में _________मंगलाचरण का निर्वहण किया गया है।
   iv. मंगलाचरण _____________प्रकार का होता है ।

7.4 सांसारिक निस्सारता का वर्णन

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं, स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥2॥

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अन्वय- (अहं) यां सततं चिन्तयामि, सा मयि विरक्ता। सा अपि अन्यं जनम् इच्छति, सः जनः अन्यसक्तः। अस्मत्कृते च काचिद् अन्या परितुष्यति। तां च तं च मदनं च इमां च मां च धिक्।

प्रसंग- इस श्लोक में नीतिकार स्वजीवन में घटित घटना विशेष जिसने उन्हें वैराग्य की ओर प्रेरित किया, का वर्णन करते हुए कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद-(मैं) जिस (स्त्री) का निरन्तर चिन्तन करता हूँ, वह मुझसे विरक्त है, वह भी किसी दूसरे पुरुष को चाहती है। वह पुरुष अन्य (किसी स्त्री) के प्रति आसक्त है और मेरे लिए कोई अन्य स्त्री व्याकुल है। उस स्त्री को, उस पुरुष को, कामदेव को, इस स्त्री को और मुझको धिक्कार है।

व्याख्या-प्रस्तुत श्लोक में 'कामवासना' से उत्पन्न प्रेम की अस्थिरता का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि जिस अपनी प्राणप्रिया पत्नी से मैं अत्यधिक प्रेम करता हूँ, वह मुझसे प्रेम न करके किसी अन्य पुरुष में अनुरक्त है। किन्तु वह पुरुष जिसे मेरी प्रियतमा चाहती है, वह किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करता है और विचित्र हि दैवगतिःय् वह स्त्री स्वयं मेरे प्रति अनुराग रखती है। अतः इन्द्रिय सुख के वशीभूत मानव मन की ऐसी दशा देखकर कवि इसकी घोर निन्दा करते हुए अपनी प्रियतमा, उस पुरुष, कामदेव, अपने प्रति आसक्त स्त्री को और स्वयं को भी धिक्कारते हैं। यह सम्पूर्ण प्रसंग सांसारिक निस्सारता को प्रदर्शित करता है। प्रस्तुत श्लोक विषयक एक किंवदन्ती भी लोकप्रसिद्ध है-

कहा जाता है कि एक बार किसी योगी ब्राह्मण ने भर्तृहरि को एक ऐसा फल उपहार में दिया, जिसे खाने से व्यक्ति चिरयौवन एवं अमरत्व को प्राप्त करता है। भर्तृहरि ने उसे अपनी प्रिय पत्नी को दे दिया। उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष से प्रेम करती थी अतः उसने अपने प्रेमी को वह फल भेंट कर दिया। वह पुरुष किसी वेश्या पर अनुरक्त था, अतः उसने वह फल स्वयं न खाकर उस वेश्या को दे दिया। किन्तु वह वेश्या स्वयं राजा भर्तृहरि पर अत्यन्त मोहित थीं, अतः वह राजा के चिरयौवनत्व और अमरत्व की इच्छा करती हुई उन्हें वह फल उपहारस्वरूप दे देती है। अब राजा उस फल को देखकर आश्चर्यचकित होते हैं और शीघ्र ही उन्हें सारे रहस्य का पता चल जाता है। किन्तु इस समस्त घटनाक्रम से भर्तृहरि इतने विक्षिप्त होते हैं कि उन्हें सांसारिक मोह-माया से वैराग्य हो जाता है, फलतः वे वैराग्ययुक्त होकर वन की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं।

- इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है। इसमें क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण तथा दो गुरु-इन वर्णों की आवृत्ति होती है। जिसका लक्षण है- **उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।**
- इस पद्य में अनुप्रास अलंकार प्रयुक्त हुआ है। जिसका लक्षण है-**वर्णसाम्यमनुप्रासः।**

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

व्याख्यात्मक टिप्पणी

विरक्ता- वि उपसर्ग + खरञ्ज + क्त प्रत्यय + टाप् प्रत्यय।

विरक्ता का अर्थ है-अनुराग, प्रेम से विरत वा रहित स्त्री।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

सन्धि- साप्यन्यमिच्छति = सा + अपि + अन्यम् + इच्छति

जनोऽन्यसक्तः = जनः + अन्यसक्तः

काचिदन्या = काचित् + अन्या

कारक-सततम् = निरन्तरम्। यहाँ 'क्रियाविशेषणे द्वितीया' द्वारा सततम् में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

तां च तं च मदनं च इमां च मां च = यहाँ 'धिगुपर्यादिषु त्रिषु' सूत्र से 'धिक्' शब्द के योग में ताम्, तम्, मदनम्, इमाम् तथा माम् शब्दों में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

पाठ्य प्रश्न

1. सही उत्तर का चयन कीजिए।

i. भर्तृहरि ने प्रेम को सही माना है।

ii. वर्णों की बार- बार आवृत्ति अनुप्रास अलंकार में नहीं होती है।

iii. वसन्ततिलका नामक छन्द में तगण, भगण, जगण तथा दो गुरु वर्णों की आवृत्ति होती है।

iv. यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता....श्लोक में भर्तृहरि ने अपने स्वजीवन की घटना विशेष का वर्णन किया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

7.5 मूर्ख पद्धति का वर्णन

'नीतिशतक' ग्रन्थ में विविध लौकिक विषयों से सम्बद्ध श्लोक हैं, जिन्हें विषय प्रतिपादन की दृष्टि से भिन्न-भिन्न पद्धतियों में बाँटा गया है। यहाँ सर्वप्रथम मूर्ख - पद्धति का वर्णन किया जा रहा है।

7.5.1 सुभाषित वचनों के प्रति उदासीनता

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।

अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्।।3।।

अन्वय-बोद्धारः मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः, अन्ये च अबोधोपहताः, सुभाषितम् अङ्गे जीर्णम्।

प्रसंग-प्रस्तुत पद्य में सुभाषित वचनों के प्रति सामाजिक जनों की उदासीनता पर प्रकाश डालते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद-बुद्धिमान् व्यक्ति ईर्ष्या से युक्त है, राजा आदि ऐश्वर्यसम्पन्न व्यक्ति अहंकार से ग्रस्त हैं तथा शेष अन्य जन अज्ञान से युक्त हैं। अतः सुभाषित अथवा सुन्दरवचन शरीर में ही नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या-कवि ने सामाजिकों की तीन श्रेणियाँ बताई हैं- (1) विद्वान् अर्थात् विषय को जानने-समझने वाले शिक्षित व बुद्धिमान व्यक्ति, (2) धनवान्, (3) अज्ञानी। विद्वान् व्यक्ति परस्पर ईर्ष्या-द्वेष से ग्रस्त होते हैं, अतः वे प्रायः किसी दूसरे व्यक्ति से सुनना अथवा सुने हुए पर आचरण करना अपनी विद्वत्ता का अपमान समझते हैं। दूसरे सामर्थ्यवान् वा धनवान् व्यक्ति धन और बल के अहंकार में डूबे होने के कारण सुभाषित सुनना नहीं चाहते हैं। इसके अतिरिक्त जो अज्ञानी या मूर्ख व्यक्ति हैं, वे अज्ञान के अंधकार से ग्रस्त हैं। ऐसे व्यक्ति चाहकर भी विषयों को समझ नहीं पाते, फलतः अभिव्यक्ति का अवसर न मिलने के कारण समस्त सदुक्तियाँ विद्वान् जनों के हृदय में ही नष्ट हो जाती हैं।

- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है तथा कार्य-कारण का वर्णन होने से काव्यलिङ्ग अलंकार प्रयुक्त हुआ है। जिसका लक्षण है-हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम्।

व्याख्यात्मक टिप्पणी

बोद्धारः- विज्ञातारः अर्थात् विज्ञजन, जो विषयों को जानने व समझने में समर्थ होते हैं। बुद्धिमान्, विद्वान् व्यक्ति इसी श्रेणी में आते हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

व्याकरणात्मक टिप्पणी

सन्धि- बोद्धारोमत्सरग्रस्ताः = बोद्धारः + मत्सरग्रस्ताः

अबोधोपहताः = अबोध + उपहताः

चान्ये = च + अन्ये

जीर्णमङ्गे = जीर्णम् + अङ्गे

7.5.2 अल्पज्ञानी व्यक्ति की हठधर्मिता

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति।।4।।

अन्वय-अज्ञः सुखम् आराध्यः विशेषज्ञः सुखतरम् आराध्यते, ज्ञानलवदुर्विदग्धं तं नरं ब्रह्मा अपि न रञ्जयति।

प्रसंग-इस श्लोक में अल्पज्ञानी व्यक्ति की हठधर्मिता पर प्रकाश डालते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद-अज्ञानी (मूर्ख) व्यक्ति सरलता से समझाने योग्य है। विशेष ज्ञान सम्पन्न (विद्वान्) व्यक्ति को तो और भी सरलता से समझाया जा सकता है। परन्तु थोड़े से ज्ञान वाला व्यक्ति स्वयं को परम् विद्वान् मानने लगे तो ऐसे व्यक्ति को ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकते।

व्याख्या-कवि के अनुसार ज्ञान की दृष्टि से तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं-अज्ञानी, विशेषज्ञ तथा अल्पज्ञानी। इनमें अज्ञानी व्यक्ति को उदाहरण आदि के द्वारा सरल विधि से कोई विषय समझाया जा सकता है। दूसरे विद्वान् या विशेषज्ञ व्यक्ति, जिनकी बुद्धि अनेक विद्याध्ययनों से तीक्ष्ण हो चुकी है, उनको भी सरलतापूर्वक उपदेश दिया जा सकता है। किन्तु अल्पज्ञानी व्यक्ति, जो अहंकारवश स्वयं को विद्वान् मानने लगे तो ऐसे व्यक्ति को समझाना असम्भवप्राय ही है। यदि स्वयं ब्रह्मा भी उसको समझाना चाहें तो यह सर्वथा असम्भव कार्य ही होगा।

- इस श्लोक में आर्या छन्द है, जिसका लक्षण है-

यस्याः पादे प्रथम द्वादशमात्रस्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL, SOL, University of Delhi

- इस श्लोक में अतिश्योक्ति अलंकार है, जिसका लक्षण है-

सिद्धत्वेऽध्यवसायस्य अतिश्योक्तिः निगद्यते।

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

अज्ञ - अज्ञ का अर्थ है-अज्ञानी या नितान्त मूढ़ व्यक्ति। ऐसा व्यक्ति जिसे किसी भी विषय का ज्ञान न हो।

विशेषज्ञः-विशेषं जानातीति विशेषज्ञः अर्थात् विशिष्ट ज्ञान को जानने समझने वाला विद्वान् अथवा बुद्धिमान् व्यक्ति।

ज्ञानलवदुर्विदग्धम्-ज्ञानलवेन दुर्विदग्धम् अर्थात् थोड़े से ज्ञान के प्रभाव से अहंकारयुक्त व्यक्ति अथवा ऐसा व्यक्ति जो लेशमात्र ज्ञान से ही स्वयं को विद्वान् समझने लगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि- **सुखमाराध्यः** = सुखम् + आराध्यः

ब्रह्माऽपि = ब्रह्मा + अपि

कारक-

सुखतरम्- यह शब्द क्रिया के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, अतः क्रियाविशेषण होने के कारण यहाँ द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

7.5.3 मूर्ख व्यक्ति की दुराग्राहिता

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्,

समुद्रमपि सन्तरेत् प्रचलदूर्मिमालाऽकुलम्।

भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्,

न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।5।।

अन्वय-(जनः) मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात् प्रसह्य मणिम् उद्धरेत्, प्रचलद्-ऊर्मि-मालाकुलं समुद्रम् अपि सन्तरेत्, कोपितं भुजङ्गम् अपि पुष्पवद् शिरसि धारयेत्, तु प्रतिनिविष्ट-मूर्खजन-चित्तं न आराधयेत्।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

प्रसंग-इस श्लोक में आचार्य भर्तृहरि मूर्खजन की दुराग्रही चित्तवृत्ति का चित्रण करते हुए कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद-(मनुष्य) मगरमच्छ के मुँह की दाढ़ों के बीच से बलपूर्वक रत्न को बाहर निकाल सकता है, चंचल लहरों के समूह से व्याप्त समुद्र को भी तैरकर पार कर सकता है, क्रोधित हुए साँप को भी फूल की भाँति सिर पर धारण कर सकता है, किन्तु दुराग्रही (हठी) मूर्ख व्यक्ति के मन को प्रसन्न नहीं कर सकता।

व्याख्या- प्रस्तुत श्लोक में मूर्खव्यक्ति की हठधर्मिता का निरूपण करते हुए कवि तीन लौकिक उदाहरणों से अपनी बात को पुष्ट करता है कि मगरमच्छ के नुकीले दाँतों के बीच में फँसी हुई मणि को निकाल पाना किसी भी व्यक्ति के लिए असम्भवप्रायः ही है, किन्तु दृढ़निश्चयी व्यक्ति यदि ऐसा करने का साहस करे तो उसे अवश्य ही सफलता मिलती है। ठीक इसी प्रकार यदि कोई बलशाली व्यक्ति ठान ले, तो न केवल वह ऊपर उठती हुई चंचल लहरों से विक्षुब्ध हुए समुद्र को भी पार कर सकता है, अपितु क्रोधित हुए साँप को भी फूलमाला की भाँति अपने सिर पर धारण कर सकता है। किन्तु हठी एवं मूर्ख व्यक्ति के मन को अनुकूल बनाना अथवा उसे समझाना सर्वथा असम्भव ही है। भाव यह है कि मनुष्य कठिन-से-कठिन कार्य करने का साहस जुटा लेता है, सफलता भी प्राप्त करता है, परन्तु मूर्ख व्यक्ति के हठ या दुराग्रह को नहीं हटा पाता।

भासरचित 'दूतवाक्यम्' की निम्न उक्ति इस विषय में प्रमाण है, जहाँ श्रीकृष्ण के अनेक प्रकार से समझाने पर भी मूर्ख दुर्योधन अपने युद्ध करने के हठ को नहीं छोड़ता है और अन्त में विनाश को प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण का कथन-

दातुमर्हसि मद्वाक्याद् राज्यार्धं धृतराष्ट्रज।

अन्यथा सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः।। दूतवाक्यम्- 34

प्रसिद्ध यूरोपीयन विचारक लॉवेल (स्वूमसस) का भी मत है कि- मूर्ख तथा मृतकजन अपनी राय नहीं बदलते – “The Foolish and the dead alone never change their opinion”

- इस श्लोक में पृथ्वी छन्द है, जिसका लक्षण है-**जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।**

  अर्थात् उक्त छन्द में जगण, सगण, जगण, सगण, यगण और लघु-गुरु के क्रम से 17 वर्ण होते हैं।

- इस श्लोक में अतिश्योक्ति अलंकार प्रयुक्त हुआ है, जिसका लक्षण है-

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिश्योक्तिर्निगद्यते।

लभेत् सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्,

पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।

कदाचिदपि पर्यञ्छशविषाणमासादयेत्,

न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।6।।

अन्वय-(मनुष्यः) यत्नतः पीडयन् सिकतासु अपि तैलं लभेत्, पिपासार्दितः च (सन्) मृगतृष्णिकासु सलिलं पिबेत्, कदाचित् पर्यटन् शशविषाणम् अपि आसादयेत्, तु प्रतिनिविष्ट-मूर्खजन-चित्तं न आराधयेत्।

प्रसंग-इस श्लोक में पुनः मूर्खव्यक्ति की दुराग्रहता (हठधर्मिता) का निरूपण करते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद-मनुष्य परिश्रमपूर्वक दबाने, रगड़ने से बालू (रेत) में से भी तेल प्राप्त कर सकता है, प्यास से व्याकुल होने पर मृगमरीचिका में भी पानी पी सकता है तथा निरन्तर इधर-उधर घूमता हुआ कभी खरगोश के सींग भी प्राप्त कर सकता है। किन्तु दुराग्रही मूर्ख व्यक्ति के मन को कभी प्रसन्न नहीं कर सकता है।

व्याख्या-असम्भव वस्तुओं में सम्भाव्यता की कल्पना करते हुए कवि कहते हैं कि यद्यपि 'बालू से तेल निकालना' यह लोकोक्ति प्रायः किसी कठिनतम अथवा असम्भव कार्य के लिए प्रयोग की जाती है। 'मरुमरीचिकाओं से प्यास बुझाना' भी केवल आँखों का धोखा है, वास्तविक नहीं। इसी प्रकार 'शशविषाण' अर्थात् 'खरगोश का सींग' असम्भव के लिए कहा जाता है, क्योंकि खरगोश के सिर पर सींग नहीं होता। सुरेश्वरवार्तिक में कहा भी गया है- **मृगतृष्णाम्भसि स्नातः खपुष्पकृतशेखरः। एष बन्ध्यासुतो याति शश शृङ्गधनुर्धरः।।** तथापि मनुष्य अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक दबाने पर संयोगवश रेत के कणों से तेल की एक-दो बूँदें प्राप्त कर सकता है। ठीक इसी प्रकार प्रयत्न करते-करते भले ही कोई व्यक्ति उपर्युक्त अन्य असम्भव वस्तुओं को प्राप्त करने में सफल हो जाए। किन्तु किसी मूर्ख एवं हठी व्यक्ति के मन को वश में करना सर्वथा असम्भव ही है। रावण तथा दुर्योधन की हठधर्मिता तो जगत् प्रसिद्ध है। दुराग्रही रावण पर मन्दोदरी, विभीषण आदि के समझाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, अपितु वह राम से युद्ध की बात पर अड़ा रहा। अतः मूर्खजन के विषय में यह उचित ही कहा गया है-

© DDCE COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

फलहिं-फलहिं न वेंत, यदपि सुध बरसहिं जलद।

मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरिञ्च सम।।

- इस श्लोक में पृथ्वी छन्द तथा अतिश्योक्ति अलंकार है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

मृगतृष्णा- गर्मी के दिनों में मरुस्थल (बालू रेत) में दूर से सूर्य के प्रकाश के कारण जल की आभा-सी दिखाई देती है अर्थात् बालू का रेत चमकने के कारण जल जैसा दिखाई पड़ता है, जिससे हिरण आदि जंगली पशु उस चमक को पानी समझकर प्यास से व्याकुल हुए दौड़कर उधर जाते हैं, किन्तु उन्हें वहाँ जल नहीं मिलता। इसी प्राकृतिक भ्रांति को मृगतृष्णा कहते हैं।

शशविषाणम्- 'खरगोश का सींग'। वस्तुतः यह एक लोकोक्ति है, जो पूर्णतया असम्भव कार्य के लिए लोक-व्यवहार में प्रयुक्त होता है। चूँकि खरगोश के सींग कभी न देखे गए और न ही सुने गए हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

सन्धि-

तैलमपि	=	तैलम् + अपि
पिबेच्च	=	पिबेत् + च
पिपासार्दितः	=	पिपासा + आर्दितः
कदाचिदपि	=	कदाचित् + अपि
पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत्	=	पर्यटन् + शशविषाणम् + आसादयेत्
चित्तमाराधयेत्	=	चित्तम् + आराधयेत्

कारक-

शशविषाणम्- कर्मणि द्वितीया इस सूत्र के द्वारा कर्म बोधक पद शशविषाणम्, सलिलम् में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रौद्धुं समुज्जृम्भते,

छेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते।

माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते,

नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।।7।।

अन्वय-यः (जनः) सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः खलान्, सतां पथि नेतुं वाञ्छति, असौ बालमृणालतन्तुभिः व्यालं रोद्धुं समुज्जृम्भते। शिरीषकुसुम-प्रान्तेन वज्रमणिं छेत्तुं सन्नह्यते, मधुबिन्दुना क्षाराम्बुधेः माधुर्यं रचयितुम् ईहते।

प्रसंग-मधुर उपदेश द्वारा दुर्जनों को सन्मार्ग पर लाना असम्भव ही है- इस भाव को प्रकट करते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद-जो व्यक्ति अमृत बरसाने वाले मधुर वचनों द्वारा मूर्खजनों को सन्मार्ग पर लाना चाहता है, वह (मानो) कोमल कमलनाल के तन्तुओं से मदमत्त (पागल) हाथी को बाँधने की चेष्टा कर रहा है अथवा वह शिरीष (हार- शृंगार में प्रयोग होने वाला पुष्प) नामक पुष्प की नोक से हीरे को काटना चाहता है या (वह मानो) शहद की एक बूँद से खारे समुद्र को मीठा करना चाहता है।

व्याख्या-किसी मूर्ख या दुष्ट व्यक्ति को मधुर वाणी युक्त उपदेश द्वारा यदि कोई व्यक्ति सज्जन बताना चाहता है तो वह मानो ठीक उसी प्रकार असम्भव एवं उपहासपूर्ण कार्य कर रहा है, जैसे- कोमल कमल के रेशों (धागो) से किसी मदमस्त हाथी को बाँधना। तात्पर्य यह है कि मदमस्त हाथी को तो लोहे की मजबूत जंजीरों से ही बाँधा जा सकता है, उसे कमलनाल के धागों से बाँधने का प्रयास मूर्खतापूर्ण ही है। इसी प्रकार हीरे जैसी कठोर मणि को बड़े-बड़े हथोड़ों से भी तोड़ना सम्भव नहीं होता, तो फिर उसे शिरीष जैसे कोमल फूल के अग्रभाग से काटने का प्रयास भी हास्यास्पद एवं असम्भव ही है। ठीक ऐसे ही, यदि कोई व्यक्ति शहद की एक बूँद से अपार जलराशि वाले समुद्र के खारे पानी को मीठा बनाने की चेष्टा करता है, तो वह सम्भव ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि भले ही सुभाषित (सुन्दर वचन) मनुष्य के मन, मस्तिष्क, प्राण को पुनर्जीवन देते हो, किन्तु मूर्ख व्यक्ति के मन को सुभाषितों से बदला नहीं जा सकता। वैसे भी कहा जाता है कि विद्या सदैव सत्पात्र में ही फलीभूत होती है, कुपात्र पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा भी इसी भाव को प्रतिपादित किया गया है-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

हालाहलं खलु पिपासति कौतुकेन कालानलं परिचुचुम्बिपति प्रकामम्।
व्यालाधिपं च यतते परिरब्धुमद्धा यो दुर्जनं वशयितुं कुरुते मनीषाम्।।

भामिनीविलास, पृ./93

- इस श्लोक में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है, इसमें क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण तथा गुरु वर्णों की आवृत्ति होती है। जिसका लक्षण है-'**सूर्याश्वैर्मसजास्तता सगुरवः शार्दूलविक्रीड़ितम्।**'
- इस श्लोक में असम्भव सम्बन्ध में उपमा की परिकल्पना की गई है, अतः निदर्शना अलंकार है। जिसका लक्षण है- '**अभवत् वस्तुसम्बन्धः उपमा परिकल्पकः।**'

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

व्याल- 'व्यालो दुष्टगजे सर्पे इति मेदिनी कोशः' अर्थात् मेदिनी कोश में 'व्याल' के अर्थ-दुष्ट हाथी और सर्प बताए गए हैं। अन्य शब्दकोशों में भी व्याल शब्द के अर्थ- सिंह, सर्प, बाघ, लकड़बग्घा, राजा, ठग, मदमत्त हाथी, आठ की संख्या आदि बताए गए हैं। प्रस्तुत श्लोक में 'व्याल' का अर्थ मदमत्त हाथी ग्रहण करना उचित होगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि-

बालमृणालतन्तुभिरसौ = बालमृणालतन्तुभिः + असौ

क्षाराम्बुधेरीहते = क्षाराम्बुधेः + ईहते

खलान्पथि = खलान् + पथि

कारक-

सुधास्यन्दिभिः सुक्तैः-'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से यहाँ करण अर्थ में प्रयुक्त दोनों शब्दों में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

क्षाराम्बुधेः - यद्यपि यहाँ अधिकरण अर्थ में सप्तमी विभकित का प्रयोग होना चाहिए था, तथापि 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र द्वारा यहाँ षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

7.5.4 मूर्खजनों का हितसाधक गुण

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्र, विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।

विशेषतः सर्वविदां समाजे, विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।।8।।

अन्वय- विधात्र अपण्डितानाम् अज्ञतायाः छादनम् मौनं विनिर्मितं (यत्) स्वायत्तम् एकान्तगुणं सर्वविदां समाजे विशेषतः विभूषणं (भवति) ।

प्रसंग- 'मूर्खजनों के लिए मौन रहना हर प्रकार से हितसाधक है', यह भाव व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद- विधाता ने मूर्खजनों की मूढ़ता (अज्ञानता) को ढकने वाला साधन मौन नामक गुण को बनाया है, जो स्वयं के अधीन रहने वाला, अत्यन्त हितकारी तथा विद्वानों की सभा में विशेष रूप से शोभनीय होता है (मूर्खों के लिए)।

व्याख्या- कवि के कहने का भाव यह है कि मूर्ख व्यक्ति के पास अपनी मूर्खता को छिपाने का सबसे बड़ा साधन मौन रहना/चुप रहना है। मौन रहना स्वयं अज्ञानी व्यक्ति के वश में है, इसके लिए उसे किसी अन्य की सहायता की जरूरत नहीं होती है। यद्यपि 'मौन रहना' सज्जन-दुर्जन सभी के लिए लाभकारी होता है, क्योंकि मितभाषी व्यक्ति परनिन्दा और मिथ्याभाषण (झूठ बोलना) जैसे कई दुर्गुणों से बच जाता है। तथापि बुद्धिहीन व्यक्ति के लिए मौन रहना विशेष रूप से हितकारी होता है या यूँ कहें कि मूर्खों का विशिष्ट आभूषण मौन ही है, चूँकि ऐसा व्यक्ति विद्वानों की सभा में जब तक नहीं बोलता है, तब तक उसकी मूर्खता छिपी रहती है, और तो और मौन को उसकी विनम्रता ही समझा जाता है। इस प्रसंग में प्रसिद्ध नीतिकार चाणक्य का कथन उल्लेखनीय है-

मूर्खोऽपि शोभते तावत् सभायां वस्त्रवेष्टितः।

तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किञ्चिन्न भाषते।।

- इस श्लोक में उपजाति छन्द है, जिसमें कुछ चरण इन्द्रवज्रा छन्द के होते हैं तथा कुछ उपेन्द्रवज्रा छन्द के होते हैं। लक्षण इस प्रकार हैं-**अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।**

  इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।
- इस श्लोक में निदर्शना अलंकार है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

विधाता-यहाँ विधातृ शब्द 'ब्रह्मा' के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो सम्पूर्ण सृष्टि के उत्पादक, निर्माता, रचयिता अथवा स्रष्टा कहे जाते हैं।

एकान्तगुणम्-एकान्तगुण से तात्पर्य ऐसा गुण जिसका परिणाम निरपेक्ष, निश्चित, गुणकारी और एकमात्र हो अर्थात् ऐसा गुण जो सम्पूर्ण रूप से मनुष्यमात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि-	**स्वायत्तमेकान्तगुणम्**	=	स्वायत्तम् + एकान्तगुणम्
	छादनमज्ञतायाः	=	छादनम् + अज्ञतायाः
	मौनमपण्डितानाम्	=	मौनम् + अपण्डितानाम्

कारक-

विधात्रा- 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र द्वारा कर्त्ता अनुक्त (अनभिहित) होने से कर्त्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

अज्ञतायाः- यहाँ अज्ञता शब्द में कृत् प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है। अतः 'कर्तृकर्मणोः कृति षष्ठी' इस सूत्र द्वारा 'अज्ञता' शब्द के 'कर्म अर्थ' में प्रयुक्त होने पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

छादनम्-यहाँ 'छादनम्' शब्द का कर्मत्त्व ल्युट् प्रत्यय द्वारा प्रकट किए जाने के कारण 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' इस सूत्र से प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

समाजे-'अधिकरणे सप्तमी' इस सूत्र द्वारा अधिकरण अर्थ में 'समाज' शब्द में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

7.5.5 अल्पज्ञान तथा विशिष्ट ज्ञान में भेद

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं,

तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

यदा किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं,

तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।9।।

अन्यव- यदा अहं किञ्चित् ज्ञः, द्विपः इव मदान्धः समभवं, तदा 'सर्वज्ञः अस्मि' इति मम मनः अवलिप्तम् अभवत्। यदा (मया) बुधजनसकाशात् किञ्चित किञ्चित् अवगतम्, तदा 'मूर्खः अस्मि' इति मे मदः ज्वर इव व्यपगतः।

प्रसंग- 'अल्पज्ञान अहंकार को उत्पन्न करता है तथा विशिष्ट ज्ञान अहंकार को विनष्ट करता है'- इसी आशय को व्यक्त करते हुए भर्तृहरि कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद- जब मैं अल्पज्ञानी था तो हाथी के समान घमण्ड के दर्प में मग्न था। तब 'मैं सर्वज्ञ हूँ', ऐसा सोचकर मेरा मन अहंकारयुक्त हो गया था। (किन्तु) जब मैंने विद्वानों के सान्निध्य से थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त किया, तब 'मैं मूर्ख हूँ' - यह जानकर मेरा अहंकार ज्वर की भाँति नष्ट हो गया।

व्याख्या-'अधजल गगरी छलकत जाए'-इस कहावत को चरितार्थ करते हुए कवि कहता है कि अल्पज्ञान व्यक्ति के लिए अतिशय हानिकारक होता है और उससे भी अधिक हानिकारक अल्पज्ञता होने पर भी सर्वज्ञता के अहंकार को प्रकट करना होता है। अल्पज्ञ व्यक्ति मदमत्त हाथी की भाँति घमण्ड में चूर रहता है। ऐसे पुरुष की स्थिति 'कूप-मण्डूक' जैसी होती है। जिस प्रकार से कुएँ का मेंढक जब तक कुएँ के सीमित क्षेत्र में रहता है, वह उसी को सम्पूर्ण संसार मानता है। परन्तु जब वह सरोवर की विशालता से परिचित होता है, तब उसे अपनी अज्ञानता का पता चलता है।

इसी प्रकार अल्पज्ञानी व्यक्ति जब तक विद्वानों से दूर रहता है, तब तक वह स्वयं को सर्वज्ञ मानता है, किन्तु जैसे ही वह विद्वानों की संगति में बैठता है, वह विविध ज्ञान प्राप्त करता है। फलतः उसे अपनी वास्तविकता का भान होता है और धीरे-धीरे उसका अहंकार नष्ट होने लगता है। विद्या (ज्ञान) व्यक्ति को विनम्र बनाती है- विद्या ददाति विनयम् । वस्तुतः अल्पज्ञता यदि अहंकार का कारण बनती है तो दूसरी ओर विद्वानों की संगति विद्वत्ता का कारण बनती है।

- इस पद्य में शिखरिणी छन्द है, जिसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण और लघु-गुरु वर्णों का क्रम रहता है। लक्षण है-'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।'

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(*i*) इस पद्य में 'अहंकार' की उपमा 'हाथी के मद' से दी गई है, अतः उपमा अलंकार है, जिसका लक्षण है-**'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्येक्योपमाद्वयोः।'**

(*ii*) इस पद्य में काव्यलिंग अलंकार भी प्रयुक्त हुआ है, जिसका लक्षण है-**'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम्।'**

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

किञ्चिज्ज्ञः- किञ्चित् जानाति इति किञ्चिज्ज्ञः अर्थात् अल्पज्ञान वाला व्यक्ति (अल्पज्ञानी)। अल्पज्ञानी व्यक्ति घमण्ड से भरा होता है और स्वयं को विद्वान् समझता है। वस्तुतः वह अहंकार के कारण विवेकशून्य हो चुका होता है। कहा भी है- **"अल्पविद्यो महागर्वीय।"**

सर्वज्ञः- सर्वं जानाति इति सर्वज्ञः अर्थात् विद्वान्/बुद्धिमान् व्यक्ति, जो व्याकरणादि शास्त्रें को भली-भाँति जानने वाला हो, साथ ही कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के ज्ञान से युक्त हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि-	**किञ्चज्ज्ञोऽहम्**	=	किञ्चित् + ज्ञः + अहम्
	सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तम्	=	सर्वज्ञः + अस्मि + इति + अभवत् + अवलिप्तम्
	बुधजनसकाशादवगतम्	=	बुधजनसकाशात् + अवगतम्
	मूर्खोऽस्मीति	=	मूर्खः + अस्मि + इति
	ज्वर इव	=	ज्वरः + इव
	मदो मे	=	मदः + मे

7.5.6 तुच्छ व्यक्ति की अज्ञानता

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं,
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्खरास्थि निरामिषम्।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शघङ्कते,
नहि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्।।10।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

अन्वय- श्वा कृमिकुलचितं, लालाक्लिन्नं, विगन्धि, जुगुप्सितं, निरामिषम्, खरास्थि निरुपमरसम् प्रीत्या खादन्, पार्श्वस्थम् सुरपतिम् अपि विलोक्य न शघङ्कते, क्षुद्रः जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् न गणयति।

प्रसंग- 'स्वार्थी व्यक्ति स्वयं द्वारा स्वीकृत वस्तु की तुच्छता को नहीं विचारता है'- इस विषय को लौकिक उदाहरण द्वारा समझाते हुए कवि कहता है-

हिन्दी अनुवाद- कुत्ता कीड़ों से भरी हुई, लार से भीगी हुई, दुर्गन्धयुक्त, घृणा करने योग्य, मांसरहित गर्दभ (गधा) की हड्डी को अत्यन्त स्वादपूर्वक खाता हुआ अपने पास में खड़े हुए देवताओं के स्वामी इन्द्र को देखकर भी लज्जा/शंका नहीं करता। वास्तव में तुच्छ प्राणी (नीच व्यक्ति) अपने द्वारा स्वीकृत वस्तु की तुच्छता को नहीं गिनता है।

व्याख्या- कवि का आशय है कि तुच्छ (नीच, क्षुद्र) व्यक्ति अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए घृणित से घृणित कार्य कर सकता है और तो और उसे घृणित कार्य करते हुए किसी प्रकार की शंका अथवा लज्जा भी महसूस नहीं होती। वह अपने द्वारा स्वीकृत तुच्छ कार्य में इतना मग्न रहता है कि उस समय अपने सामने उपस्थित किसी श्रेष्ठ व्यक्ति या वस्तु पर भी ध्यान नहीं देता। मानव के इस स्वभाव को कुत्ते के उदाहरण द्वारा प्रस्तुत श्लोक में चित्रित किया है- जैसे कुत्ता कीड़ों से भरी हुई, लारयुक्त, दुर्गन्धयुक्त, घृणित, माँसरहित गधे की हड्डी को बड़े चाव से खाता है। उस समय यदि उसके समक्ष देवाधिदेव इन्द्र भी आ जाए तो वह हड्डी को नहीं छोड़ सकता, और तो और इस तुच्छ कृत्य पर तनिक भी लज्जा अनुभव नहीं करता। इसी प्रकार नीच व्यक्ति भी अपने द्वारा किए जा रहे घृणास्पद कार्य के प्रति न तो लज्जा अनुभव करता है और न ही उस घृणित कृत्य का त्याग करता है। वस्तुतः वह अपने स्वार्थ में इतना लीन होता है कि कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय में भी विवेकशून्य हो जाता है।

- इस पद्य में हरिणी छन्द है, जिसमें नगण, सगण, मगण, रगण, सगण तथा लघु-गुरु वर्णों का क्रम रहता है। लक्षण है- 'नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैः हरिणी मता।'

(i) इस पद्य में सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार प्रयुक्त हुआ है, जिसका लक्षण है

सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि
कार्यश्च कारणेनेदं कार्येण च समर्थनात्।

(*ii*) इस पद्य में अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार भी है। चूँकि अप्रस्तुत कुत्ते के दृष्टान्त द्वारा प्रस्तुत नीच व्यक्ति का वर्णन किया गया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

खरास्थि- इस श्लोक में 'खरास्थि' के स्थान पर 'नरास्थि' पाठभेद भी प्राप्त होता है, जिसका अर्थ होगा- मनुष्य की हड्डी। परन्तु अर्थ औचित्य की दृष्टि से यहाँ 'नरास्थि' के स्थान पर 'खरास्थि' पाठ अधिक उचित प्रतीत होता है, क्योंकि 'मनुष्य की हड्डी' इस प्रकार का अर्थ प्रायः सहज नहीं होता।

न हि गणयति क्षुद्रो जन्तु परिग्रहफल्गुताम्- प्रस्तुत श्लोक का यह अन्तिम चरण नीतिकथन अथवा सूक्ति है। जिसका सामान्य अर्थ है- क्षुद्र जीव अपनी ग्रहीत वस्तु की तुच्छता को नहीं गिनता है। यहाँ क्षुद्रजीव का प्रतीकात्मक अर्थ नीच व्यक्ति अथवा स्वार्थी व्यक्ति है। निम्न (तुच्छ) मानसिकता वाला व्यक्ति प्रायः स्वार्थी होता है और वह अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए निम्न से निम्नतर स्तर तक जाने में कभी कोई संकोच/लज्जा अनुभव नहीं करता।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि-	**खादन्खरास्थि**	=	खादन् + खरास्थि
	सुरपतिमपि	=	सुरपतिम् + अपि
	क्षुद्रो जन्तुः	=	क्षुद्रः + जन्तुः

कारक-

खरास्थि-यह खादन् क्रिया का कर्म है, अतः 'कर्मणि द्वितीया' इस नियम की सहायता से 'खरास्थि' पद में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

प्रीत्या- 'प्रीत्या' शब्द कारण अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण 'हेतौ' सूत्र से यहाँ तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

7. 5.7 विवेकशून्य व्यक्ति का पतन

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं,
महीध्रादुतुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।।11।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

अन्यव-इयं गङ्गा स्वर्गात् शार्वं शिरः, पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरम्, उत्तुङ्गात् महीध्रात् अवनिम्, अवनेः च अपि जलधिम्, (एवम्) अधः अधः स्तोकं पदम् उपगता अथवा विवेकभ्रष्टानां विनिपातः शतमुखः भवति।

प्रसंग- 'विवेकशून्य व्यक्ति का अनेक प्रकार से पतन होता है'-इसी आशय को प्रकट करते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद- यह गंगा नदी स्वर्गलोक से शिव के मस्तक पर, शिवजी के मस्तक से पर्वत पर, ऊँचे पर्वत से पृथ्वी पर और पृथ्वी से वह समुद्र में जा गिरी। इस प्रकार नीचे-नीचे क्रमशः स्थान प्राप्त किया अथवा विवेक से भ्रष्ट हुए मनुष्यों का पतन सैकड़ों प्रकार से होता है।

व्याख्या- कवि के कथन का आशय है कि सर्वोच्च स्थान से पतित हो जाना ही विवेकहीनता है। विवेक अथवा ज्ञान से हीन व्यक्ति धीरे-धीरे अधःपतन को प्राप्त करता हुआ अन्त में विनष्ट हो जाता है। इसी नीतिकथन को गंगा-अवतरण की पौराणिक कथा के माध्यम से स्पष्ट किया है- कहा जाता है कि राजा सगर के अश्वमेधीय घोड़े को ढूँढ़ते हुए उसके 60 हजार पुत्र कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचे। उनके द्वारा निरपराधी कपिल मुनि पर दोषारोपण करने पर, मुनि ने उन सभी को क्रोध से भस्म कर डाला। उसके बाद राजा सगर की चौथी पीढ़ी में उत्पन्न राजा भगीरथ अपने पूर्वजों की आत्मा की शान्ति के लिए कठोर तपस्या करके गंगा को पृथ्वी पर लाए। किन्तु यह सर्वविदित है कि गंगा ने सर्वप्रथम अभिमानवश विष्णु पद से लुप्त होकर शिवजी के मस्तक पर, शिव के मस्तक से हिमालय के शिखर पर, वहाँ से पृथ्वीतल पर तथा पुनः पृथ्वीतल से सागर में पहुँचकर अपना अस्तित्व ही खो दिया।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य को विवेक से काम करना चाहिए, चूँकि विवेक शक्ति से ही मनुष्य नीति-अनीति, शुभ-अशुभ, अच्छे-बुरे की पहचान कर पाता है, अन्यथा विवेकशून्य व्यक्ति गंगा के समान ही निरन्तर नीचे-ही-नीचे पतन की ओर जाते हुए अस्तित्वहीन हो जाता है।

- इस पद्य में शिखरिणी छन्द तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

शार्वम्- शार्वम् का सामान्य अर्थ है-भगवान शिव के। यहाँ प्रसंगानुकूल यह ध्यातव्य है कि सूर्यवंशी राजा भगीरथ ने जब अपने पूर्वजों की मोक्षप्राप्ति हेतु शिवजी की आराधना कर गंगावतरण की प्रार्थना की तो गंगा ने बड़े गर्व से भगीरथ को कहा कि मैं स्वर्ग से पृथ्वी पर तभी आ सकती हूँ, यदि कोई मेरे तीव्र प्रवाह को सहन करने में समर्थ हो। तब शिवजी ने गंगा की प्रवाह शक्ति को सहन करना स्वीकार किया था। तदनन्तर

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

गंगा उत्तरोत्तर नीचे की ओर जाते हुए अन्ततः सागर में जा गिरी थी। इस सम्पूर्ण कथा का उल्लेख रामायण में उल्लिखित है। (रामायण पृ = 35-44)

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि-	**महीध्रादुत्तुङ्गादवनिम्**	=	महीध्रात् + उत्तुङ्गात् + अवनिम्
	अवनेश्चापि	=	अवनेः + च + अपि
	अधोऽधो	=	अधः + अधः
	गङ्गेयम्	=	गङ्गा + इयम्
	पदमुपगता	=	पदम् + उपगता
	स्तोकमथवा	=	स्तोकम् + अथवा

कारक-

महीध्रात्- 'अपादाने पञ्चमी' इस सूत्र के अनुसार अपादान अर्थ में महीध्रः पद में पञ्चमी विभक्ति प्रयुक्त हुई है।

जलधिम्- 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र के अनुसार कर्म अर्थ में प्रयुक्त जलधि पद में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

7.5.8 मूर्खता निवारण हेतु औषधि का अभाव

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो,

नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।

व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं,

सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।।12।।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अन्वय- हुतभुक् जलेन वारयितुं शक्यते, सूर्यातपः छत्रेण समदः नागेन्द्रः निशिताघ्कुशेन, गोगर्दभौ दण्डेन, व्याधिः भेषजसजसङ्ग्रहै च विषम विविधैः मन्त्रप्रयोगैः (वारयितम् शक्यते) सर्वस्य शास्त्रविहितम् औषधम् अस्ति (किन्तु) मूर्खस्य औषधम् न अस्ति।

प्रसंग- 'मूर्खता के निवारण के लिए शास्त्रें में भी कोई औषधि प्राप्त नहीं होती है'µ- इस आशय को स्पष्ट करते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद- आग को जल द्वारा शान्त किया जा सकता है, सूर्य की धूप को छाते से, मदमस्त हाथी को तीक्ष्ण अंकुश से, बैल और गधे को डण्डे से, रोग को विविध औषधियों से, विष को अनेक प्रकार के मन्त्र-प्रयोग द्वारा दूर किया जा सकता है। इस प्रकार सभी के लिए शास्त्रें में औषधि बताई गई है, किन्तु मूर्ख की कोई औषधि नहीं है।

व्याख्या- मूर्खता को एक असाध्य रोग के रूप में चित्रित करते हुए कवि भर्तृहरि ने अनेक उदाहरणों द्वारा उक्त कथन को पुष्ट किया है। जैसे- आग कितनी भी तीव्र फैली हो, उसे पानी से बुझाया जा सकता है, सूर्य की तेज धूप को छाते से कम किया जा सकता है, मदमत्त हाथी को भी नुकीले दण्डादि से वश में कर सकते हैं। इसी प्रकार बैल व गधे को डण्डे से, किसी रोग विशेष को औषधि से तथा मन्त्र प्रयोग द्वारा सर्प-बिच्छु आदि के विष का निवारण किया जा सकता है, परन्तु किसी मूर्ख व्यक्ति का नहीं। तात्पर्य यह है कि संसार की प्रायः सभी दुःखदायी परिस्थितियों का निदान शास्त्रों में विहित है, किन्तु मूर्ख व्यक्ति कब, किस परिस्थिति में क्या आचरण करेगा- यह न तो जाना जा सकता है और न ही शास्त्रों में इसका कोई उपाय बताया गया है। सुविचारकों के शब्दों में-विधाता जो सम्पूर्ण सृष्टि को रचने वाला है, वह भी मूर्ख की मूर्खता दूर करने में अक्षम है।

इत्यं तद् भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपाया चिन्ता कृता।
मन्ये दुर्जन चित्तवृत्ति हरणे धातापि भगनोद्यमः।।

- इस श्लोक में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

नागेन्द्रः -नागेन्द्र शब्द का सामान्य अर्थ है- गजराज अथवा गजश्रेष्ठ। 'नागेन्द्र' इस समस्तपद का दो प्रकार से विग्रह किया जा सकता है-(i) नागानाम् इन्द्रः अर्थात् हाथियों का राजा, (ii) नागेषु इन्द्रः अर्थात् सभी हाथियों में जो श्रेष्ठ है, वह नागेन्द्र कहलाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि- **शक्यो वारयितुम्** = शक्यः + वारयितुम्

नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन = नागेन्द्रः + निशिताङ्कुशेन

समदो दण्डेन = समदः + दण्डेन

व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च = व्याधिः + भैषजसघ्ग्रहैः + च

विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषम् = विविधैः + मन्त्रप्रयोगैः + विषम्

सर्वस्यौषधमस्ति = सर्वस्य + औषधम् + अस्ति

नास्त्यौषधम् = न + अस्ति + औषधम्

कारक-

जलेन- 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र के अनुसार करण अर्थ में प्रयुक्त जल, दण्ड, निशिताघड्ङ्शμइन सभी पदों में तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

7. 5.9 विद्या की महत्ता

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषणाहीनः।

तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।13।।

अन्वय- साहित्य-संगीत-कलाविहीनः (नरः) पुच्छ विषाणहीनः साक्षात् पशुः (एव अस्ति) तृणम् न खादन् अपि (सः) जीवमानः तत् पशूनाम् परमं भागधेयम् (अस्ति)।

प्रसंग- साहित्य, संगीत तथा विविध कलाओं के ज्ञान की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कवि कहते हैं-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

हिन्दी अनुवाद- साहित्य, संगीत और कला से रहित (मनुष्य) पूँछ व सींग से रहित साक्षात् पशु ही है। जो वह घास के तिनके न खाता हुआ भी जीवित रहता है, वह पशुओं का परम सौभाग्य है।

व्याख्या-कवि का अभिप्राय है कि मनुष्य और पशु में 'बुद्धि' का ही अन्तर होता है। मनुष्य बुद्धि के बल पर साहित्य, संगीत तथा कलाएँ सीख सकता है। यदि मानव जाति में उत्पन्न होकर भी जिस व्यक्ति ने काव्यादि, साहित्य का अध्ययन नहीं किया, गीत-नृत्य-वाद्यादि विषयक संगीत का ज्ञान प्राप्त नहीं किया अथवा शास्त्रें में विहित 64 प्रकार की कलाओं को भी नहीं सीखा तो वह व्यक्ति मनुष्य कहने का अधिकारी नहीं है। वस्तुतः वह सींग, पूँछ, चार पैरों से रहित साक्षात् पशु ही है। चूँकि अन्य सभी क्रियाएँ यथा भोजन, शयन, भय, क्रोध, मनोरंजन आदि तो पशु भी समान रूप से करते ही हैं। केवल इतना सौभाग्य पशुओं का है कि वह नर पशु घास नहीं खाता, यदि वह गुण भी उसमें हो तो पशु बेचारे भूखे ही मर जाएँ। तात्पर्य यह है कि बुद्धियुक्त होते हुए भी मनुष्य को पशु के समान व्यवहार नहीं करना चाहिए, अपितु साहित्यादि का अधिक-से-अधिक ज्ञान प्रापत करना चाहिए।

- इस श्लोक में उपजाति छन्द प्रयुक्त हुआ है (श्लोक 8 में लक्षण दिया गया है)।
- इस श्लोक में रूपक अलंकार है, लक्षण है- **'रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे।'**

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

संगीत- संगीत का अर्थ है- समूह में गाया जाने वाला मधुर गान। संगीत विशेष रूप से ऐसा गायन होता है जो नृत्य तथा विभिन्न सितार आदि वाद्ययन्त्रों के साथ गाया जाता है।

कला- कला का सामान्य अर्थ है- किसी वस्तु का छोटा-सा टुकड़ा, चन्द्रमा की एक रेखा (जो 16 अंश होता है) अथवा समय का एक परिमाण। किन्तु इस श्लोक में कला से तात्पर्य शिल्पकला, ललितकला आदि प्रायोगिक कलाओं से है। प्राचीन शास्त्रों में संगीत, नृत्य आदि कुल 64 कलाएँ बताई गई हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि-	**खादन्नपि**	=	खादन् + अपि
	जीवमानस्तद्भागधेयम्	=	जीवमानः + तत् + भागधेयम्

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कारक-

तृणम्- 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' इस सूत्र के अनुसार कृत् प्रत्ययान्त पद 'खादन्' के योग से यहाँ 'तृणम्' शब्द में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

7.5.10 मानवोचित गुणों की महत्ता

येषां न विद्या न तपो न दानं,

ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।

ते मर्त्यलोके भुवि भारतभूता,

मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।14।।

अन्वय-येषां न विद्या न तपो, न दानम्, (न) ज्ञानम्, न शीलम्, न गुणो, न धर्मः ते मर्त्यलोके भुवि भारतभुताः (सन्ति) मनुष्यरूपेण मृगाः चरन्ति।

प्रसंग- सांसारिक जीवन हेतु मानवोचित गुणों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आचार्य भर्तृहरि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद- जिन मनुष्यों के पास न विद्या है, न तप, न ज्ञान, न सौम्य स्वभाव, न गुण और न ही धर्म है। वे इस मृत्युलोक में पृथ्वी पर भारस्वरूप हैं तथा मनुष्य के रूप में पशु ही घूम रहे हैं।

व्याख्या- ज्ञानहीन मनुष्यों की पशुओं से तुलना करते हुए कवि कहता है कि इस संसार में जिसने व्याकरण आदि शास्त्रों का कभी अध्ययन नहीं किया, व्रत-उपवास विषयक तपस्या नहीं की, किसी प्राणी को कभी दान नहीं दिया, ज्ञानार्जन नहीं किया, जीवन में कभी सौम्य स्वभाव या सदाचार का आचरण नहीं किया, दया-दाक्षिण्यादि गुणों को कभी धारण नहीं किया और न ही कभी धर्म का पालन किया तो ऐसे व्यक्ति का मनुष्य जीवन निरर्थक है। वस्तुतः ऐसा व्यक्ति मनुष्यरूप में होने पर भी आचरण के कारण पशु ही कहलाएगा। अतः मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिए ऊपर बताए गए गुणें का पालन करना चाहिए।

- इस श्लोक के प्रथम तीन चरणों में इन्द्रवज्रा छन्द (लक्षण-**स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगो गः**) तथा अन्तिम चरण में उपेन्द्रवज्रा छन्द (लक्षण-**उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गः**) है। अतः दोनों के मिश्रण के कारण यहाँ उपजाति छन्द प्रयुक्त हुआ है।
- इस श्लोक में रूपक अलंकार है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

विद्या- विदन्ति अनया इति विद्या-इसके द्वारा शास्त्रों को जाना जाता है। विभिन्न विचारकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से विद्या के भेद किए हैं। विद्या के परा और अपरा दो भेद हैं, आन्वीक्षकी-त्रयी- वार्ता-दण्डनीति ये चार भेद भी विद्या के ही बताए गए हैं। विद्या के वेद-वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) इतिहास-पुराण-न्याय-मीमांसा आदि चौदह भेद भी कहे गए हैं।

तप- तपस्या, पुण्यकर्म, कथादि धार्मिक अनुष्ठान, शरीर तथा मन को पवित्र करने वाले विभिन्न व्रत, उपवासादि, स्वयं के वर्ण तथा आश्रम विषयक शास्त्रविदित कर्मानुष्ठान करना-ये सभी तप कहलाते हैं।

ज्ञान- जानना, बोध होना, आत्मसाक्षात्कार, सभी विषयों को ग्रहण करने वाली मन की वृत्ति, शास्त्र के अनुशीलन से आत्मतत्त्व का अवबोधन, सत्-असत्, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, नीति-अनीति विवेक, लोक-परलोक सम्बन्धी तथ्यों का बोध आदि ये सभी ज्ञान के प्रतिरूप हैं।

गुण- सत्य, अहिंसा, दया, उदारता, विनम्रता, धैर्य, मधुर वाणी आदि।

धर्म- जिस कार्य को करने से इहलोक में उन्नति तथा परलोक में मोक्ष सिद्धि हो, उचित-अनुचित का बोध कराने वाले वेदविहित कर्त्तव्यबोध, ईश्वरभक्ति, सत्कर्म, कर्त्तव्यपालना आदि।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि-	**तपो न**	=	तपः + न
	गुणो न	=	गुणः + न
	मृगाश्चरन्ति	=	मृगाः + चरन्ति

कारक-

दानम्- ल्युट् होने पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग है।

भुवि- 'सप्तम्यधिकरणे' सूत्र के अनुसार अधिकरण अर्थ में प्रयुक्त 'भुवि' पद में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

7.5.11 मूर्ख व्यक्ति की संगति का निषेध

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।

न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि।।15।।

अन्वय- वनचरैः सह पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वरम् (किन्तु) मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेषु अपि न (वरम् अस्ति)।

प्रसंग- मूर्ख व्यक्ति की संगति से दूर रहने का उपदेश देते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद- वन में रहने वाले लोगों के साथ पहाड़ी दुर्गम स्थानों में भ्रमण करना अच्छा है, किन्तु मूर्ख लोगों की संगति में तो स्वयं इन्द्र के महलों में भ्रमण करना भी श्रेयस्कर नहीं।

व्याख्या- मूर्ख व्यक्ति की संगति की अपेक्षा अनेक कष्टों से पूर्ण वनवासियों की संगति अधिक श्रेष्ठ है। मूर्ख के साथ रहना मानो आपत्ति को निमन्त्रण देना है। चूँकि कब वह मूर्खतापूर्ण कथन या आचरण से किसी अनिष्ट का कारण बन जाए, यह कहा नहीं जा सकता। इसलिए कभी भी मूर्ख व्यक्ति की संगति में नहीं रहना चाहिए, चाहे उसके साथ रहने से कितनी भी सुख-सुविधाएँ अथवा स्वर्ग लोक का सुख ही क्यों न मिलता हो।

- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है, लक्षण है-

श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं, सर्वत्र लघु पञ्चमम्।

द्विचतुष्पादयोः ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

- इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार प्रयुक्त हुआ है (श्लोक 9 में लक्षण दिया गया है)।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि- **सुरेन्द्रभवनेष्वपि**-सुरेन्द्रभवनेषु + अपि।

कारक- **पर्वतदुर्गेषु-सप्तम्यधिकरणे** सूत्र के अनुसार अधिकरण अर्थ में पर्वतदुर्गेषु सुरेन्द्रभवनेषु पदों में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

वनचरैः- सहयुक्तेऽप्रधाने सूत्र के अनुसार सह के योग में वनचरैः पद में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य - प्रश्न

1. सही विकल्प का चयन कीजिए।

i. मूर्खजनों की अज्ञानता को ढकने वाला साधन कौन सा माना गया है –

क. वाचालता ख. विद्वत्ता ग. दुराग्राहिता घ. मौन

ii. अल्पज्ञान उत्पन्न करता है –

क. विनम्रता ख. वाग्मिता ग. गुण घ. अहंकार

iii. साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः उक्ति किस ग्रंथ से ली गई है –

क. नीतिशतक ख. भामिनिविलास ग. श्रृंगारशतक घ. वैराग्यशतक

iv. 'ते मर्त्यलोक भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति' में कौन सा अलंकार है –

क. अनुप्रास ख. उत्प्रेक्षा ग. रुपक घ. उपमा

7.6 सारांश

प्रस्तुत पाठ में नीतिशतक के प्रथम श्लोक में ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए परब्रह्म को नमस्कार कर मंगलाचरण किया गया है। तत्पश्चात् भर्तृहरि ने संसार की निस्सारता का वर्णन करते हुए प्रेम को व्यर्थ माना है। अज्ञानी और विशेषज्ञान सम्पन्न व्यक्ति को समझाना सरल परन्तु अल्प ज्ञान से युक्त व्यक्ति को समझाना अत्यन्त दुष्कर बताया गया है। भर्तृहरि अपने ग्रंथ में लौकिक उदाहरणों के माध्यम से मूर्ख व्यक्ति की दुराग्राहिता को बताते हैं कि मनुष्य बालू से तेल निकाल सकता है, मृगमरीचिका से पानी पी सकता है परन्तु मूर्ख व्यक्ति के मन को कभी प्रसन्न नहीं कर सकता। मूर्ख व्यक्ति की अज्ञानता को ढ़कने के लिए मौन नामक गुणसाधन को हितकारी बताया गया है और साथ ही यह भी बताया गया है कि विवेकशून्य व्यक्ति का पतन अनेक प्रकार से होता है जैसे गंगा नदी स्वर्गलोक से शिवजी के मस्तक पर, शिवजी के मस्तक से पर्वत पर, ऊँचे पर्वत से पृथिवी पर और पृथिवी से समुद्र में जाकर मिलती है। अतः विद्यासम्पन्न मनुष्य ही

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मनुष्य है अन्यथा विद्याभाव में वह पशु समान ही होता है । इस प्रकार भर्तृहरि ने मूर्खों की अनेक प्रकार से निन्दा करते हुए मूर्खों के आचरण को अनुचित बताया है और उसका निषेध किया है।

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

स्फुरण – स्पन्दन

परितुष्यति – व्याकुल होना

सततं – निरन्तर

उद्यम – परिश्रम

अज्ञ – ज्ञान रहित

मूर्धजाः – केश

भ्रान्त – भ्रमण करना

दुर्ग – दुर्गम, कठिन

विरक्त – उन्मुख होना

7.8 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1. i. तेजमय परब्रह्म ii. दिक्काल में iii. नमस्कारात्मक iv. तीन v. ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति हेतु 2. i. गलत ii. गलत iii. सही iv. सही v. सही	3. i. मौन ii. अहंकार iii. नीतिशतक iv. रुपक

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

7.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

2. निम्नलिखित श्लोक की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणाहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तदद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।13।।

7.10 सन्दर्भ-ग्रंथ

- झा, तारिणीश(व्या.), *भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्*, संस्कृत टीका, हिन्दी व अंग्रेजी व्याख्यानुवादसहित, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, 1976.
- त्रिपाठी, बाबूराम(सं), *भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्*, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1986.
- शास्त्री, शर्मा. विष्णुदत्त(व्या.), *भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्*, विमलचन्द्रिकासंस्कृतटीका व हिन्दी व्याख्यासहित, ज्ञान प्रकाशन, मेरठ. संवत् 2034.

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य-सामग्री

- Keith, A.B., *History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.
- Shastri, Gaurinath, *A Concise History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.
- उपाध्याय, बलदेव, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001.
- काणे, पी.वी., शास्त्री, इंद्रचंद्र(अनु.), *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2011.

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ–8

नीतिशतकम् (16-21 श्लोक): मूल पाठ, अनुवाद एवं टिप्पणियाँ

संरचना

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 विद्वत्पद्धति का वर्णन
    8.3.1 विद्वज्जनों की पूजनीयता
    8.3.2 विद्याधन की प्रधानता
    8.3.3 विद्वानों का अपमान निषेध
    8.3.4 विद्याबल की महत्ता
    8.3.5 मनुष्य का सर्वोपरि आभूषण
    8.3.6 विद्या सर्वोपरि आभूषण
8.4 सारांश
8.5 पारिभाषिक शब्दावली
8.6 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर
8.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न
8.8 संदर्भ ग्रंथ
8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

8.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी-

- विद्वत पद्धति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- विद्वज्जनों की प्रधानता को समझ पायेंगे।
- विद्याधन की प्रधानता का अवबोध होगा।

*© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi*

- विद्याबल की महत्ता से परिचित होंगे।
- मनुष्य के सर्वोत्तम आभूषण को जान सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

पूर्व पाठ में आपने नीतिशतक के प्रारम्भिक श्लोकों में मंगलाचरण के साथ-साथ मूर्खपद्धति के विविध विषयों जैसे अल्पज्ञ एवं विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न व्यक्ति में भेद को जाना, साथ ही ये भी देखा की विद्या की महत्ता समाजिक जनों के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण है, इस बात को प्रमाणित करने के लिए अनेक लौकिक उदाहरणों को प्रस्तुत किया गया ।

छात्रो! प्रस्तुत पाठ में आप नीतिशतकम् में वर्णित विद्वत्पद्धति के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करेंगे। विद्वत्पद्धति के अन्तर्गत भर्तृहरि ने राजाओं तथा अन्य सामाजिक जनों को विद्वज्जनों के सम्मान एवं संरक्षण की बात कही है तथा साथ ही विद्वानों का कभी भी अपमान न करने की सलाह दी है।वाणी तथा विद्या को मनुष्य के समस्त भौतिक आभूषणों तथा धनों में सर्वोत्तम माना गया है जो उन्हें संस्कारित एवं सुशोभित करते हैं तथा विद्या की प्रधानता को बताते हुए कहा गया है कि विद्या वह गुप्त धन है जो कभी नष्ट नहीं होता है इसके लिए अनेक व्यवहारिक एवं लौकिक दृष्टान्तों को प्रस्तुत किया गया है।

8.3 विद्वत्पद्धति का वर्णन

प्रस्तुत भाग में नीतिशतकम् में वर्णित 'विद्वत्-पद्धति' का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

8.3.1 विद्वज्जनों की पूजनीयता

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा,
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयस्त्वर्थं विनाऽपीश्वराः,
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः।।16।।

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अन्वय-यस्य प्रभोः विषये शास्त्रेपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमाः विख्याताः कवयः निर्धनाः वसन्ति तत् वसुधाधिपस्य जाड्यं, हि कवयः तु अर्थ विना अपि ईश्वराः (भवन्ति), (ते) कुपरीक्षकाः कुत्स्याः स्यु यैः मणयः अर्घतः पातिता।

प्रसंग- 'विद्वज्जन, प्रत्येक समय एवं परिस्थिति में राजाओं द्वारा पूजनीय होते हैं'-इसी भाव को प्रकट करते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद-जिस राजा के राज्य में (व्याकरणादि) शास्त्रों द्वारा शुद्ध-परिष्कृत वाणी वाले, शिष्यों को विविध शास्त्रों का उपदेश देने वाले, सुप्रसिद्ध कवि यदि निर्धन होकर रहते हैं, तो इससे उस राजा की ही मूर्खता सिद्ध होती है (जिसके राज्य में कवि रहते हैं)। चूँकि विद्वान् कवि तो धन के बिना भी समर्थ एवं पूज्य होते हैं, निन्दनीय वे रत्न-पारखी हैं, जिन्होंने रत्नों का उचित मूल्य नहीं आंका।

व्याख्या-विद्वज्जन/कविजन प्रायः राजा के आश्रय में ही सुशोभित होते हैं, अतः वे राजाओं द्वारा सम्मान प्रदान किए जाने के पात्र हैं। यथा-फ्सदाश्रयेण शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः।य् अर्थात् विद्वज्जन, स्त्रियाँ तथा लताएँ श्रेष्ठ आश्रय में ही सुशोभित होते हैं। कवियों की वाणी विविध शास्त्रें विशेषतः व्याकरण से शुद्ध, संस्कारित होती है तथा वे अपने शिष्यों को भी शास्त्रज्ञान देकर उन्हें योग्य बनाते हैं, जिससे वे सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के कविजन यदि राजा के राज्य में निर्धनतापूर्वक रहते हैं, तो वह राजा ही निन्दा का पात्र बनता है विद्वान् कवि नहीं। चूँकि कविजन तो धनहीन होते हुए भी अपने श्रेष्ठ कवित्त्व के बल पर सर्वत्र सम्मानीय एवं प्रशंसनीय होते हैं। कहा भी गया है-विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम् अर्थात् विद्या का धन सबसे बड़ा धन है।

महाकवि भर्तृहरि ने रत्न और जौहरी के दृष्टान्त द्वारा उक्त कथन को पुष्ट किया है कि जैसे कोई जौहरी बहुमूल्य रत्न को पत्थर बताकर उसका उचित मूल्य नहीं देता तो इसमें रत्न का दोष नहीं है, अपितु रत्नपारखी का दोष है। यही स्थिति राजा और कविजन की है। कवि विल्हण ने राजाओं को सावधान करते हुए एक स्थान पर कहा भी है-

लङ्कापतेः सघङ्ख्चितं यशो यद् यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।
सः सर्वं एकादिकेवः प्रभावो न कोपनीयाः कवयःक्षितीन्दैः।।

विक्रमांकदेवचरितम्15

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अर्थात् वे (राजा) कवियों को कभी दुःखी या अप्रसन्न न करें, क्योंकि कवि रावणादि के यश को धूमिल करता है, तो वह रामादि राजा को यशस्वी भी बनाता है। राजा भोज एवं विक्रमादित्य इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

- प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि- कवयो वसन्ति = कवयः + वसन्ति

प्रभोर्निर्धनाः = प्रभोः + निर्धनाः

तज्जाड्यम् = तत् + जाड्यम्

कवयस्त्वर्थम्= कवयः + तु + अर्थम्

विनापीश्वराः = विना + अपि + ईश्वराः

कुपरीक्षका हि = कुपरीक्षकाः + हि

मणयो यैरर्घतः = मणयः + यैः + अर्घतः

कारक-

अर्थं विना-'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्' इस सूत्र द्वारा विना के योग में अर्थम् पद में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है। पृथक् आदि शब्दों के योग में विकल्प से तृतीया तथा पञ्चमी विभक्ति भी होती है।

8.3.2 विद्याधन की प्रधानता

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा-
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं-
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः! कस्तैः सह स्पर्धते।।17।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अन्वय- यत् हर्तुः गोचरं न याति, सर्वदा किमपि शं पुष्णाति, अर्थिभ्यः अनिशं प्रतिपद्यमानम् अपि परां वृद्धिं प्राप्नोति, कल्पान्तेषु अपि निधनं न प्रयाति (तत्), विद्याख्यम् अन्तर्धनं येषां (अस्ति) तान् प्रति हे नृपाः! मानम् उज्झत, तैः सह कः स्पर्धते।

प्रसंग- विद्याधन सबसे श्रेष्ठ धन है, अतः राजाओं को विद्वानों के प्रति आदरभाव रखने का उपदेश देते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद-जो (विद्या रूपी धन) चुराने वाले को दृष्टिगोचर नहीं होता, जो सदा अकथनीय (अव्यक्त) कल्याण को पुष्ट करता है, जो माँगने वाले (शिष्यों, जिज्ञासुओं) को निरन्तर दिए जाने पर भी अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त करता है, कल्प का अन्त होने पर भी जो विनष्ट नहीं होता है, वह विद्या नामक आन्तरिक गुप्त धन जिनके पास है, उनके प्रति हे राजाओं! अभिमान को त्याग दो। उनके साथ भला कौन स्पर्धा कर सकता है अर्थात् कोई नहीं।

व्याख्या-विद्याधन के माहात्म्य को स्पष्ट करते हुए कवि कहते हैं कि जो राजा अथवा धनी व्यक्ति अपने धन-वैभव के कारण विद्यावान् जनों के सामने अहंकार करते हैं और विद्वज्जनों को तुच्छ समझते हैं, ऐसे लोगों को विद्वानों के प्रति अभिमान त्याग कर उचित मान-सम्मान करना चाहिए, क्योंकि विद्वानों के पास ऐसा विद्या रूपी गुप्त धन है-'विद्या गुप्तं धनं स्मृतम्', जिसका स्थूल स्वरूप न होने से आँखों से प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता। अतः कोई चोर भी इस धन को चुरा नहीं सकता। दूसरा, ग्रहण करने वाले का यह विद्या हमेशा कल्याण करती है, विविध कठिनाइयों से बचने का उपाय बताती है। विद्या ही एकमात्र ऐसा गुप्त धन है, जो व्यय करने पर अर्थात् जिज्ञासु शिष्यों को वितरित करने पर न तो समाप्त होता है, न ही क्षीण होता है, अपितु निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता है। कहा भी गया है-**'दाने नैव क्षयं याति विद्याधनं महाधनम्।'** कल्पान्त में भी इस धन के विनाश की कोई सम्भावना नहीं होती। तात्पर्य यह है कि विद्या धन हर प्रकार से मनुष्य मात्र हेतु उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। अतः विद्या रूपी धन से अभिषिक्त जनों के साथ भला कौन स्पर्धा कर सकता है अर्थात् कोई भी नहीं, ऐसे जन तो प्रत्येक काल और परिस्थिति में सर्वत्र पूजनीय होते हैं, विद्यारूपी महा धन की श्रेष्ठता अन्यत्र भी प्रतिपादित की गई है-

न चौरहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एवं नित्यं विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम्।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- इस श्लोक में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है।
- इस श्लोक में उपमेय (विद्या रूपीधन) की उपमान (सांसारिक धन-वैभव) से उत्कृष्टता प्रतिपादित करने से व्यतिरेक अलंकार है। लक्षण है-उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

कल्पः-कल्प शबद समय के परिमाप का द्योतक है। ब्रह्मा का एक अहोरात्र (दिन-रात) का मान दो कल्प होता है, ऐसा सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ में उल्लिखित है। एक कल्प का मान 4,32,00,00,000 सौर वर्ष का होता है, जो कि 14 मन्वन्तर तथा 15 सत्ययुग के समान सन्ध्याओं को जोड़ने पर आता है। यथा सूर्यसिद्धान्तानुसार (1/19)-

ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।
कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशस्मृताः।।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि- हर्तुर्याति = हर्तुः + याति

ह्यर्थिभ्यः = हि + अर्थिभ्यः

कल्पान्तेष्वपि = कल्पान्तेषु + अपि

विद्याख्यमन्तर्धनम् = विद्या + आख्यम् + अन्तर्धनम्

मानमुज्झत = मानम् + उज्झत

कस्तैः = कः + तैः

कारक- तान् प्रति- 'अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेषु च दृश्यते।' इस वार्तिक के अनुसार 'प्रति' के योग में 'तान्' पद में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है।

तैः सह- 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इस सूत्र के अनुसार 'सह' के योग में 'तैः' पद में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

8.3.3 विद्वानों का अपमान निषेध

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् माऽवमंस्था-
स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां
न भवति विसतन्तुर्वारणं वारणानाम्।।18।।

अन्वय-(हे नृप!) अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मा अवमंस्थाः, लघु तृणम् इव लक्ष्मीः तान् नैव संरुणद्धि, विसतन्तुः अभिनव-मदलेखा-श्यामगण्ड स्थलानां वारणानम् वारणम् न भवति।

प्रसंग-'तत्त्वज्ञानी विद्वानों को तृणवत् लक्ष्मी वश में नहीं कर सकती'- इसी आशय को प्रतिपादित करते हुए कवि कहते हैं-इसी आशय को प्रतिपादित करते हुए कवि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद- परमार्थ तत्त्व को जानने वाले (ब्रह्म को आत्मसात करने वाले) विद्वानों का अपमान मत करो। तुच्छ तिनके के समान लक्ष्मी उनको रोक नहीं सकती। (जैसे) कमलनाल का सूत्र नवीन मद की धारा से गण्डस्थल वाले हाथियों का बन्धन नहीं होता है।

व्याख्या-जिस प्रकार मदस्रावी हाथी को मृणाल वा कमलपुष्प के कोमल धागे से रोका नहीं जा सकता। अन्य शब्दों में, सामान्य हाथी इतना बलवान् होता है कि उसे बाँधने के लिए मोटी लोहे की जंजीरों की आवश्यकता पड़ती है और यदि विषय युवा हाथी का हो तो मदमत्त होने के कारण उसका बल दुगुना बढ़ जाता है। ऐसे हाथी को विसतन्तुओं से रोकना असम्भव एवं हास्यास्पद ही है। उसी प्रकार राजाओं को पुनः उद्बोधित करते हुए कवि कहता है कि जिन विद्वानों ने परमतत्त्व (ब्रह्म) का साक्षात्कार कर लिया है, वे सभी मानवीय दुर्बलताओं काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि से विरक्त हो चुके होते हैं। लक्ष्मी जैसी तुच्छ वस्तु भी उन्हें आकृष्ट नहीं कर पाती है, ऐसे विद्वज्जनों को राजाओं, धनी जनों से भी कोई अपेक्षा नहीं होती। ऐसे परमज्ञानी पण्डितों को धन और ऐश्वर्य का लालच देकर अपने वश में करना असम्भव एवं मूर्खतापूर्ण कार्य है। इसीलिए विद्वानों का कभी अपमान नहीं करना चाहिए।

- इस श्लोक में मालिनी छन्द है, जहाँ प्रत्येक चरण में नगण, नगण, मगण, यगण, यगण इन 15 वर्णों का क्रम रहता है। लक्षण है-**'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः'**।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(*i*) इस श्लोक में 'वारणं वारणानाम्' पदों में वर्णों की आवृत्ति है, अतः 'वर्णसाम्यमनुप्रासः' से अनुप्रास अलंकार है।

(*ii*) 'तृणमिव' पद में साधारण धर्म की समानता होने से 'साधर्म्यमुपमाभेदे' से उपमा अलंकार भी है।

(*iii*) लक्ष्मी द्वारा विद्यावान् जनों को वश में नहीं किया जा सकता, इसी नीतिकथन को मदस्रावी हाथी के उदाहरण द्वारा पुष्ट किया गया है। अतः दृष्टान्त अलंकार भी है। लक्षण है-'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुतः प्रतिबिम्बनम्'।

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

अभिनव-मदलेखा-उत्कृष्ट श्रेणी का हाथी जब युवावस्था में होता है तो उसकी कनपटी अथवा गण्डस्थल से एक सुगन्धित गाढ़ा चिपचिपा-सा द्रव्य पदार्थ बहता रहता है, जिसके कारण इसके गण्डस्थल श्याम (काले) वर्ण के हो जाते हैं। इसी को अभिनव-मदलेखा अथवा गजमद कहा जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि- माऽवमंस्थास्तृणमिव = मा + अवमंस्थाः + तृणम् + इव

लघुलक्ष्मीर्नैव = लघुलक्ष्मीः + न + एव

विसतन्तुर्वारणम् = विसतन्तुः + वारणम्

8.3.4 विद्याबल की महत्ता

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव,
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुगधजलभेदविधौ प्रसिद्धां,
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः।।19।।

अन्वय-नितरां कुपितः विधाता हंसस्य अम्भोजिनी वन-निवास-विलासम् एव हन्ति, तु असौ अस्य दुग्ध-जलभेदविधौ प्रसिद्धां वैदग्ध्यं कीर्तिम् अपहर्तुम् समर्थः न (अस्ति)।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

प्रसंग-'विद्वानों की विद्वत्ता का हरण ब्रह्मा भी नहीं कर सकते'-इसी कथन को हंस के दृष्टान्त द्वारा समझाते हुए आचार्य भर्तृहरि कहते हैं-

हिन्दी अनुवाद-अत्यन्त क्रोधित हुआ विधाता हंस के कमल वन में निवास करने के आनन्द को ही नष्ट कर सकता है, किन्तु वह उसके दूध से जल को अलग करने सम्बन्धी लोकप्रसिद्ध विवेक की निपुणता विषयक यश को छीनने में समर्थ नहीं है।

व्याख्या-ब्रह्मा का आसन कमल होता है तथा ब्रह्मा का वाहन हंस माना गया है। अब ब्रह्मा यदि किसी कारणवश अपने वाहन हंस पर अत्यधिक कुपित हो जाए तो अधिक-से-अधिक वह कमलों को नष्ट करके हंस के कमल-वन विहार को, उसके क्रीड़ा-आनन्द को कम कर सकता है अथवा उसे कमल-वन में जाने से रोक सकता हैμइतना ही सामर्थ्य है। किन्तु ब्रह्मा हंस की नीरक्षीरविवेकिनी शक्ति को नष्ट करने में समर्थ नहीं है, अर्थात् हंस में जो दूध और पानी को पृथक्-पृथक् करने का जो अपूर्व गुण है, जो विवेकशीलता, निपुणता है, वह जगत् प्रसिद्ध है। वह उससे कोई नहीं छीन सकता, स्वयं ब्रह्मा भी नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कोई अहंकारी एवं ऐश्वर्यशाली राजा किसी विद्वान् पर क्रोधित होकर भले ही उसकी आजीविका बन्द कर दे अथवा उसे अपने राज्य से ही निकाल दे, किन्तु वह राजा उस विद्वान् व्यक्ति की विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता, उसके सच्चे ज्ञान का अपहरण नहीं कर सकते। अपने विद्या के बल पर वे सर्वत्र सम्मान और यश प्राप्त करते हैं। अतः राजाओं का ऐसे विद्वज्जनों का विरोध करना उचित नहीं है।

- इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है, जिसके प्रत्येक चरण में तगण, भगण, जगण, जगण तथा अन्त में दो गुरु-इन वर्णों का क्रम रहता है। लक्षण है-**'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।'**
- इस श्लोक में अप्रस्तुत (विद्वान् की विद्वान् की विद्वत्ता/कवि की कवित्त्व कौशल) का कथन प्रस्तुत (हंस का दृष्टान्त) के द्वारा किया गया है, अतः अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। लक्षण है-

क्वचित् विशेषसामान्यात् सामान्यं वा विशेषतः।
कार्यान्निमित्तं कार्यञ्च हेतोरथ समात्समम्।।

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

दुग्धजलभेदविधौ-हंस नीरक्षीरविवेकी कहलाता है, अर्थात् हंस पानी मिले दूध में से मात्र दूध को ग्रहण कर लेता है तथा पानी छोड़ देता है। हंस में दूध और जल को पृथक्-पृथक् करने की यद् अद्भुत और प्रसिद्ध

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

कुशलता है, जो वस्तुतः हंस का सहज, स्वाभाविक और जन्मजात गुण है। 'भामिनीविलास' में हंस विषयक उक्त गुण के विषय में उल्लेख है-'नीरक्षीर-विवेक हंसालस्य त्वमेव तनुषे चेत्।'

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि- विलामेव = विलासम् + एव

त्वस्य = तु + अस्य

8.3.5 मनुष्य का सर्वोपरि आभूषण

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।20।।

अन्वय-पुरुषं न केयूराणि, न चन्द्रोज्ज्वलाः हाराः, न स्नानं, न विलेपनं, न कुसुमं, न अलंकृताः मूर्धजाः भूषयन्ति, एका वाणी पुरुषं समलंकरोति याः संस्कृताः धार्यते, खलु (अखिल) भूषणानि क्षीयन्ते, वाक् भूषणं सततं भूषणं (भवति)।

प्रसंग-'वाणी रूपी आभूषण व्यक्ति का संस्कारित एवं स्थायी आभूषण है-इस अर्थ को प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैंμ

हिन्दी अनुवाद-मनुष्य को न तो बाजूबन्द, न चन्द्रमा के समान उज्वल हार, न स्नान, न हल्दी-चन्दनादि का लेप, न फूलमाला धारण करना और न ही पुष्प आदि से सजे हुए बाल सुशोभित करते हैं। मनुष्य को केवल एकमात्र वाणी ही सुशोभित करती है, जो व्याकरणादि शास्त्रें से परिष्कृत हो, संस्कारित हो। निश्चय ही अन्य सारे आभूषण तो नष्ट हो जाते हैं। किन्तु वाणी रूपी आभूषण सदा सुरक्षित रहने वाला आभूषण है।

व्याख्या-संस्कृतनिष्ठ वाणी का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए आचार्य भर्तृहरि कहते हैं कि मनुष्य की शोभा बाजूबन्द आदि गहने धारण करने से नहीं बढ़ती, न ही चन्द्रमा की भाँति चमकने वाले पवित्र एवं बहुमूल्य हारादि को पहनने से सुन्दरता बढ़ती है। इसी प्रकार से स्नानादि करके हल्दी-चन्दन आदि का उबटन लगाना, इत्र-आदि सुगन्धित पदार्थ, शरीर पर फूलमालाएँ धारण करना, केश-सज्जा इत्यादि सभी बाहरी साधन

© DDCE COL SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मनुष्यमात्र की शोभा के प्रतीक नहीं बन सकते हैं। मनुष्य की शोभा केवल एकमात्र सुसंस्कृत वाणी से बढ़ती है। व्याकरणनिष्ठ शुद्ध वाणी ही विद्वानों की सभा में व्यक्ति के सम्मान का कारण बनती है। वस्तुतः सोने, चाँदी, बहुमूल्य रत्नों तथा फूलों से बने गहने क्षणिक एवं नाशवान् हैं। जो मनुष्य के स्थायी सौन्दर्य नहीं बन पाते। किन्तु शास्त्रज्ञान से परिष्कृत वाणी एक ऐसा अलंकरण है, जो न कभी क्षीण होता है और न ही नष्ट होता है, अपितु स्थायी रूप से शोभायमान होता है।

- इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।
- इस श्लोक में उपमान (हार आदि आभूषण) की अपेक्षा उपमेय (परिष्कृत वाणी) को श्रेष्ठ बताया गया है, अतः व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग है। जिसका लक्षण है-**उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।**

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

संस्कृता वाणी:-ऐसी वाणी जो व्याकरण आदि शास्त्रें की दृष्टि से शुद्ध, शिष्ट एवं परिमार्जित हो। परिष्कार के कारण ही वाणी में मधुरता, प्रियता और शालीनता आती है। स्वयं महाकवि कालिदास का कथन है- **'संस्कारवत्येव गिरा मनीषीतया स पूतश्च विभूषितश्च।'** कुमारसम्भव 1/28

केयूराणि-केयूर एक आभूषण का नाम है, जिसे बाजूबन्द कहा जाता है। प्राचीन समय में भुजाओं अथवा बाजुओं के ऊपरी हिस्से के अलंकरण हेतु यह गहना पहना जाता था। अमरकोशकार ने भी यही अर्थ बताया है-**'केयूरमङ्गदंतुल्ये' इत्यमरः।**

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि-

हारा न = हाराः + न

चन्द्रोज्ज्वलाः = चन्द्र + उज्ज्वलाः

नालंकृता = न + अलंकृताः

वाण्येका = वाणी + एका

वाग्भूषणम् = वाक् + भूषणम्

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

8.3.6 विद्या सर्वोपरि आभूषण

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनों विदेशगमने विद्या परं दैवतं,
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः।।21।।

अन्वय-विद्या नाम नरस्य अधिकं रूपं (अस्ति), प्रच्छन्न गुप्तं धनम् (अस्ति), विद्या भोगकरी यश, सुखकरी (भवति), विद्या गुरुणं गुरुः (अस्ति) विदेशगमने विद्या बन्धुजनः (अस्ति), विद्या परं दैवतं, राजसु विद्या पूज्यते न हि धनम्। (अतः) विद्याविहीनः (नरः) पशुः (अस्ति)।

प्रसंग-विद्या की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए भर्तृहरि कवि कहते हैं कि-

हिन्दी अनुवाद-विद्या वस्तुतः मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है, विद्या छिपा हुआ सुरक्षित धन है। विद्या सांसारिक भोग-विलास-ऐश्वर्य को देने वाली है। विद्या ही कीर्ति और सुख प्राप्त कराती है। विद्या कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का उपदेश देने वाले गुरुओं की भी गुरु है। विदेश जाने पर विद्या ही बन्धु के समान सहायता करती है, विद्या सर्वश्रेष्ठ देवता है। राजाओं या राजसभाओं में विद्या की ही पूजा की जाती है, धन की नहीं। अतः विद्या से रहित मनुष्य पशु ही है।

व्याख्या-विद्या के गुणों का निरूपण करते हुए कवि कहते हैं कि विद्या मनुष्य के लिए अप्रतिम सौन्दर्य है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य की शारीरिक सुन्दरता तो आयु के प्रभाव से मन्द पड़ जाती है या नष्ट हो जाती है, किन्तु विद्या द्वारा संस्कारित व्यक्ति की कान्ति कभी फीकी नहीं पड़ती। विद्या मनुष्य के हृदय में छिपा हुआ स्थायी एवं सुरक्षित धन है, अर्थात् विद्वान् की विद्वत्ता बहुत गूढ़ होती है, उसे आसानी से नहीं जाना जा सकता। विद्या ही मनुष्य को सांसारिक भोग-ऐश्वर्य से सम्पन्न बनाती है, उसे यशस्वी एवं सुखी भी बनाती है। कवि ने विद्या को गुरुओं की भी गुरु अर्थात् परम गुरु की संज्ञा दी है। चूँकि गुरु भी विद्या से ही ज्ञान रूपी रसपान करके शिष्यों को उपदेश देता है। विद्या के बल पर ही व्यक्ति विदेशों में जाकर भी सम्मान के पात्र बनते हैं। विदेश जाने पर विद्या ही सगे बन्धुओं की भाँति एकमात्र सहायिका होती है। इसके अतिरिक्त राज सभाओं में भी धनाढ्य व्यक्ति की अपेक्षा विद्वान् को ही सम्मान दिया जाता है। चूँकि यह सर्वविदित है कि विद्यायुक्त मनुष्य ही विवेकपूर्ण एवं विचारशील कर्म करने की क्षमता रखता है, विद्यारहित व्यक्ति एक

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

प्रकार से पशु के समान ही है। भाव यह है कि विद्या हर प्रकार से मनुष्यमात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध होती है। आचार्य चाणक्य ने तो विद्या को कामधेनू ही कह दिया-

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी।
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तं धनं स्मृतम्।।

चाणक्यनीतिदर्पण 4/5

- इस पद्य में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है।
- इस श्लोक में विद्या के अनेक रूप होने के कारण रूपक अलंकार है, लक्षण है-**'रूपकं रूपितरोपाद्विषये निरपह्नवे'**।

व्याख्यात्मक टिप्पणी-

बन्धुजन-बन्धुजन शब्द का सामान्य अर्थ है-भाई-बन्धु, रिश्तेदार अर्थात् जो व्यक्ति किसी प्रकार के सम्बन्ध से बँधा हो अथवा अपनी ही जाति विशेष, गोत्र विशेष से सम्बन्ध रखने वाला व्यक्ति, स्वजन। मित्रतापूर्ण व्यवहार करने वाला अथवा सेवा करने वाला व्यक्ति भी बन्धुजन ही कहलाता है। यथा-**'कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे'** (मेघ- 114)।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

सन्धि-	रूपमधिकम्	=	रूपम् + अधिकम्
	बन्धुजनो विदेशगमने	=	बन्धुजनः + विदेशगमने

कारक-

गुरुणां गुरुः – 'यतश्च निर्धारणम्' इस सूत्र के अनुसार 'निर्धारण अर्थ में' ये प्रयुक्त 'गुरुणाम्' पद में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

राजसु – यद्यपि यहाँ 'राजसु पुजिता' इस पाठ के स्थान पर 'राजभिः पूजिताः' होना चाहिए। परन्तु 'सप्तम्यधिकणे' इस सूत्र के अनुसार अधिकरण अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण 'राजसु' पद में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   i. विद्वज्जन प्रत्येक समय एवं परिस्थिति में _________द्वारा पूजनीय होते हैं।
   ii. विद्वान् कवि _________ बिना भी समर्थ एवं पूज्य होते हैं।
   iii. विद्ज्जन/कविजन प्राय: ________आश्रय में ही सुशोभित होते हैं।
   iv. अर्थ बिना में बिना के योग में अर्थम् पद में _______ का प्रयोग किया गया है।
3. सही तथा गलत उत्तर का चयन कीजिए।
   i. विद्याधन सबसे निकृष्ट धन है। ()
   ii. राजाओं को विद्वानों के प्रति आदरभाव रखने का उपदेश दिया गया है।()
   iii. परमार्थ तत्त्व को जानने वाले विद्वानों के अपमान की बात कही गई है।()
   iv. विद्वानों की विद्वता का हरण ब्रह्मा भी नहीं कर सकते।()
4. सही विकल्प का चयन कीजिए।
   i. 'तैः सह' में सहयुक्तेऽप्रधाने सूत्र के अनुसार कौन सी विभक्ति है –

      क. प्रथमा ख. द्वितीया ग. चतुर्थी घ. तृतीया
   ii. 'विसतन्तुर्वारणं वारणानाम्' प्रस्तुत उक्ति किस ग्रंथ से सम्बद्ध है –

      क. शृंगारशतक ख. वैराग्यशतक ग. नीतिशतक घ. अमरुकशतक
   iii. विद्वानों को किसके द्वारा बाँधा नहीं जा सकता –

      क. ब्रह्मा ख. सरस्वती ग. लक्ष्मी घ. विष्णु
   iv. विद्वानों की विद्वता का हरण किसके द्वारा नहीं किया जा सकता –

      क. शिव ख. जगतब्रह्म ग. ब्रह्मा घ. सरस्वती
   v. मनुष्य का सर्वोत्तम आभूषण क्या है –

      क. हार ख. बाजूबन्द ग. पुष्प घ. वाणी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

8.4 सारांश

प्रस्तुत पाठ में भर्तृहरि ने विद्वानों के संरक्षण की बात कही है कि विद्वान तो बिना धन के भी जीवनयापन कर सकते हैं लेकिन उनकी विद्वता का प्रत्येक मनुष्य चाहे वह राजा ही क्यों ना हो सभी को सम्मान करना चाहिए और जो भी राजा ऐसा नहीं करता इससे उसकी ही मूर्खता सिद्ध होती है। विद्वानों के लिए ज्ञान ही सर्वप्रमुख धन है क्योंकि इस विद्या को किसी के द्वारा चुराया या नष्ट नहीं किया जा सकता। विद्वानों का प्रभाव इतना दिव्य होता है कि इन्हें लक्ष्मी का प्रभाव भी रोक नहीं सकता और ना ब्रह्मा के द्वारा इनका हरण किया जा सकता। विद्वानों का विवेक उसी प्रकार निपुण होता जैसे हंस का नीर-क्षीर विवेक ज्ञान होता है।इसी क्रम में मनुष्य के सर्वोत्तम आभूषण वाणी की प्रशंसा की गई है जिससे समस्त मनुष्य अपना संस्कार सुदृढ़ कर सकते हैं।विद्या वह सर्वोपरि धन है जिससे मनुष्य और पशु में भेद परिलक्षित होता है क्योंकि ऐसा कहा गया है कि विद्यारहित मनुष्य पशुवत् ही होता है।

8.5 पारिभाषिक शब्दावली

जाड्यं - मूर्ख

अर्थ - धन

अर्घतः - मूल्य

गोचर - दृष्टिगत

विसतन्तुः - कमलनाल

उज्झत - त्याग देना

स्पर्धते - स्पर्धा करना

हर्तुं - चुराना

अधिगत - जानने वाला

अवमंस्था - अपमान

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

वारणं - बन्धन

हन्ति - नष्ट करना

वैदग्ध्यं - विवेकज्ञान

क्षीयन्ते - क्षीण होना

8.6 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1	2	3
I. राजाओं द्वारा	i. गलत	i. तृतीया
II. धन के	ii. सही	ii. नीतिशतक
III. राजा के	iii. गलत	iii. लक्ष्मी
IV. द्वितीया विभक्ति	iv. सही	iv. ब्रह्मा
		v. वाणी
		vi. विद्या

8.7 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. विद्याधन की महत्ता पर निबन्ध लिखिए।
2. विद्वत्पद्धति पर निबन्धात्मक लेखन प्रस्तुत करिए।
3. निम्नलिखित श्लोक की प्रसंगसहित अनुवाद एवं व्याख्या कीजिए।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
वद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनों विदेशगमने विद्या परं दैवतं,
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

8.8 संदर्भ ग्रंथ

- झा, तारिणीश(व्या.), *भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्*, संस्कृत टीका, हिन्दी व अंग्रेजीव्याख्यानुवादसहित, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, 1976.
- त्रिपाठी, बाबूराम(सं), *भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्*, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1986.
- शास्त्री, शर्मा. विष्णुदत्त(व्या.). *भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्*, विमलचन्द्रिकासंस्कृतटीका व हिन्दी व्याख्यासहित, ज्ञान प्रकाशन, मेरठ. संवत् 2034.

8.9 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Keith, A.B., *History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.
- Shastri, Gaurinath, *A Concise History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.
- उपाध्याय, बलदेव, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001.
- काणे, पी.वी., शास्त्री, इंद्रचंद्र(अनु.), *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2011.

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

इकाई 4

पाठ 9

संस्कृत पद्यकाव्य का इतिहास

संरचना

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 संस्कृत वाङ्मय का सामान्य परिचय

9.3.1 लौकिक संस्कृत साहित्य

9.3.2 लौकिक संस्कृत का प्रारम्भ

9.4 वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में भेद

9.5 संस्कृत:व्यवहारिक बोलचाल की भाषा

9.6 सारांश

9.7 पारिभाषिक शब्दावली

9.8 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

9.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

9.10 संदर्भ ग्रंथ

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

9.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी -

- संस्कृत साहित्य के सामान्य परिचय से अवगत होंगे।
- लौकिक संस्कृत के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- वैदिक एवं लौकिक संस्कृत के अन्तर को समझ पायेंगे।
- लौकिक संस्कृत के अन्तर्गत प्राप्त विधाओं से परिचित होंगे।

9.2 प्रस्तावना

छात्रो! प्रस्तुत पाठ में आप बृहद् संस्कृत साहित्य के प्रमुख दो भेद-वैदिक साहित्य तथा लौकिक साहित्य के विषय में अध्ययन प्राप्त करेंगे। साथ ही यह भी जानेंगे कि संस्कृत शब्द का प्रयोग प्रायः लौकिक संस्कृत के लिए ही किया जाता है और लौकिक संस्कृत के प्रारम्भिक चरण से भी परिचित होंगे। इसी परिप्रेक्ष्य में आपको वैदिक तथा लौकिक संस्कृत इन दोनों खण्डों में जो कुछ सामान्य भेद परिलक्षित होते हैं जैसे भाषा सम्बन्धी ल तथा ळ् शब्द का प्रयोग, विषयवस्तु सम्बन्धी धार्मिक तथा लौकिक तत्त्वों के अन्तर से भी आपको अवगत कराया जाएगा। संस्कृत केवल शास्त्रीय भाषा है अथवा इसका प्रयोग व्यवहारिक रूप में बोलचाल की भाषा के रूप में किया जा सकता है, इसके विषय में आपको विस्तृत ज्ञान दिया जायेगा।

9.3 संस्कृत वाङ्मय का सामान्य परिचय

संस्कृत वाङ्मय एक विशाल एवं समृद्ध परम्परा रही है जिसे दो खण्डों में विभाजित किया गया है – वैदिक तथा लौकिक संस्कृत। इन्हीं का यहाँ विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

9.3.1 लौकिक संस्कृत साहित्य

संस्कृत में लिखित बृहद् साहित्य में मुख्यतः वैदिक और लौकिक साहित्य संस्कृत ये दो खण्ड हैं। वैदिक साहित्य के मुख्यतः पाँच विभाग हैं-(1) संहिताएं (सूक्तों के संग्रह), (2) ब्राह्मण, (3) आरण्यक (4) उपनिषद, (5) कल्पसूत्र, जो प्रधानतः तीन प्रकार के हैं, (अ) श्रौतसूत्र, जो यज्ञों से सम्बन्धित हैं, (ब) गृह्यसूत्र, जिनका गृह के विधानों से सम्बन्ध है, (स) धर्मसूत्र, जो सामाजिक नियमों एवं व्यवहारों से सम्बन्धित हैं। ये तीन प्रकार के सूत्र 'कल्पसूत्र' के अन्तर्गत लिए जाते हैं। इनके अतिरिक्त हैं शुल्वसूत्र जो यज्ञवेदी सम्बन्धी रेखाणित रूपों का नियोजन करते हैं और इस कारण कभी-कभी कल्पसूत्रों के ही भीतर गिने जाते हैं। उपर्युक्त कल्पसूत्रों के अतिरिक्त कुछ और भी ग्रंथ हैं जिनका सम्बन्ध ध्वनि, विज्ञान, व्याकरण, छन्द और नक्षत्र विद्या से है। यह ग्रन्थ वेदांगों में परिगणित होते हैं। ये ग्रन्थ भी सूत्र शैली में ही मिलते हैं और इनका समय है वैदिक एवं लौकिक संस्कृत का सन्धिकाल।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

माधुर्य एवं बोधगम्यता की दिव्यसरसता में ही लौकिक संस्कृत साहित्य का सुललित गाम्भीर्य निहित है। यह वाङ्मय लौकिक होता हुआ भी गीर्वाणरूप एवं लोकप्रधान है तथा सामान्य रूप से यह दिव्यादिव्य है। संस्कृत भाषा भारोपीय (भारत-योरोपीय) भाषा परिवार की आवश्यक कड़ी है। इस परिवार के दो प्रमुख विभागों केन्टुम और शतम् में से इसका सम्बन्ध शतम् से है। शतम वर्ग की विभिन्न शाखाओं में से यह भाषा ईरानी शाखा के अन्तर्गत है। यद्यपि साधारणतः 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग लौकिक संस्कृत के लिए किया जाता है तथापि भाषाओं की गणना की दृष्टि से यह शब्द उसके दोनों पक्षों-वैदिक और लौकिक के लिए प्रयुक्त किया जाता है। भाषाशास्त्र अथवा तुलनात्मक भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह अमूल्य रत्न है। निस्सन्देह संस्कृत-साहित्य का महत्व बहुत अधिक है। इसकी बड़ी उम्र, एक बहुत बड़े भूखण्ड पर इसका फैला हुआ होना, इसकी अर्थ संपत्ति, इसकी रचना, इतिहास की दृष्टि से इसका मूल्य, कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके कारण इस मौलिक और पुरातन साहित्य के प्रति हमारा अनुराग बिल्कुल उचित सिद्ध होता है।

9.3.2 लौकिक संस्कृत का प्रारम्भ

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि लौकिक संस्कृत वैदिक संस्कृत से किन बातों में भिन्न है। अब संक्षेप में यह बतलाना आवश्यक है कि लौकिक संस्कृत कैसे और कब प्राचीन वैदिक संस्कृत से विकसित हुई। विकास की अवस्था जो एक भाषा के अन्तस्तल से दूसरी भाषा के अन्तस्तल में आना - एक मन्द प्रक्रिया है, इस कारण इस विषय में कोई निश्चय नहीं किया जा सकता न ही यह कहा जा सकता है कि वैदिक से लौकिक संस्कृत में परिवर्तन का क्रम कब प्रारम्भ हुआ। वैसे तो हमें वेदों में ही कुछ बोलियों के स्वरूपों का आभास मिल जाता है। यद्यपि वेद प्रधानतः धार्मिक है फिर भी हमें उनमें कुछ धर्मनिरपेक्ष साहित्य के आभास भी मिल जाते हैं, उदाहरणार्थ संवाद-सूक्तों, ऋग्वेद के अक्ष (क्रीड़ा) सूक्त तथा और अन्य सूक्तों में। प्रो. ए. ए. मैक्डानल का यह विचार इस विषय में बहुत ही उपयुक्त तथा सारगर्भित है-

यह समझना एक बड़ी भूल होगी कि संस्कृत साहित्य वैदिक साहित्य की समाप्ति पर ही उद्भूत हुआ अथवा यह समझना कि यह उस वैदिक साहित्य का श्रृंखलाबद्ध तथा परम्परानुवर्ती विकसित स्वरूप है। लौकिक साहित्य की दृष्टि से वह भी अपने प्रारम्भिक रूपों में, जो कि अब अनुपलब्ध हैं वेदों के धार्मिक साहित्य का ही समकालीन रहा होगा। वैदिक साहित्य की अन्तिम कृतियों - उपनिषदों और सूत्रों के अतिरिक्त एक ओर तो बौद्धों के पालि साहित्य का विकास हुआ और दूसरी ओर संस्कृत साहित्य के पूर्वतम रूप का निर्माण आदिकाव्यों की कथाओं के रूप में हुआ। हम देख चुके हैं कि ऋग्वेद में भी कुछ ऐसे सूक्त हैं जो केवल वर्णनात्मक प्रकृति के हैं। बाद में हमें ब्राह्मण साहित्य में धर्माख्यानों की एक बहुत बड़ी संख्या मिलती है जो कि मुख्य रूप से गद्य में है किन्तु कहीं-कहीं आंशिक रूप से छन्दबद्ध भी है जैसाकि ऐतरेयब्राह्मण की शुनःशेप कथा। पुनश्च, यास्क के निरुक्त में जिसका समय ई. पू. 5 वीं शताब्दी तो होना ही चाहिए, गद्य में निबद्ध अनेक कहानियाँ मिलती हैं एवं वैदिक आख्यानों के प्राचीनतम उपलब्ध संकलन छन्दबद्ध 'बृहद्देवता' का समय और अधिक परवर्ती काल का नहीं माना जा सकता।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

5. निम्न प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   i. बृहद् संस्कृत साहित्य के मुख्यतः ______खण्ड हैं।
   ii. कल्पसूत्र प्रधानतः______ प्रकार के हैं।
   iii. सामाजिक नियमों एवं व्यवहारों से सम्बन्धित कल्पसूत्र_____कहा जाता है।
   iv. यज्ञवेदी सम्बन्धी रेखाणित रूपों का ________नियोजन करते हैं।
   v. रामायण तता महाभारत________ अन्तर्गत आता है।

9.4 वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में भेद

1. **विषयवस्तु सम्बन्धी भेद :** लौकिक संस्कृत-साहित्य का वैदिक साहित्य से अनेक प्रकार का भेद पाया जाता है। वैदिक साहित्य मुख्यतः धर्मप्रधान साहित्य है तथा इस में यज्ञ-यागादि, देवस्तुति तथा आख्यानों इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है।लौकिक संस्कृत साहित्य प्रधान रूप से लोकवृत्त साहित्य है, इसे लोक-परलोक से सम्बन्धित साहित्य कहा जा सकता है। इस साहित्य में महाकाव्य (रामायण एवं महाभारत), पुराण एवं अन्य काव्य (जिनमें गद्य काव्य भी सम्मिलित हैं) नाटक, अलंकारशास्त्र, दर्शन, सूत्र, विधि अथवा नियमकला, वास्तुशास्त्र, औषधी (आयुर्वेद), गणित, मशीन उद्योग तथा अनेकों और सम्बन्धी ग्रंथ और अन्य विभिन्न विद्याओं की शाखाएँ भी प्राप्त होती हैं।
2. **भाषा सम्बन्धी भेद :** लौकिक साहित्य की भाषा तथा वैदिक साहित्य की भाषा में भी अन्तर पाया जाता है। दोनों के शब्दरूप तथा धातुरूप अनेक प्रकार से भिन्न हैं। वैदिक संस्कृत के रूप केवल भिन्न ही नहीं हैं अपितु अनेक भी हैं, विशिष्टतया वे रूप जोकि क्रिया रूपों तथा धातुओं के स्वरूप से सम्बन्धित हैं। इस सम्बन्ध में दोनों साहित्यों की कुछ महत्त्वपूर्ण भिन्नताएँ निम्नलिखित हैं—
   - शब्दरूप की दृष्टि से उदाहरणार्थ, लौकिक संस्कृत में केवल ऐसे रूप बनते हैं जैसे देवाः जनाः (प्रथम विभक्ति बहुवचन)। जबकि वैदिक संस्कृत में इनमें रूप देवासः जनामः भी बनते हैं। इसी प्रकार प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति बहुवचन में 'विश्वानि' रूप वैदिक साहित्य में 'विश्वा' भी बन जाता है। तृतीया बहुवचन में वैदिक संस्कृत में 'देवैः' इस रूप के साथ-साथ 'देवेभिः' भी मिलता है। इसी प्रकार सप्तमी विभक्ति एकवचन में व्योम्नि

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अथवा व्योमनि इन रूपों के साथ-साथ वैदिक संस्कृत में 'व्योमन्' यह रूप भी प्राप्त होता है।

- वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में क्रियारूपों और धातुरूपों में भी विशेष अन्तर है। वैदिक संस्कृत इस विषय में कुछ अधिक समृद्ध है तथा उसमें कुछ और रूपों की उपलब्धि होती है। जबकि लौकिक संस्कृत में क्रियापदों की अवस्था बतलाने वाले ऐसे केवल दो ही लकार है-लोट् तथा विधिलिङ्. जो कि लट्प्रकृति अर्थात् वर्तमानकाल की धातु से बनते हैं। उदाहरणार्थ पठ् से पठतु और पठेत् ये दोनों बनते हैं। वैदिक संस्कृत में क्रियापदों की अवस्था को द्योतित करने वाले दो और अधिक लकार हैं—लेट् लकार एवं निषेधात्मक लुङ्.लकार (Injunctive) (जो कि लौकिक संस्कृत में केवल निषेधार्थक 'मा' से प्रदर्शित होता है और यह लौकिक संस्कृत में पूर्णतः अप्राप्य है)। इन चारों अवस्थाओं के द्योतक लकार वैदिक संस्कृत में केवल लट् प्रकृति से ही नहीं बनते हैं अपितु लिट् प्रकृति और लुट् प्रकृति से भी बनते हैं। इस प्रकार वैदिक संस्कृत में धातुरूप अत्यधिक मात्रा में हैं। इसके अतिरिक्त लिट् प्रत्यय सम्बन्धी भेद वैदिक संस्कृत में पाये जाते हैं जैसे मिनीमसि (लट्, उत्तम पुरुष बहुवचन में) प्रयुक्त होता है परन्तु लौकिक संस्कृत में मिनीम ही प्रयुक्त होता है। जहाँ तक धातु से बने हुए अन्य रूपों का प्रश्न है, लौकिक संस्कृत में केवल एक ही 'तुमुन्' प्रत्यय से युक्त गन्तुम् रूप मिलता है जबकि वैदिक संस्कृत में इसके लगभग एक दर्जन रूप मिलते हैं जैसे गन्तवै, गमध्यै, जीवसे, दातवै इत्यादि।

3. **शब्दार्थ सम्बन्धी भेद :** पुनश्च, लौकिक संस्कृत आगे चलकर अधिकाधिक कृत्रिम अथवा सुबद्ध होती गई और इसके उदाहरण हमें सुबन्धु और बाणभट्ट के गद्यकाव्यों में प्रयुक्त भयावह समासों में मिलते हैं। इस कला में वह अपने क्षेत्र के अन्य गद्यकारों से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

   - कुछ वैदिक शब्द लौकिक संस्कृत में अप्राप्य हैं और कुछ नये शब्दों का उद्भव भी हो गया है। उदाहरणार्थ, वैदिक शब्द 'अपस्' का 'कार्य' के अर्थ में प्रयोग लौकिक संस्कृत में लुप्त हो गया है। लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त 'परिवार' शब्द वैदिक संस्कृत में अनुपलब्ध है। यह वैदिक एवं लौकिक संस्कृत की अपनी विशेषता है।
   - शब्दार्थ विज्ञान की दृष्टि से कुछ शब्दों में एक विशिष्ट परिवर्तन हुआ है जैसे 'ऋतु' जिसका वैदिक संस्कृत में अर्थ है 'शक्ति' और लौकिक संस्कृत में उसका अर्थ यज्ञ' हो गया है।

4. **आकृति सम्बन्धी भेद :** भाषा में परिवर्तन के अतिरिक्त दोनों साहित्यों में कुछ और भिन्नताएँ प्राप्य हैं-

   - दोनों की आत्मा यद्यपि अभिन्न है तथापि अभिन्नता में भी भिन्नता के दर्शन होते हैं। वैदिक वाङ्मय मुख्यतः जैसाकि ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में हमें प्राप्त होता है वह आशावादी स्वरुप वाला है जबकि लौकिक संस्कृत साहित्य निराशावादी है, इस निराशावाद की झलक

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

बौद्धों के 'सर्व दुःखं' में भी है। बौद्धों के व्यवहार्यपक्ष 'करुणा' और 'मैत्री' का उद्घोष भी वैदिक साहित्य की मौलिकता है।

- वैदिक धर्म भी परवर्ती काल में अव्यक्त रूप से विशिष्टतः परिवर्धित होता हुआ दिखाई देता है। यहाँ तक कि वैदिक युग के प्रधान देवता जैसे इन्द्र, अग्नि, वरुण को लौकिक संस्कृत में अपेक्षाकृत विशिष्टता प्राप्त नहीं हुई परन्तु ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनों को वेदों में केवल गौण स्थान ही प्राप्त था, लेकिन परवर्ती काल में इन्हें एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया। इस काल में कुछ नए देवी देवताओं जैसे गणेश, कुबेर, लक्ष्मी और दुर्गा इत्यादि का भी वैदिक मूल से विकास हुआ।
- परवर्ती, विशेषतः आठवीं और नवीं शताब्दी के बाद के कवियों में अत्युक्ति का आश्रय ग्रहण करने की ओर अधिक झुकाव है, जैसे माघ श्रीहर्ष आदि में जबकि पूर्ववर्ती कवियों जैसे अश्वघोष (बौद्ध कवि), भारवि और कालिदास में अत्युक्ति का अभाव है। वैदिक वाङ्मय में अत्युक्ति का अत्यन्त अभाव है।
- लौकिक संस्कृत में छन्दोबद्ध रूप के प्रयोग की ओर हमें एक विशिष्ट आग्रह दिखायी देता है। वैदिक युग में भी छन्दोबद्ध रूपों का आधिक्य मिलता है, किन्तु वहाँ विशेषतः यज्ञ सम्बन्धी साहित्य में गद्य का भी प्रयोग हुआ, जैसे यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रंथों में। लौकिक संस्कृत काल में छन्दोबद्ध प्रयोग की ओर इतना अधिक झुकाव हो गया कि यहाँ वैद्यक ग्रन्थ (चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता इत्यादि) भी पद्य में ही लिखे गये। यहाँ तक कि कोशों की रचना जैसे अमरकोश भी छन्दों में ही हुई। आगे चलकर परवर्ती काल में बाण और सुबन्धु ने गद्य काव्यों के लेखन की शैली का विकास किया, जो कि बड़े-बड़े समासों से मिश्रित होने के कारण अत्यन्त कृत्रिम कही जाती है। इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती काल में सूत्र-रूप में दार्शनिक ग्रंथों को लिखने की प्रणाली का भी प्रचलन हुआ। आगे चलकर हमें छन्दों की प्रणाली का भी एक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। वैदिक छन्द जगती, त्रिष्टुभ, अनुष्टुप तो लौकिक संस्कृत में सर्वथा अनुपलब्ध है जबकि लौकिक संस्कृत के छन्द वंशस्थ, उपेन्द्रवज्रा शिखरिणी आदि वेदों में पूर्णतः अप्राप्य हैं। हां, यह अवश्य सच है कि लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त श्लोक छन्द वैदिक अनुष्टुप छन्द का ही रूप हैं।

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत की भिन्नताओं की ओर दृष्टिपात करते हुए यह ध्यान देना आवश्यक है कि सिद्धांत की दृष्टि से दोनों एक दूसरे से काफी समानता है। वेदों में कुछ और अधिक ध्वनियाँ (Sounds) मिलती हैं, जैसे कि ळ' ळ' अन्य ध्वनि-सिद्धान्त दोनों के समान ही हैं और उनमें कोई भी वैसा अन्तर नहीं दिखायी देता जैसा कि प्राकृत बोलियों में हमें प्राप्त होता है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य – प्रश्न

2. निम्नलिखित प्रश्नों में सही तथा गलत उत्तरों का चयन कीजिए।

i. वैदिक साहित्य मुख्यतः धर्मप्रधान साहित्य नहीं है। सही/ गलत
ii. वैदिक संस्कृत में 'देवैः' इस रूप के साथ-साथ 'देवेभिः' भी मिलता है। सही/गलत
iii. वैदिक तथा लैकिक संस्कृत में भाषा सम्बन्धी भेद प्राप्त होते हैं। सही/गलत
iv. वैदिक वाङ्मय में अत्युक्ति का प्रसार है। सही/ गलत
v. लेट् तथा लुङ् लकार वैदिक संस्कृत में प्राप्त होते हैं। सही/गलत

9.5 संस्कृत:व्यवहारिक भाषा

संस्कृत के बोलचाल की भाषा होने का प्रश्न कई बार उठा है और इसका कारण संस्कृत का अपरिवर्तनशील स्वभाव भी हो सकता है। उस समय से ही जबकि पाणिनि ने अपने अभर व्याकरण अष्टाध्यायी का निर्माण किया, इस व्याकरण का निर्माण इतना अमिट और दृढ़ सिद्ध हुआ कि उसके नियम आगे आने वाले सभी युगों में मान्य हुए और संस्कृत के रूप भी बहुत कुछ रूढ़िबद्ध हो गये और इन 500 वर्षों में भी इनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संस्कृत भाषा की इस अपरिवर्तनशीलता के कारण कुछ आलोचकों का यह मत था कि संस्कृत बोलचाल की भाषा कभी नहीं थी एवं उसका प्रयोग केवल साहित्य निर्माण के लिए ही होता था। कुछ लोगों ने यहाँ तक घोषणा की कि संस्कृत का निर्माण कृत्रिम रूप में ब्राह्मणों द्वारा अपने पोरोहित्य कर्म के लिए किया गया। यह मत इतना अज्ञान-पूर्ण एवं तर्क की परिधि से परे है कि वह एकदम आलोचकों एवं विद्वानों के द्वारा अग्राह्य हुआ। यह भाषा जो कि इतनी अपूर्व सुन्दर तथा अर्थवती है, वह एस्पेरेन्टो की तरह एक बनावटी तथा निर्मित भाषा नहीं हो सकती। निम्नलिखित बातों से यह सिद्ध होता है कि संस्कृत कभी कृत्रिम भाषा नहीं थी और वह यथाकाल में सार्वजनिक बोलचाल की भाषा अधिक रही होगी, इसके सम्बन्ध में कुछ मत इस प्रकार से हैं -

1. निरुक्तकार यास्क ने (लगभग 700 ई. पूर्व) संस्कृत को भाषा कहा है और वैदिक संस्कृत को इससे पृथक् माना है। यास्क ने (निरुक्त अध्याय 1 पाद 2) में संस्कृत के प्राच्य और उदीच्य भेदों का उल्लेख किया है (निरुक्त 2-2)।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2. पाणिनि के व्याकरण 'अष्टाध्यायी' में कुछ ऐसे नियम मिलते हैं जो केवल बोलचाल एवं दैनिक व्यवहार की भाषा के लिए प्रयुक्त हुए होंगे। उदाहरणार्थ, पाणिनि का यह नियम कि सम्बोधन में आवाज को प्लुत (लम्बी) करना चाहिए जैसे यदि किसी को दूर से बुलाना हो (हे राम३ त्वामागच्छ) और यही नियम आशीर्वचन प्रणाम या नमस्कार के प्रत्युत्तर में भी लागू होता है (जैसे- आयुष्मान् भव देवदत्त३)। पाणिनि ने वैदिक भाषा के छन्दस और लोक प्रचलित भाषा के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग करके दोनों का अन्तर स्पष्ट किया है।

3. संस्कृत शब्दों के विभिन्न रूप जो कि उस समय देश के विभिन्न भागों में प्रचलित थे उनके भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन विभिन्नताओं का उल्लेख यास्क तक के समय (लगभग सातवीं शताब्दी ई. पू.) तक किया गया है। पाणिनि और पतंजलि में भी ये उल्लेख मिलते हैं। ऐसे उल्लेख तो तभी प्राप्त हो सकते है जबकि संस्कृत बोलचाल की भाषा रही हो।[4]

4. इसके अतिरिक्त कुछ मुहावरेदार प्रयोग भी हमें प्राप्त होते हैं जो कि केवल बोलचाल की भाषा में ही विकसित हुए होंगे, जैसे - दण्डादण्डि (दण्डों से युद्ध), केशाकेशि (बालों को नोंच-नोंचकर युद्ध), हस्ताहस्ति (हाथापाई)।

5. कात्यायन (चतुर्थ शताब्दी ई. पू.) ने अपने वार्तिकों में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि लोक में प्रचलित शब्दों को आधार मानकर ही संस्कृत व्याकरण की रचना हुई है।[5] विभिन्न प्रान्तों, प्रदेशों में प्रयुक्त धातुओं और शब्द रूपों को लेकर धातु पाठ आदि में विभिन्न धातुओं एवं शब्दों का संकलन किया गया है।[6]

6. पतंजलि (150 ई. पू. के लगभग) ने अनेक उदाहरण देकर पाणिनि और कात्यायन के कथनों की पुष्टि की है। 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे', 'लोकतः', 'प्रियतद्धिता दक्षिणात्याः' आदि के द्वारा पतञ्जलि ने स्पष्ट किया है कि विभिन्न प्रान्तों में बोली जाने वाली भाषा में भेद होते थे। पतंजलि ने वैयाकरण और सारथि के बीच एक संवाद का भी उल्लेख किया है जिससे सिद्ध होता है कि एक वैयाकरण की अपेक्षा एक सूत को प्रचलित शब्दों की व्युत्पत्ति तथा प्रयोग का अधिक ज्ञान का।[7]

7. पाश्चात्य विद्वानों-जैसे कीथ एवं ग्रियसैन ने भी यह माना है कि रामायण और महाभारत काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी (Keith and Grierson, JRAS1906)। मैक्डानल की मान्यता है "इसमें सन्देह नहीं कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हिमालय और विन्ध्य के मध्यवर्ती समस्त

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

आर्यावर्त में संस्कृत बोलचाल की भाषा रही हो।"

8. संस्कृत नाटकों में भी संस्कृत के बोलचाल की भाषा होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। नाटकों में उच्च कोटि के पात्र संस्कृत बोलते हैं और स्त्रियाँ शौरसेनी प्राकृत बोलती है, तथा परिचर एवं अन्य अधम पात्र विभिन्न प्राकृतों का प्रयोग करते हैं। इतना तो स्पष्ट है कि नाटक अपने रचनाकाल की स्थिति का निश्चित रूप से प्रदर्शन करते हैं। नाटकों में तत्कालीन समाज का सजीव चित्र प्राप्त है अतः यह स्पष्ट है कि उन दिनों अनपढ़ व्यक्ति प्राकृत बोलते थे एवं सभ्य मनुष्य संस्कृत।

9. कहानियों में सुना जाता है कि भिक्षुओं ने बुद्ध के समक्ष यह प्रस्ताव रखा था कि वे अपनी बोलचाल की भाषा संस्कृत को बना लें। इससे भी यही सिद्ध होता है कि संस्कृत बुद्ध के समय में बोलचाल की भाषा थी।

10. प्रसिद्ध बौद्धकवि अश्वघोष (प्रथम शताब्दी ईसवी) ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए अपने ग्रन्थ संस्कृत में लिखे। इससे यह अनुमान करना सुगम है कि संस्कृत प्राकृत की अपेक्षा साधारण जनता को अपनी ओर अधिक आकर्षित करती थी तथा संस्कृत ने कुछ समय के लिए अपने लुप्तप्राय पद को पुनः प्राप्त कर लिया था। बौद्ध और जैन दार्शनिकों ने अपने दार्शनिक ग्रन्थ प्राकृत या अपभ्रंश में न लिखकर संस्कृत में ही लिखे।

11. ई. दूसरी शताब्दी से प्रारम्भ होने वाले शिलालेख क्रमशः संस्कृत में अधिक मिल रहे हैं और केवल जैन शिलालेखों को छोड़कर, छठी शताब्दी से लेकर 19वीं शती ईसवी तक सारे शिलालेख संस्कृत में ही मिलते हैं। यह बात भी सभी मानेंगे कि शिलालेख प्रायः उसी भाषा में लिखे जाते हैं, जिसे सर्वसाधारण पढ़ और समझ सकते हैं। इस काल के प्रायः सभी स्तम्भ लेख, दानपत्र, राजकीय शासनपत्र और राजप्रशस्तियाँ आदि संस्कृत में ही मिलते हैं।

12. ह्वेनसांग स्पष्ट शब्दों में कहता है कि ई. सातवीं शताब्दी में बौद्ध लोग धर्मशास्त्रीय मौखिक वाद-विवाद में संस्कृत का ही प्रयोग करते थे। जैन लोग भी शास्त्रीय या धार्मिक चर्चा में संस्कृत का प्रयोग करते थे। जैन लेखक सिद्धर्षि ने (107 ई.) प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत के प्रयोग को अधिक लाभप्रद, सरल एवं श्रुतिसुखद बताया है।

13. गुप्तकाल और राजा भोज के समय में (11वीं शती ई.) संस्कृत भाषा को बहुत अधिक प्रोत्साहन

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मिला। उस समय साधारण जनता भी संस्कृत में बोलने की क्षमता रखती थी।

14. राजशेखर ने अपनी काव्य मीमांसा में (पृ. 50) यह उल्लेख किया है कि उज्जयिनी के राजा साहसांक उपाधिधारी विक्रमादित्य के राजपरिवार के अन्तःपुर में भी संस्कृत का प्रयोग किया जाता था।

15. काश्मीरी कवि बिल्हण (11वीं शती ई.) ने उल्लेख किया है कि काश्मीरी स्त्रियाँ संस्कृत, प्राकृत और काश्मीरी भाषा ठीक समझती थीं (विक्रमांक देवचरित, 18-6)।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि संस्कृत सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत (सुसभ्य) व्यक्तियों के द्वारा बोली जाती थी। वास्तव में यह बात प्रत्येक भाषा के साहित्यिक रूप पर भी लागू होती है जिसका सम्बन्ध उन व्यक्तियों से होता है जो सर्वथा शिक्षित होते हैं। पाणिनि के समय तक की संस्कृत एक विशेष परिस्थिति से सम्बद्ध है। सम्भवतः ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय बोलचाल की संस्कृत तथा साहित्यिक संस्कृत में विशेष अन्तर नहीं था अर्थात् अभिव्यक्ति में कोई अधिक नियमबद्धता नहीं थी। किन्तु जब से पाणिनि ने अपने अतिप्रसिद्ध एवं अविस्मरणीय व्याकरण का निर्माण किया, उस समय से अभिव्यक्ति का एक सुदृढ़, सही और सम्यक् मार्ग का अवलम्बन होना प्रारम्भ हुआ और इस मार्ग से पराङ्मुखता को कोई आश्रय नहीं दिया गया और न ही उसे सहन किया गया। इन परिस्थितियों में बोलचाल की संस्कृत तथा साहित्यिक संस्कृत के रूपों में भेद होना अस्वाभाविक भी नहीं है। इस तरह साहित्यिक प्रयोग केवल शिक्षित एवं सुसंस्कृत व्यक्तियों—जिन्हें शिष्ट कहा जा सकता है उनके द्वारा प्रयुक्त किये जाते होंगे। इसका ही नाम संस्कृत अथवा परिष्कृत भाषा पड़ा। इसके विपरीत वह भाषा जिसका प्रयोग अशिक्षित लोगों के द्वारा किया गया, उसका नाम 'प्राकृत' पड़ा अर्थात् जन-साधारण की भाषा। धीरे-धीरे जब प्राकृत ने भी साहित्यिक रूप धारण करना प्रारम्भ किया तब वह भाषा जो बोलचाल में प्रयुक्त होती रही उसे अपभ्रंश (भाषा का भ्रष्ट रूप) नाम दिया गया। भाषा की ये इकाईयाँ उसकी शक्ति एवं समृद्धि का परिचय देती हैं। इतनी समृद्ध भाषा को बोलचाल की भाषा न मानना उसके साथ अन्याय एवं अतर्कपूर्ण है। पाणिनि के काल से ही संस्कृत शब्दों के सभी रूप रूढ़िबद्ध एवं अपरिवर्तनीय बन गये, और उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन करना अग्राह्य हो गया और इस तरह संस्कृत एक अपरिवर्तनशील भाषा बन गयी। इसीलिए इसका नाम पड़ा देववाणी अर्थात् वह भाषा जिसमें देवताओं के समान ही अपरिवर्तनशीलता एवं अक्षुण्णता अथवा अक्षरता होती है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य - प्रश्न

3. निम्न प्रश्नों में से सही उत्तर का चयन कीजिए।

i. यास्क ने संस्कृत के किस भेद का उल्लेख किया है। प्राच्य और उदीच्य / दाक्षिण्य और प्रतीच्य

ii. इसमें सन्देह नहीं कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हिमालय और विन्ध्य के मध्यवर्ती समस्त आर्यावर्त में संस्कृत बोलचाल की भाषा रही हो, प्रस्तुत कथन किसका है। कीथ/मैक्डानल

iii. किस काव्य में उच्चकोटि के पात्र संस्कृत में बोलते हैं। नाटक/महाकाव्य

iv. स्त्री पात्रों की भाषा प्रायः होती है – शौरसेनी प्राकृत/ केवल प्राकृत

9.6 सारांश

छात्रो! प्रस्तुत पाठ में आपने संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न शाखाओं के विषय में जाना जैसे वैदिक संस्कृत में ऋचाओं का संग्रह(संहिताएँ), दार्शनिक विषयों का प्रतिपादक उपनिषद ग्रंथ तथा ब्राह्मण, आरण्यक इत्यादि प्राप्त होते हैं जो प्रायः यज्ञादि से सम्बन्धित होते थे और इसमे देवस्तुतियों का वर्णन किया जाता था। साथ ही लौकिक संस्कृत लोक व्यवहार की कथावस्तु का प्रतिपादक साहित्य माना जाता है जिसमें समाजिक, व्यवहारिक तथा नीतिप्रधान विषयों का वर्णन किया जाता रहा है। इसीलिए आपने देखा कि वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत में भाषा, विषयवस्तु, आकृति तथा शब्दार्थ प्रयोग की दृष्टि से भी अन्तर दिखाई देता है जैसे – वैदिक संस्कृत में 'ऋतु' शब्द का अर्थ 'शक्ति' के सम्बन्ध में किया जाता था परन्तु लौकिक संस्कृत में उसका प्रचलन 'यज्ञ' के अर्थ में प्रसिद्ध हो गया। वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत में शब्दरूप, क्रिया तथा धातुरूप, छन्द प्रयोग की प्रक्रिया इत्यादि को लेकर अनेक अन्तर प्राप्त होते हैं। वैदिक तथा लौकिक संस्कृत के भेद को देखते हुए यह भी सिद्ध करना आवश्यक हो जाता है कि संस्कृत केवल वैदिक भाषा अथवा लौकिक भाषा ही नहीं अपितु व्यवहारिक बोलचाल की भी भाषा है क्योंकि इसमें प्रायः सम्बोधन (बुलाने में) में प्रयुक्त प्लुत इत्यादि नियमों का वर्णन मिलता है, मुहावरेदार भाषा का भी प्रयोग जैसे - दण्डादण्डि (दण्डों से युद्ध), हस्ताहस्ति (हाथापाई) इत्यादि का उदाहरण भी प्राप्त होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

9.7 पारिभाषिक शब्दावली

गीर्वाण - देवता

अक्ष - जुआ

व्योमन् - आकाश

द्योतित - प्रकाशित करना

मा - निषेधसूचक अव्यय

मैत्री - मित्रता

उद्घोष - घोषणा, ऊँची आवाज में कहना

परिवर्धन - बढ़ना

आग्रह - तत्परता, बल

प्राच्य - पूर्व

उदीच्य - उत्तर

पराङ्मुखता - किसी कार्य से विमुख होना

अवलम्बन - आधार

अपभ्रंश - भाषा का भ्रष्ट रूप

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

9.8 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1.	3.
i. 2	i. प्राच्य और उदीच्य
ii. 3	ii. मैक्डानल
iii. धर्मसूत्र	iii. नाटक
iv. शुल्वसूत्र	iv. शौरसेनी प्राकृत
v. लौकिक संस्कृत	

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

2. i. गलत ii. सही iii. सही iv. गलत v. सही	

9.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. लौकिक साहित्य का परिचय देते हुए वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
2. 'संस्कृत बोलचाल की भाषा है' प्रस्तुत कथन की विवेचना कीजिए।

9.10 संदर्भ ग्रंथ

- उपाध्याय, बलदेव, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001.
- काणे, पी.वी., शास्त्री, इंद्रचंद्र(अनु.), *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2011.

9.11 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Keith, A.B., *History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.
- Shastri, Gaurinath, *A Concise History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.

© DDCE, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ 10

महाकाव्य का उद्भव एवं विकास

संरचना

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 महाकाव्य का परिचय

10.3.1 महाकाव्य का लक्षण

10.3.2 महाकाव्य का उद्भव एवं विकास

10.4 प्रमुख महाकवि एवं उनके महाकाव्य

10.4.1 कालिदास

10.4.2 अश्वघोष

10.4.3 भारवि

10.4.4 भट्टि

10.4.5 माघ

10.4.6 श्रीहर्ष

10.4.7 कुछ अन्य कवि

10.5 सारांश

10.6 पारिभाषिक शब्दावली

10.7 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

10.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

10.9 संदर्भ ग्रंथ

10.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

10.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी -

- महाकाव्य के लक्षण एवं विषयवस्तु से परिचित होंगे।
- महाकाव्य के उद्भव एवं विकास को समझ पायेंगे।
- प्रमुख महाकवियों के जीवन–परिचय से अवगत हो पायेंगे।
- प्रमुख महाकाव्यों के कथावस्तु एवं भाषा-वैविध्य को समझ पायेंगे।
- पद्यकाव्यों को पढ़ने और समझने में सक्षम हो सकेंगे।

10.2 प्रस्तावना

छात्रो! पूर्व पाठ में आप संस्कृत साहित्य की विधाओं से परिचित हुए जो प्रायः वैदिक तथा लौकिक संस्कृत इन दो खण्डों में विभाजित है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत वैदिक ऋचाएँ, उपनिषद, ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथ इत्यादि तथा लौकिक संस्कृत के अन्तर्गत गद्य, पद्य तथा चम्पू काव्यों का उल्लेख प्राप्त होता है।

लौकिक संस्कृत के परम्परागत बंध के आधार पर काव्य के दो भेद माने गये हैं–प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य। पुनः प्रबन्ध काव्य के दो भेद प्राप्त होते हैं–महाकाव्य तथा खण्डकाव्य। महाकाव्य से तात्पर्य है महत् अर्थात् उत्कृष्ट काव्य। महाकाव्य वह विधा है जिसमें प्रायः किसी ऐतिहासिक राजा अथवा सत्पात्र की कथा का भावपूर्ण वर्णन किया जाता है। इस काव्य में कवि प्रायः उदात्त भाषाशैली के माध्यम से पाठक को अपनी रचना से जोड़कर रखता है और सरल तथा माधुर्ययुक्त पदावली का वर्णन करते हुए सम्पूर्ण कथा का वर्णन करता है। महाकाव्य का लक्षण, महाकाव्य का उद्भव एवं विकास तथा साथ ही प्रमुख महाकवियों एवं उनके महाकाव्यों का वर्णन प्रस्तुत पाठ में किया जा रहा है।

10.3 महाकाव्य का परिचय

महाकाव्यों का उद्भव ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों, इन्द्र, विष्णु, वरुण और उषा आदि के स्तुति मंत्रों तथा नाराशंसी और गाथाओं से हुआ है। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में इन आख्यानों का बृहद

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

रूप मिलता है, यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य के रूप में परिवर्तित हो गया। जूनागढ़ के एक शिलालेख में रुद्रामा की परिष्कृत काव्य रचना प्राप्त होती है। इसी प्रकार इलाहाबाद के शिलालेख में समुद्रगुप्त का नाम न केवल कवियों के आश्रयदाता के रूप में अपितु कवि के रूप में भी मिलता है। राजकीय शिलालेखों की सत्ता ही काव्य साहित्य की सत्ता का प्रबल प्रमाण है।

10.3.1 महाकाव्य का लक्षण

साहित्य-दर्पणकार महाकवि विश्वनाथ के अनुसार आकांक्षा, योग्यता एवं आसत्तियुक्त पदोच्चय ही वाक्य है। 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है। इस प्रकार के वाक्यों का समूह ही महावाक्य (महावन की भाँति) अथवा महाकाव्य कहलाता है। सामान्यतया जो पद्य रचना आलंकारिको के नियमों का ठीक-ठीक पालन करती है उसे महाकाव्य समझा जाता है। महाकाव्य शब्द का प्रयोग पद्यकाव्य के लिए होता था। आधुनिक विद्वान् महाकाव्य को (Court-epic) राज्यसभा काव्य कहते हैं। कई विद्वानों ने महाकाव्य के लिए कृत्रिम वीरचरित (Artificial epic) अथवा भूषणात्मक वीरचरित (Ornamental-epic) शब्दों का प्रयोग किया है। महाकाव्य से तात्पर्य है एक विशेष प्रकार की पद्य रचना जो एक ओर तो इतिहास तथा पुराण से भिन्न हो और दूसरी ओर ऐतिहासिक काव्य से भी पृथक् हो। इतिहास तथा पुराण का खण्डों तथा अध्यायों में विभाजन होता है किन्तु महाकाव्य का विभाजन केवल सर्गों में ही। पुराण में कोई प्रमुख केन्द्रीय विषय नहीं होता है किन्तु महाकाव्य में प्रमुख केन्द्रीय विषय की ही प्रधानता रहती है और वर्णन स्थल में इसके अखण्ड अंश होते हैं। महाकाव्य में अवान्तर कथाएँ नहीं होती हैं। कुछ संस्कृत ग्रंथों में महाकाव्य के लक्षण का प्रतिपादन किया गया है। जैसे-

- भामह (700 ई.) ने भामहालंकार (1/18/23) मे
- दण्डी (7वी शती) ने काव्यादर्श (1/4/22), अग्निपुराण (अध्याय 337)
- विश्वनाथ (1350 ई.) ने साहित्य दर्पण (6/315-325)

साहित्यदर्पण में प्राप्त महाकाव्य का लक्षण सर्वांगीण और व्यापक है। विश्वनाथ ने महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार बताया है-

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंश्यः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मृनिस्वर्गपुरध्वराः।।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।
वर्णनीया यथायोग्यं साङ्गोपाङ्गो अमी इह ।। (साहित्यदर्पण 6, 315-342)

महाकाव्य संक्षिप्त न हो और सर्गों में विभक्त होना आवश्यक है। एक सर्ग में तीस से दो सौ पद्यों की संख्या हो। महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग और अधिक से अधिक तीस सर्ग होने चाहिए। इसका नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय या एक ही वंश के अनेक कुलीन राजा हो सकते हैं। महाकाव्य का प्रारम्भ आशीः, नमस्क्रिया अथवा कथावस्तुनिर्देश से होना चाहिए। विषय ऐतिहासिक किसी जनश्रुति से लिया गया हो। उद्देश्य, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से कोई एक हो। इसमें सूर्योदय, चन्द्रोदय, ऋतु, पर्वत, समुद्र, नगर, उद्यान, जलक्रीड़ा, मधुपान रीतिकेलि, पर्व, उत्सव, अनुरागियों के वियोग अथवा संयोग, विवाह, पुत्रजन्म, युद्ध, यात्र, नायकविजय, मंत्रणा मृगया इत्यादि का ललित वर्णन होना चाहिए। इसमें रसों, पावों और अलंकारों का समावेश हो। प्रधान रसश्रृंगार वीर अथवा शान्त हो और अन्य रसों का समावेश गौण रूप से हो। छन्द आकर्षक हों और सारा सर्ग एक छन्द से व्याप्त हो किन्तु सर्गान्त का पद्य अन्य छन्द में हो। सर्ग के अन्त में भावी कथा का संकेत भी होता है। महाकाव्य का नाम कवि, कथानक नायक या प्रतिनायक के नाम पर होना चाहिए। महाकाव्य में नायक धीरोदात्त होना चाहिए। धीरोदात्त नायक आत्मश्लाघा न करने वाला क्षमावान्, अतिगम्भीर, हर्ष-शोकादि से अनभिभूत, स्थिर तथा दृढ़व्रत होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

6. **निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**
   i. आकांक्षा, योग्यता एवं आसत्तियुक्त पदोच्चय ______कहलाता है।
   ii. 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' _______की उक्ति है।
   iii. आधुनिक विद्वान् महाकाव्य को ______कहते हैं।
   iv. महाकाव्य का विभाजन ______में होता है।
   v. महाकाव्य में प्रमुख रूप से _______की प्रधानता रहती है।
   vi. महाकाव्य में नायक ________होना चाहिए।

10.3.2 महाकाव्य का उद्भव एवं विकास

कालिदास से पूर्व काल में, रामायण रचयिता महर्षि वाल्मीकि को यथार्थतः आदिकवि और रामायण को आदि-काव्य कहा गया है। पाणिनि (450 ई. पू.) का नाम भी पातालविजय तथा जाम्बवतीविजय नामक दो महाकाव्यों से सम्बद्ध है। पाणिनि-अध्यारोपित कुछ पद्य बहुत ही काल्पनिक हैं-

"गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं। गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः॥
अपश्यती वत्समिवेन्दुविम्बं। तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति।।"

वार्तिककार वररुचि (350 ई. पू.) का नाम भी स्वर्गारोहण नामक काव्य के कर्त्ता के रूप में लिया जाता है। महाभाष्यकार पतंजलि (150 ई. पू.) ने भी महानन्द काव्य की रचना की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत काव्य के बहुत सारे अंश की परिवृद्धि ई. पू. द्वितीय शताब्दी और प्रथम शताब्दी के बीच हुई है। हाल की सतसई तथा गुणाढ्य की बृहत्कथा इसके उदाहरण हैं। शिलालेख भी अलंकृत काव्यशैली के उदाहरण हैं। यद्यपि वे लौकिक (श्रेण्य) संस्कृत में लिखे गये हैं किन्तु कुछ शिथिलता उनमें भी विद्यमान है। शिलालेखों में वर्णनस्थल उच्चकोटि के हैं और वे कवि की योग्यता का भी प्रदर्शन करते हैं। गिरनार के शिलालेख में साधारणतया, स्पष्टता, माधुर्य, विविधता सौन्दर्य, काव्योचित परिभाषा की उन्नति आदि कई गुण पाये जाते हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि कालिदास से पहले ही संस्कृतकाव्य और काव्य शास्त्र विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त, कालिदास स्वयं अपने पूर्ववर्ती रोमिल्ल सोमिल्ल आदि का नामोल्लेख करते हैं।

संस्कृत काव्य के मूल्यांकन के समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि इसका क्रमिक विकास किस वातावरण में हुआ। बौद्धमत का निराशावाद धीरे-धीरे लुप्त हो गया और आनन्द व प्रमोद जोर पकड़ने लगा। अतः इन कृतियों में रति की प्रधानता रही। पुष्पसायक कामदेव की भक्ति सर्वत्र फैलने लगी। परिणाम यह हुआ कि पारिभाषिक शास्त्र भी काव्य से ओत-प्रोत हो गये।

© DDCE, COL, SOL, University

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

संस्कृतकाव्य न केवल राजपरिवार सम्बन्धी कथाओं से ओत-प्रोत रहा अपितु वात्स्यायन कामसूत्र से भी अत्यधिक प्रभावित हुआ। इन काव्यों में वर्णित मनोरंजन व विकास के साधन कामसूत्र के लिए गये है। इस काल के काव्य सिद्धान्त व अभ्यासक्रम पर अलंकार शास्त्र के ग्रन्थों का अगाध प्रभाव पड़ा है।

नारी सौन्दर्य का सूक्ष्म वर्णन इस काव्य की एक और विशेषता है जो कभी-कभी इन्द्रिय विषयक होने के कारण निन्द्य समझा जाता है। यद्यपि इस तरह की अभिरुचि सौन्दर्य मीमांसा के विकसित लोकाचार की ओर संकेत करती है, किन्तु यह अवश्य मानना पड़ेगा कि ऐसे वर्णन कई जगह शोचनीय हुए हैं। ऐसी कविताएँ रसिक सहृदयों के लिए लिखी गई है इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी कविताएँ दक्षता से एक अभ्यस्त और निष्णात विशेषज्ञ के लिए लिखी गई है। वे कल्पना की अपेक्षा विद्वता का अधिक प्रदर्शन करती हैं। भाषा का असहज व क्लिष्ट प्रयोग कभी कभी अर्थग्रहण में बाधक बन गया है। यहाँ तक कि कई कवियों ने अपनी कविताओं को केवल विद्वानों के लिए, न कि मन्द बुद्धिजनों के लिए लिखने का गर्व किया है। इन कविताओं का क्षेत्र भी सीमित रहा है क्योंकि इनका विषय रूढ़िबद्ध है। इन कवियों ने कभी-कभी रीति और शब्दरचना की अत्यधिक अभिरुचि के कारण विषय और कथावस्तु की उपेक्षा की है। असंगत और सामान्य वर्णन कथाप्रवाह के बाधक बन गये हैं। काव्य के स्वीकृत आदर्शों के अनुवर्तन के उत्साह में कवियों ने अनुचित दृश्यों व विषयों के वर्णन करने का प्रयत्न किया है। यह भी कहा जाता है कि कविताएँ कवि के निजी अनुभवों को प्रकट नहीं करती है और एक वर्ग अथवा गण के सामान्य अनुभवों का प्रदर्शन करती हैं, अतः संस्कृत काव्य रचनाएँ न रह कर सामान्य आदर्श रचनाएँ बन गयी हैं। उनके नियमबद्ध व औपचारिक स्वरूप की खूब प्रशंसा की गई है। संस्कृत कवि संस्कृत शब्दों के माधुर्य में निमग्न होते रहते हैं। संस्कृत में शब्दरचना का पर्याप्त महत्त्व है। काव्य का लालित्य लम्बे-लम्बे समस्त पदों की देन है। ऐसा होने पर भी इन काव्यों के कई गुणों को भी स्वीकार करना होगा। पुरुषोचित तथा साहसिक गुणों के वर्णन में और जीवन के सामान्य भावों अथवा अन्तर्वेग के प्रदर्शन में ये काव्य श्रेष्ठ हैं। इन काव्यों की कृत्रिमता प्राकृतिक दृश्यों के अद्भुत भावों पर आधारित हैं जो सुपरिचित और वास्तविक हैं। कई कवि निरीक्षण की नवीनता का प्रदर्शन करते हैं। भावप्रधानता तथा अद्भुत कल्पना रीति की संपूर्णता तथा निरूपण की सूक्ष्मता सहित काव्य के आवश्यक अंग समझे गये हैं। अविनीत उपभोग के लिए यह नहीं है। गद्य भी इसके बाद संग्रह और अलंक्रिया के कारण काव्यात्मक समझा जाता है।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि काव्य शैली की आवश्यक विशेषताएँ, अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग, किसी एक प्रकार के दृश्यों का वर्णन, रति भाव के दर्शन की प्रधानता, शब्द रचना की कृत्रिमता और प्रकृति वैशिष्ट्य के लिए आदरभाव आदि में निहित है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य – प्रश्न

2. निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर का चयन कीजिए।

i. आदि-काव्य रामायण को माना जाता है । सही/ गलत

ii. पाणिनी पातालविजय तथा जाम्बवतीविजय इन दो महाकाव्यों के रचयिता माने जाते हैं। सही/गलत

iii. शिलालेख अलंकृत काव्यशैली के उदाहरण नहीं हैं। सही/गलत

iv. कालिदास से पहले संस्कृतकाव्य और काव्य शास्त्र विद्यमान नहीं थे। सही/गलत

v. महाकाव्यों में रति भाव के दर्शन की प्रधानता पाई जाती है ।सही/गलत

vi. बृहत्कथा कवि गुणाढ्य की रचना है । सही/गलत

10.4 प्रमुख महाकवि एवं उनके महाकव्य

संस्कृतकाव्य का स्वर्णयुग हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के सुवर्ण काल गुप्तवंश के साथ ही आरम्भ होता है जिसके प्रवर्तक चन्द्रगुप्त प्रथम (320 ई.) थे। समुद्रगुप्त का नामोल्लेख कवि के रूप में पहले ही हो चुका है। समुद्रगुप्त के अनन्तर चन्द्रगुप्त द्वितीय भी साहित्यिक रुचि के पुरुष थे। कालिदास ने अपनी कृतियों का निर्माण कब किया, यह कहना यद्यपि कठिन है फिर भी बहुत सारे समालोचक विद्वान् उनको गुप्तकालीन ही स्वीकार करते हैं।

10.4.1 कालिदास

कविकुलगुरु महाकवि कालिदास ने तीन नाटकों अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोवर्शीयम् तथा मालविकाग्निमित्रम् के अतिरिक्त रघुवंश, कुमारसम्भव, ऋतुसंहार और मेघदूत की रचना की है। उनके समय और व्यक्तित्व के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी पता नहीं है। फिर भी कालिदास ने अपनी कृतियों में अपने समय के भारतवर्ष का और इसके विभागों का नामोल्लेख किया है। उनका महाकाव्य रघुवंश अठारह सर्गो में लिखा हुआ महाकाव्य है। इसमें रघुकुल का वर्णन है। कथा और काव्यों में कालिदास ऐसी परमकोटि को प्राप्त हुए हैं जो उनसे पहले या बाद में और कोई प्राप्त नहीं कर सका है। रघुवंश का विषय विविध और व्यापक है जिससे कालिदास को अपनी कल्पना शक्ति प्रदर्शन करने का पूर्ण सुअवसर प्राप्त हुआ है। रघुवंश सूत्रबद्ध काव्य की अपेक्षा चित्रों की एक तेजोराशि है। कालिदास सुघटित वर्णनों के लिए आख्यान विषयक अभिरुचि का हनन कभी नहीं करते हैं। हृदयंगमता और अभिरुचि के लिए उनकी अपनी निश्चितता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

सचमुच कालिदास में भी अन्य संस्कृत कवियों की तरह, अपने पात्रों की 'सर्वथाभद्र' पात्रों के रूप में चित्रण करने की प्रवृत्ति विद्यमान है। फिर भी यह मानना होगा कि इन आदर्श पात्रों का अपना व्यक्तित्व है। रघुवंश में कई विषय अद्भुत कवि कल्पनाश्रित रीति और संगीत की शक्ति से आपस में ग्रथित हैं। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि कुछ अपवादों को छोड़कर कालिदास को शब्दाडम्बर के कृत्रिम प्रयोग में अभिरुचि नहीं है। उसकी कृतियाँ मानव भावनाओं से परिपूर्ण हैं।

कालिदास की एक और कृति कुमारसम्भव महाकाव्य है जिसके आठ सर्ग हैं। यह कालिदास की सम्पूर्ण रचना है या नहीं है इसके विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता। आठ सर्ग के आगे भी सर्ग मिलते हैं परन्तु वे किसी अज्ञात के द्वारा लिखा गया माना जाता है। काव्य का प्रारम्भ मुख्य कथा से आरम्भ होता है और प्रथम सर्ग में हिमालय का बहुत ही रमणीय वर्णन मिलता है।

यह काव्य प्रचुर वैचित्र्य कल्पना की उज्ज्वलता तथा भावों की अभिव्यक्ति के कारण आधुनिक अभिरुचि के अनुकूल है। कुमारसम्भवम् में एक ओर वसन्त ऋतु की रमणीयता तथा सम्भोगश्रृंगार का हर्षोल्लास है तो दूसरी ओर प्रियतमा की मृत्यु से छाया हुआ घोर विषाद।

आनन्दवर्धनाचार्य का कथन है कि कई आलोचकों ने देवताओं के रतिभाव के वर्णनों की आलोचना की है। यह विषय आधुनिक अभिरुचि के अनुकूल प्रतीत नहीं होता है क्योंकि मानवीय भावनाओं को अलौकिक रूप दिया गया है। इस कृति के आदर्श पर वाल्मीकि का प्रभाव पड़ा है। तारकासुर का वर्णन रावण के वर्णन से प्रभावित है।

यह काव्य अधूरा क्यों रहा यह समस्या बहुत ही उलझी हुई है। हो सकता है कि यह हस्तलिखित प्रति में नष्ट हो गया हो या सम्भव है कि कवि ने इस काव्य को अपने समकालीन पण्डितों की आलोचना के कारण अधूरा ही छोड़ दिया हो। चूँकि रघुवंश बाद की रचना है, यह कहना युक्तिसंगत नहीं होगा कि कवि की मृत्यु के कारण यह काव्य पूरा नहीं हो सका, निःसंदेह कवि द्वितीय भाग पूरा करने की प्रतिज्ञा पहले भाग में कर चुके हैं।

महाकवि कालिदास के विचार

महाकवि कालिदास की रचनाओं में तत्कालीन वेदादिशास्त्र प्रतिपादित-धर्म के सिद्धान्त मिलते हैं। वह चार वर्णों और चार आश्रमों के पक्षपाती हैं। उन्होंने आदर्श ब्राह्मण और आदर्श क्षत्रिय का वर्णन किया है। जीवन के चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में उनका पूर्ण विश्वास है। यद्यपि कालिदास ने प्रेम संबंधी चित्रों को चित्रित किया है परन्तु वे इंद्रियपरक नहीं है। शास्त्रों के अनुसार पुत्र प्राप्ति आवश्यक है। कालिदास ने रघुवंश के आरम्भ में स्पष्ट कहा है रघुवंशी पुत्र प्राप्ति के लिए गृहस्थ जीवन को स्वीकार करते थे।

ऐसा ज्ञात होता है कि कालिदास ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवों की पारमार्थिक एकता का तथा जगत्-प्रकृति के बारे में सांख्य और योगदर्शन के सिद्धान्तों को मानने वाले हैं। उन्होंने कई बार तीन गुणों का उल्लेख किया है तथा कुछ योगासनों का भी निरूपण किया है। प्रो. कीथ का कथन है कि कालिदास में मानव हृदय के द्वंद्वों का कोई समाधान सम्भव नहीं है। उनके अनुसार कालिदास ब्राह्मण धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस कारण से कई पाश्चात्य विद्वान् कालिदास की रचनाओं की आलोचना करते हैं

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

किन्तु भारतीय सहृदय को कालिदास की कृतियाँ अत्यधिक प्रभावित करती हैं जिनमें कर्म तथा पुनर्जन्म सिद्धान्तों में पूर्ण विश्वास प्रकट किया गया है।

महाकवि कालिदास की शैली

कविकुल गुरु कालिदास संस्कृत साहित्य के एक स्वर से सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। निर्दोषता और लालित्य में वे अश्वघोष से भी उत्कृष्ट हैं और उत्तरकालीन कवियों की अपरिमितता से मुक्त हैं। दण्डी का कथन है कि ''कालिदास ने वैदर्भी रीति को अपनाया है तथा ध्वनि साम्य का ध्यान रखते हुए शब्दों का प्रयोग साधारण अर्थ में किया है।'' कालिदास सर्वसाधारणजनों के कवि हैं। यद्यपि उन्होंने भूपालों और देवों के बारे में लिखा है फिर भी जनसाधारण के लिए भी लिखा है। राजाओं का चित्रण शूरवीरों के रूप में किया गया है। उनका जीवन जन सामान्य के लिए एक आदर्श है तथा वे देश की समृद्धि के लिए काम करते हैं। पुरोहितों का चित्रण भी महत्त्वास्पद है। वे अपने नृपों और उनके अनुयायियों को हितावह उपदेश देते हैं। देवों का वर्णन करते समय कालिदास ने उनको मानवीय रंग से रंजित किया है।

कालिदास के लिए संसार पाप और व्यथा का स्थान नहीं है। यहाँ सौन्दर्य तथा हर्ष विराजमान है। उन्होंने प्रकृति के परम आनन्ददायी रूप का वर्णन किया है। सौन्दर्य की उनकी अपनी कल्पनाएँ हैं। कालिदास के अनुसार सौन्दर्य वर्णनातीत है, केवल हृदय से ही उसका अनुभव हो सकता है।

कालिदास की प्रशंसा पूर्वीय तथा पश्चिमीय विद्वानों ने समान रूप से की है। प्राकृतिक सौन्दर्य का मानवीय भावनाओं के साथ एकीकरण करने के लिए कालिदास प्रशंसा के पात्र हैं। उसने ऐसे अनुपम काव्य का निर्माण किया है जिसमें मानव-हितवाद, अद्‌भुत-कल्पनावाद तथा प्रकृति प्रेम का चित्रण है। काव्य के प्रधान अंग शब्द रचना, कल्पना और ध्वनि आदि सभी उनकी रचनाओं में रमणीय रूप से विद्यमान है। कालिदास में श्रुतिकटु तथा असंस्कृत कुछ भी नहीं पाया जाता। उनके काव्य की एक और विशेषता यह है कि वे वाच्य की अपेक्षा ध्वनि का अधिक प्रयोग करते है। कुमारसम्भव के निम्नलिखित पद्य से उनकी व्यंजनाशक्ति का पता चलता है। जिसमें पार्वती संभ्रान्त स्थिति में दिखाई गई है-

"एवं वादिनी देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।

लीलाकमलपत्रणि गणयामास पार्वती।।" (कुमारसंभव 6-84)

कई आलोचकों के अनुसार निम्नलिखित पद्य में 'राजा' शब्द व्यंग्यार्थ से परिपूर्ण है-

"वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम

मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य तत्किं सदृशं कुलस्य।।"

कालिदास ने उपमाओं की विषय सामग्री उपयुक्त विषयानुकूल वातावरण से ही ली है। अतएव वे उपमा सम्राट कहे गये तथा संस्कृत साहित्य परम्परा में उपमाओं के लिए कालिदास की निपुणता को ही स्वीकार करती है। उनकी उपमाएँ असाधारण एवं मनोरम होती है। उनमें लिंगसाम्य, भावसाम्य और रमणीयता का अद्‌भुत समन्वय है। वे सर्वांगीण और व्यापक हैं। उनमें काव्यशास्त्र, दर्शन, व्याकरण और वेदों में प्राप्त भावों और सिद्धान्तों का सुन्दर प्रतिपादन है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

निम्नलिखित पद्य में कालिदास की उपमा का सौन्दर्य अपूर्व है, जिसके आधार पर उनकी 'दीपशिखा' उपाधि दी गई थी-

"संचारिणी दीपशिखेव रात्रै यं यं व्यतीयाय पतिम्बरा सा,

नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विषर्णभावं स स भूमिपालः।"

कालिदास अपनी उपमाओं के लिए ही नहीं अर्थान्तरन्यास के लिए भी प्रसिद्ध हैं। कहा भी जाता है **'अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते।'** इनका विषय वैविध्य, वैदुष्य, कलात्मक प्रवीणता और मनोज्ञता द्रष्टव्य है। कभी-कभी उनके रूपक निःसंदेह व्याकरण आदि की दृष्टि से असहज रहते हैं। कालिदास न केवल कल्पना में अपितु पर्वतों, नदियों तथा मानवविचारों के सुस्पष्ट चित्रण में भी उत्कृष्ट हैं। उनमें वैचित्र्य और वैविध्य दोनों हैं। वे अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक हैं।

कालिदास छन्दों के प्रयोग में बड़े निपुण हैं और नाना छन्दों के प्रयोग में पूर्ण कौशल दिखाते हैं। लौकिक संस्कृत के प्रायः सभी आवश्यक छन्दों का उन्होंने प्रयोग किया है। उन्हें छोटे छन्द अधिक प्रिय हैं, उनमें भी उपजाति अनुष्टुप् सर्वाधिक प्रिय छन्द हैं, बड़े छन्दों का प्रायः सर्गान्त में प्रयोग किया है। उनके समान के कवि के आज तक प्राप्त न होने से अनामिका अनामिका ही रह गयी—**"प्रद्यापि तत्तुल्यक्वेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।"**

10.4.2 अश्वघोष

महाकवि अश्वघोष भी संस्कृत के महान् कवियों में से एक हैं। कई विद्वान् अश्वघोष का समय कालिदास से पूर्व मानते हैं। वे एक महाकवि, नाटककार तथा दार्शनिक थे किन्तु उनकी ख्याति उनके काव्य के लिए अधिक है। पचास साल पूर्व तक अश्वघोष का केवल नाम मात्र ही ज्ञात था किन्तु अब उनकी कृतियां प्रकाशित हुई हैं। उनके निजी जीवन के बारे में बहुत कम ज्ञान है। इतना तो हम जानते हैं कि वे बौद्ध भिक्षु थे और उनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। यद्यपि उनकी कृतियाँ पाण्डित्य का प्रदर्शन करती हैं किन्तु वे अपने आपको संस्कृत काव्य में प्रवीण स्थापित करते हैं। सम्भव है कि वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए हों और बाद में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली हो। चीनी परम्परा के अनुसार वे कनिष्क के समकालीन थे अतः उनका समय प्रथम शताब्दी ई. माना जाता है। यद्यपि वे बौद्ध मत के हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी थे किन्तु उन्होंने बुद्ध के व्यक्तिगत प्रेम तथा भक्ति पर बल दिया है जिसने बाद में महायान भक्ति के लिए मार्ग प्रदर्शन किया। उनके पाण्डित्य ने उनके काव्य को समृद्ध कर दिया है किन्तु उनकी कृति की शैली सादगी से ओतप्रोत है अतः वह केवल मात्र साहित्यिक होने नहीं पायी है।

उत्तरकालीन बौद्ध धर्म में अश्वघोष को एक गद्यकाव्य लेखक माना गया है और साथ ही अन्य कई धर्मग्रन्थों के रचयिता के रूप में भी प्रसिद्धि प्राप्त है। ऐसी संदिग्ध कृतियों में महायान-श्रद्धोत्पाद-शास्त्र का नाम लिया जाता है। दूसरी ऐसी ही कृतियों में वज्रसूचि तथा गाण्डिव-स्तोत्रगाथा का भी उल्लेख किया जाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

यहाँ पर हमारा प्रयोजन अश्वघोष के दो महाकाव्यों-बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द से है। बुद्धचरित की एक हस्तलिखित प्रति मिलती है जिसमें तेरह सर्ग और चौदहवें सर्ग के केवल चार पद्य हैं। इस ग्रन्थ का अनुवाद चीनी भाषा में (414-421 ई. में) हो चुका है और इत्सिंग ने इसे अश्वघोष की रचना बतलाया है। केवल चीनी अनुवाद ही नहीं तिब्बती अनुवाद भी हमें बतलाता है कि असली बुद्धचरित में 28 सर्ग थे। कहानी बुद्ध निर्माण तक पूर्ण है। बुद्धचरित यथार्थतः ऐसे कवि की रचना है जो बुद्ध और उसके सिद्धान्तों का परमभक्त है। अश्वघोष अपनी धार्मिक भावनाओं को काव्यात्मक स्वयंप्रवृत्त अन्तर्वेग से विलीन करने में सफल हुए हैं। सर्वार्थसिद्धि की नगर की गलियों व बाजारों के मध्य यात्र, कमनीय कामिनियों का उसे देखने के लिए इकट्ठा होना, बीमारी जरा तथा मृत्यु का चित्रण यह सब प्रशंसा के योग्य हैं। सिद्धार्थ का मकरध्वज के साथ संग्राम-चित्रण महाकाव्य के एक उत्पादन-तत्त्व संग्राम-चित्रण को पूर्ण करता है। यह कृति केवल बौद्ध मत के सिद्धान्तों का चित्रण मात्र अथवा घटनाओं का वर्णन मात्र ही नहीं है अपितु बौद्ध आख्यान का वास्तविक काव्यात्मक निरूपण है।

अठारह सर्गों में सुरक्षित सौन्दरनन्द में ऐतिहासिक महाकाव्य की पद्धति का अनुसरण करते हुए बुद्ध के सौतेले भाई नन्द और सुन्दरी की कथा दी गई है और बतलाया गया है कि बुद्ध ने नन्द को, जो सुन्दरी के प्रेम में डूबा हुआ था, किस प्रकार अपने सम्प्रदाय का अनुगामी बनाया। इसकी कथा महावग्ग तथा निदान कथा से ली गई है। उनमें जो विषय दिया गया है वह काव्य की रचना में बहुत कम सहायक है किन्तु अश्वघोष ने अपने कवित्व से उस न्यून सामग्री को वास्तविक काव्य में परिणत कर दिया है। इसमें अत्यधिक आख्यानात्मक आकर्षण है। अहंकार के अवगुणों की निन्दा की गई है। यहाँ पर निःसंदेह, उपदेशक अश्वघोष कवि अश्वघोष से उत्कृष्ट हैं। किन्तु इसके काव्यात्मक तथा धार्मिक प्रवृत्ति के द्वन्द्व के मध्य ही उनके काव्य की वास्तविकता झलकती है। जो कुछ वे कहना चाहते हैं उसमें महत्त्वपूर्ण विश्वास रखने से अश्वघोष सहज और सरल हो पाये है और उनकी कृति में धाराप्रवाहता आ गई है।

यद्यपि अश्वघोष के काव्य में उत्तरकालीन काव्य की परिष्कृतता का अभाव है किन्तु इसकी पूर्ति भावनाओं की नवीनता, शब्द रचना साधारण तथा सरल निष्ठा की उदारता से हुई है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अश्वघोष अपने समय के ब्राह्मण तथा बौद्ध पाण्डित्य से अनभिज्ञ थे। उससे अधिक वह काव्यकला के प्रदर्शन में कुशल थे। वे स्वयं घोषित करते हैं कि वे जनसाधारण के लिए लिख रहे हैं न केवल विद्वत्सभा के लिए, शान्ति प्राप्ति के लिए न कि काव्यकला प्रदर्शन के लिए। वे स्वभाव से कवि हैं तथा प्रशिक्षण से अत्यधिक शिष्ट व संस्कृत हैं किन्तु निष्ठा से धार्मिक भक्त हैं। इस तरह की संहति से उनके भावों को सत्यता व अकृत्रिमता प्राप्त हुई है जो कि बाद की कविता में दुर्लभ है। अतः उनके आख्यान कभी नीरस नहीं हैं, घटनाओं का चयन असम्बद्ध नहीं है, तथा शब्द रचना व भाषा परिश्रम साध्य नहीं है। उनकी कविता परिबद्ध संगीत से स्फुटित हो उठी है चाहे उसमें सुव्यवस्थित स्वरमाधुर्य न हो। उनकी विषय सामग्री तथा काव्यात्मक गुण अत्धधिक प्रभाव डालने वाले हैं क्योंकि वे रीति तथा कला प्रदर्शन पर बल नहीं देते। निःसन्देह अश्वघोष का अनुसरण उत्तरकालीन कवियों ने नहीं किया।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

तुचोवोऽमश्वघोषो यो
बौद्धदर्शनमर्मधुक्
कवितावनितासारः
सोऽसंगोऽपि ससंदृक्।।

अश्वघोष वैदर्भी रीति के कवि हैं। वे रामायण, महाभारत और कालिदास की शैली से अधिक प्रभावित हैं, अतः उनकी शैली में प्रसाद और माधुर्य का बाहुल्य है। उनका दर्शनशास्त्र और व्याकरण पर असाधारण अधिकार है, अतः वे दर्शनों के सूक्ष्म तत्त्वों की अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में रखने में समर्थ हैं। व्याकरण के पाण्डित्य के कारण वे कहीं-कहीं पर शब्द-चित्रों का चित्र सा प्रस्तुत करते हैं। कुछ स्थलों पर ऐसे क्रियापदों का प्रयोग है जिनसे एक-दो नहीं, चार-चार अर्थ निकलते हैं (सौन्दरनन्द-1-15) उन्होंने अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त उपमा और अर्थान्तरन्यास अलंकारों का बहुत सुन्दरता से प्रयोग किया है। संयोग और विप्रलम्भ शृंगार तथा करुण रस का मनोहर प्रतिपादन है।

भाषा-सौष्ठव

भावों के अनुसार भाषा में उतार-चढ़ाव तथा संतुलित भाषा का प्रयोग अश्वघोष की विशेषता है। इसी भाषा-सौष्ठव के कारण कहीं-कहीं लयात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है बुद्ध के उपदेश से प्रतिबुद्ध नन्द की अवस्था एक विरक्त भिक्षु की सी है। क्या ही सुन्दर भाषा में उसका वर्णन है—

न मे प्रियं किंचन नाप्रियं मे
न मेऽनुरोधोऽस्ति कुतो विरोधः।
तयोरभावात् सुखितोऽस्मि सद्यो
हिमातपाभ्यामिव विप्रमुक्तः।।

अश्वघोष ने गूढ़ से गूढ़ भावों को सरल और सुबोध भाषा में व्यक्त किया है। कहीं-कहीं कूट शैली का भी आश्रय लिया गया है।

भावाभिव्यक्ति

अश्वघोष ने कहीं-कहीं अत्यन्त मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है। शुद्धोधन की आत्म-शुद्धि का सुन्दर वर्णन है कि उन्होंने तीर्थ-जल से शरीर को और गुणरूपी जल से मन को पवित्र किया। उन्होंने वेदोक्त सोमरस का पान किया और हार्दिक सुख की रक्षा की-

"सस्नौ शरीरं पवितुं मनश्च
तीर्थम्बुभिश्चैव गुणाम्बुभिश्च।
वेदोपदिष्टं सममात्मजं च
सोमं पपौ शान्तिसुखं च हार्दम्।।" (बुद्ध 2-37)

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

रस परिपाक

अश्वघोष ने शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया है। संभोग शृंगार का सुन्दर उदाहरण नन्द सुन्दरी के अनुराग वर्णन में मिलता है। नन्द और सुन्दरी एक दूसरे पर किनर-किनरी के तुल्य अनुरक्त थे और वे रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर विषय-भोग में लिप्त रहते थे।

"भावानुरक्तौ गिरिनिर्झरस्थो
तौ किंनरीकिंपुरुषावोभौ।
चिक्रीडतुश्चाभि विरेजतुश्च
रूपाश्रियाऽन्योन्यमिवाक्षिपन्तौ।।" (सौन्दर- 4-10)

वर्णन वैचित्र्य

अश्वघोष ने आश्रम, नदी, वन, वृक्षादि प्राकृतिक वस्तुओं, बुद्ध-मार युद्ध, शृंगार, करुण और वीर आदि रसों और स्वर्ग-निर्वाण आदि का मार्मिक वर्णन अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। वर्णनों में यथार्थता, सजीवता, स्वाभाविकता और चित्रात्मकता है।

अश्वघोष के प्रिय छन्द अनुष्टुप् और उपजाति है। बुद्धचरित और सौन्दरनन्द में अधिकांश सर्गो में उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है। उसके बाद अनुष्टुप् का प्रयोग हुआ है। सर्गान्त श्लोकों में वंशस्थ, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, और शार्दुलविक्रीडित का प्रयोग किया गया है।

अश्वघोष अनेक विषयों के ज्ञाता थे। उन्होंने व्याकरण, दर्शन, पुराण, राजनीति, नीतिशास्त्र, आर्युवेद कामशास्त्र और बौद्ध साहित्य का गंभीर अध्ययन, मनन और चिन्तन किया था।

उदार आशय होते हुए भी कालिदास अपने काव्य में किसी एक निश्चित लक्ष्य को लेकर नहीं चलते हैं किन्तु अश्वघोष की कविता में कोई एक निश्चित लक्ष्य उपलब्ध होता है। सौन्दरनन्द की अन्तिम पंक्तियों में वे कहते हैं, इस कृति का विषय मोक्ष प्राप्ति है, शान्ति है न कि लौकिक सुख प्राप्ति। इसी लक्ष्य में इसका आरम्भ किया गया है। मोक्ष साधनों के अतिरिक्त जिन विषयों का समावेश किया गया है वे कविता के साधन हैं, ताकि शहद में सम्मिश्रित कड़वी औषधि की तरह पान करते हुए यह कृति हृदय को अभिमत प्रतीत हो। कालिदास में इस तरह के लक्ष्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने जीवन के उज्वल पक्ष को अपनाया है किन्तु अश्वघोष जीवन के अनुज्जवल पक्ष पर बल देते हैं। इसका कारण यही है कि दोनों भिन्न-भिन्न धार्मिक सिद्धान्तों पर विश्वास रखते थे।

10.4.3 भारवि

महाकवि भारवि के जीवन के विषय में विश्वस्त सूत्र से कुछ भी ज्ञात नहीं है। दण्डी द्वारा रचित अवन्ति-सुन्दरी कथा के अनुसार भारवि दण्डिन् के प्रपितामह थे तथा पुलकेशिन् द्वितीय के छोटे भाई (615 ई. के लगभग) के सभा पण्डित थे। अवन्ति सुन्दरी कथा में यह भी उल्लेख है कि भारवि सिंह विष्णु के आदि कवि

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

थे । सिंह विष्णु का शासन काल 575-600 ई. के मध्य है। सिंह विष्णु से मिलने के समय भारवि 20 वर्ष के थे अतः भारवि का जन्म समय 560 ई. के लगभग सिद्ध होता है। बाह्य साक्ष्य से ज्ञात होता है कि वह 634 ई. में पैदा हुए थे। काशिका-वृत्ति में इनकी रचना में से उदाहरण दिए गए हैं। वे कालिदास से प्रभावित है और इन्होंने माघ के ऊपर अपना प्रभाव डाला है। ऐहोल शिलालेख के (634 ई.) लेखक रविकीर्ति ने अपने आपको कालिदास और भारवि का समकक्ष कवि बताया है अतः भारवि की अपर सीमा 634 ई- है। अतः हम भारवि का समय 500 ई. से 550 ई. मान सकते हैं। भारवि अपने अर्थ गौरव के लिए लोक प्रसिद्ध हैं **"भारवरेर्थगौरवम्।"** भारवि का वैदुष्य व्यापक है। उन्होंने जीवन की ऊँच-नीच सभी अवस्थाओं का वैयक्तिक अनुभव प्राप्त किया था। अतः उनके सैकड़ों सुभाषितों में वेद, दर्शन, नीति, राजनीति, पुराण, ज्योतिष, कामशास्त्र, कृषि, काव्य-शास्त्र, अलंकारशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र आदि का अगाध पाण्डित्य मिलता है। भारवि का नीतिशास्त्रीय ज्ञान बहुत व्यापक था जैसे-**"असाधुयोग हि जयान्तरायाः प्रमाथिनीनां विपदां पदानि"**। उनके राजनीति विषयक ज्ञान का भी कोई अन्त नहीं था-**"व्रजन्ति ते मूठधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः"**।

भारवि के किरातार्जुनीय का विषय महाभारत के वनपर्व से लिया गया है, जब पाण्डव द्रौपदी सहित वनवास की अवस्था में रहते थे। अर्जुन से कहा जाता है कि वह हिमालय पर जाकर कठिन तपस्या द्वारा देवों को प्रसन्न करके उनसे दिव्यास्त्र प्राप्त करें। सीधी-सादी कहानी अठारह सर्गों में उपलब्ध है। इसका कारण भारवि के कृत्रिम वर्णनों की प्रचुरता है। भारवि निबन्ध अथवा रीति वैलक्ष्यण्य के अनुयायी हैं। आदि से अन्त तक उनका काव्य साहसिक व वीर उपादानों से युक्त है। युधिष्ठिर शान्तिप्रिय है तथा भीमसेन उद्धृत शूरबीर। वेदव्यास दोनों के बीच मध्यवर्ती होकर परामर्श देते हैं।

भारवि की शैली उदात्त एवं भव्य है। शैली की सादगी उनके विषयों के उपयुक्त नहीं है। विचारों की गम्भीरता तथा भाषा के गौरव के लिए भारवि की प्रशंसा की गई है किन्तु उसकी शब्दरचना अस्पष्ट नहीं है। जब युधिष्ठिर भीम से कहता है तो प्रतीत होता है कि भारवि अपनी ही शैली का बखान कर रहे हैं-

"स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं यवचित्।।"

'पदों ने स्फुटता छोड़ी नहीं है, अर्थगौरव को अस्वीकार नहीं किया गया है। प्रतिवचन की अपनी अर्थता रचित की गई है (अर्थात् कहीं भी पुनरुक्ति नहीं है)। फिर भी अर्थ की एकता अथवा वचन-सामर्थ्य को तिलांजलि नहीं दी गई है।'

भारवि उपदेश नहीं देते हैं। वे वीरता का प्रवचन करते हैं किन्तु आदेश के रूप में नहीं। किरातार्जुनीम के आरम्भ में दुर्योधन के राज्य का वर्णन किया गया है। इससे भारवि की राज्य प्रपंचो की जानकारी की सूक्ष्मता का पता चलता है। भारवि वैराग्य तथा संन्यास की निन्दा करते हैं। वे वीर चरित के द्वारा उपदेश

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

देते है। भारवि ने संसार का रूप सौन्दर्य देखा है। भारवि का धर्म कविता में स्पष्ट है, अर्थात् उनका धर्म पराक्रम की आराधना का धर्म है।

भारवि ने भाषा, भाव, काव्य सौन्दर्य, रस परिपाक, वर्णन वैचित्र्य, अलंकार प्रयोग, विविध छन्द-योजना और शास्त्रीय पाण्डित्य का सुन्दर प्रदर्शन किया है। उनकी भाषा में प्रौढ़ता, ओज और प्रवाह है। उनकी शब्द योजना भावानुकूल है।

भारवि ने मानवी प्राकृति का सूक्ष्मरूप से अध्ययन किया है तथा वे मानव व्यवहार के सफल प्रदर्शक हैं। उनका चरित्र-चित्रण उत्कृष्ट है। द्रौपदी तथा भीम के वक्तव्य इसके साक्ष्य हैं। युधिष्ठिर, जो मूल कथानक में सुपराजेय है इस काव्य में शूरवीर दिखाया गया है। भीम जो मूल कथानक में साहिसी शूरवीर है, यहां पर राजनीति के विषय में एक सुन्दर भाषण देता है। जहाँ तक भाषा की सामग्री का प्रश्न है वह प्राचीन ग्रन्थों से ली गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि भीम की द्रौपदी के प्रति प्रबल उक्ति के द्वारा, भारवि अपने देशवासियों को विदेशी आक्रमणकारियों से लड़ने के लिए प्रवृत्त होने का प्रोत्साहन देते हैं। अतः भारवि को मानव प्रकृति का तथा शूरवीरता का कवि कहा जा सकता है। भारवि ने रमणीयता की अपेक्षा साहसिकता पर अधिक बल दिया है। अलंकारों के प्रयोग में उनका नैपुण्य दर्शनीय है। 15वें सर्ग में चित्रलंकारों की बहुरंगी छटा है। कहीं पदादि यमक हैं, कहीं गोमूत्रिका है, कहीं सर्वतोभद्र, कहीं एक ही श्लोक उल्टा-सीधा एक सा है, कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध एक सा है, कहीं द्वयर्थक, त्र्यर्थक तो कहीं चार अर्थ वाले श्लोक हैं-

"न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नोनो नानेन नुन्ननुनत्॥"

ऐसे प्रयोगों के होने पर भी भारवि की शैली में लम्बे-लम्बे समास नहीं हैं। सबको मिला-जुला कर देखा जाय तो इसकी शैली में क्लिष्टता का दोष नहीं है। भारवि निपुण वैयाकरण थे। वे अप्रसिद्ध नियमों के प्रयोग में अपने व्याकरण ज्ञान का परिचय देते हैं। विभिन्न छन्दों का प्रयोग करने में वे पूर्ण सिद्ध हैं। कभी-कभी उन्होंने कठिन और अप्रयुक्त छन्दों का भी प्रयोग किया है। उनका अर्थ गौरव, अर्थ गाम्भीर्य एवं अर्थ की सार्वकालिकता सार्वदेशिकता एवं सार्वजनीत्त्व में है। पद-पद पर अर्थ गौरव उनके नैपुण्य और गम्भीर चिन्तन का परिचायक है। जिस प्रकार उनके अर्थ उनके काल में स्वकार्य थे, उसी प्रकार आज भी हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

10.4.4 भट्टि

महाकवि भट्टि भी एक प्रसिद्ध कवि हैं। वे व्याकरण और काव्य शास्त्र के महान् पण्डित थे। इनके काव्य का नाम 'रावणवध' है जिसको साधारणतया भट्टिकाव्य कहते हैं। इसके 22 सर्गों में लंका विजय और राम के अभिषेक तक की कथा वर्णित है। कोई-कोई कहते हैं कि भट्टि तथा वत्सभट्टि दोनों एक ही व्यक्ति के नाम हैं। अन्य मत के अनुसार भर्तुहरि भी भट्टि हैं। किन्तु यह सिद्धान्त माननीय नहीं हो सकता। अधिक सम्भावना यही है कि भट्टि कोई पृथक ही व्यक्ति है। भट्टि को हम 600 ई. से 700 ई. तक के समय में रख सकते है।

©DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

भारतीय लेखक भट्टि-काव्य को महाकाव्य मानते हैं। इस काव्य में 22 सर्ग हैं। इसमें रामायण की कथा भी वर्णित है और व्याकरण के नियमों के उदाहरण भी दिये गये हैं। भट्टि का कहना है कि यह रचना व्याकरण का अभ्यास करने वालों के लिए एक दीपक के समान है। हम भट्टि के इस कथन को एक ओर करके काव्य के रूप में भी इसे पढ़ सकते हैं। किन्तु उनकी यह चेतावनी सत्य ही है कि पण्डितों के लिए वह काव्य हर्ष का विषय है और अपण्डितों की समझ से बाहर है। काव्यात्मक अभिरुचि इस स्थिति को न्याय नहीं समझती है। किन्तु हमें यह मानना होगा कि यह काव्य, संसार के साहित्य में अपूर्व कृति है जो व्याकरण के नियमों व रूपों के विवरण के लक्ष्य को रख कर लिखा गया है।

भट्टि अपने वर्णनों में तथा वक्तव्य में विविधता लाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु उनकी मौलिकता नगण्य है तथा श्रमसाध्य भाषा का प्रयोग काव्य रचना का बाधक बन गया है। कवि को पद रचना में स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है क्योंकि वे उसी प्रकार की पद रचना का प्रयोग करते हैं जिससे व्याकरण के नियम व रूपों का प्रयोग हो। ऐसे विषय को लक्ष्य में रखकर ही यदि काव्य लिखा जाय तो मनुष्य की भावनाएँ तथा विचार गौण हो जाते हैं फिर भी भट्टि को यह श्रेय देना चाहिए कि उसके आख्यान दीर्घ नहीं है, अप्रासंगिक विषयों को भरमार नहीं है तथा भाषा की जटिलता नहीं है। कवित्व और भाव पक्ष की न्यूनता नहीं है। उसमें सरसता, सरलता और सहृदयता के साथ-साथ पाण्डित्य और चित्रलंकार प्रयोग भी है। भट्टि में वर्ण की अपूर्व क्षमता है। उनके सरस और सुन्दर भावों वाले श्लोक सुन्दर हैं। कवि का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी दर्शनीय है । व्याकरण के मनोरम उदाहरण भट्टि की प्रौढ़ता के परिचायक हैं।

10.4.5 माघ

महाकाव्यों के इतिहास में माघ का स्थान अत्यन्त उच्च है। माघ के पिता का नाम दत्तक सर्वाश्रय और पितामह का सुप्रभदेव था जो राजा वर्मलात का मंत्री था। वसन्तगढ़ से 625 ई. का एक शिलालेख मिला है जिसमें वर्मलात का नाम आया है। इस प्रमाण के आधार पर हम माघ का काल सातवीं शताव्दी के उत्तर में कहीं रख सकते हैं। उन्होंने काशिका के भाष्य लिखने वाले न्यासकार का उल्लेख किया है। माघ ने अपने महाकाव्य के कथानक का विषय महाभारत से लिया है। भारवि ने शिव की स्तुति की है तथा माघ ने विष्णु की। कालिदास आदि कवियों के ग्रन्थों के समान माघ का ग्रन्थ 'शिशपालवध' महाकाव्य में गिना जाता है जिसे माघकाव्य भी कहते हैं। कई बातों में वह अपने पुरस्सर भारवि से भी बढ़ गए हैं। प्राचीन भारतीय उक्ति के अनुसार "कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थ गौरव तथा दण्डी का पदलालित्य प्रशंसनीय हैं किन्तु माघ में ये तीनों गुण विद्यमान हैं-**"माघे सन्ति त्रयो गुणाः।"** माघ का वैदुष्य एकांगी न होकर सर्वांगीण हैं उसमें कालिदास के तुल्य सुन्दर उपमा का प्रयोग ही नहीं है, अपितु भारवि के तुल्य अर्थगौरव और दंडी के तुल्य पद-लालित्य भी है। माघ का यह दृष्टिकोण रहा है कि उनकी कविता में उनके समय तक प्रचलित सभी गुण आ जायें जिससे किसी भी दृष्टि से देखने पर उनका काव्य एकांगी या न्यून न हो। इसीलिए एक ओर उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है तो दूसरी ओर अर्थान्तरन्यासों की छटा दिखाई देती है। एक ओर भाषा सौष्ठव है तो दूसरी ओर भाव-गांभीर्य।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि **'माघे सन्ति त्रयोः गुणाः'** का यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि माघ उपमा प्रयोग में कालिदास से, अर्थगौरव में भारवि से तथा पदलालित्य में दंडी से बढ़कर हैं या उनके समकक्ष हैं। इस उक्ति का अभिप्राय है कि कालिदास आदि में एक-एक गुण मुख्यरूपेण है, पर माघ में ये तीनों गुण समष्टि रूप में विद्यमान हैं। इसी कारण यह कथन युक्तिसंगत है कि-

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिन पदलालित्यम् माघे अन्ति त्रयो गुणाः।।"

माघ की भाषा-शैली

माघ का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वह प्रसंगानुसार सरल से सरल और कठिन से कठिन पदावली के प्रयोग में पटु है, अतः उनके काव्य में कहीं प्रसाद है, कहीं माधुर्य और कहीं ओज। इसी प्रकार कहीं शृंगार के विविध भावों का सौन्दर्य हैं, तो कहीं वीर रस का प्रस्फुरण। भाव-सौन्दर्य और प्रसाद तथा माधुर्य का सुन्दर समन्वय का उदाहरण निम्नलिखित है -

"क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः।

यह भी कहा गया है कि भारवि का आकर्षण तभी तक रहा जब तक माघ का उदय नहीं हुआ था। माघ ने संस्कृत शब्दकोष का पूर्ण उपयोग किया है। माघ को भारवि तथा भट्टि से प्रेरणा प्राप्त हुई है। उसकी भाषा भारवि की जैसी विशद है किन्तु वाक्य रचना कुछ कठिन है। शिशुपालवध में कृष्ण के हाथों शिशुपाल के मारे जाने का वर्णन है। महाभारत में यह कहानी बहुत ही सादी है और कोई काव्यात्मक गुण नहीं है। किन्तु माघ ने इसमें सुघटित वर्णनों से अनेक सुन्दर सुधार कर दिये हैं तथा इसे एक महाकाव्य में परिणत कर दिया है। पहले दो सर्गों में कुछ गति है, तीसरे सर्ग से ग्याहरवें सर्ग तक सेना, क्रीड़ा, कामिनियों का प्रेमोल्लास, ऋतु आदि का वर्णन है।

माघ ने अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है जो उन्होंने कई स्रोतो से प्राप्त किया है। माघ द्वारा यमक अलंकार का प्रयोग पाण्डित्यपूर्ण हुआ है। उन्हें व्याकरण तथा शब्दकोष पर पूर्ण अधिकार है। माघ राजनीतिक ज्ञान का भी प्रदर्शन करते हैं। माघ और भारवि में प्रकृति की विविधता तथा रागरक्तिमा है किन्तु जीवन नहीं है। वे प्रकृति के सौन्दर्य से परिचित है किन्तु उसकी अनुभूति से नहीं।

माघ काव्य कला और व्याकरण दोनों में समान रूप से पटु है। शिशुपालवध में भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों ही उज्जवल हैं। उनके काव्य में वीर और श्रृंगार दोनों ही रसो का सुन्दर परिपाक हुआ है। वे एक साथ ही अर्थालंकारों और चित्रलकारों के प्रयोग में निपुण है। उनकी भाषा में परिष्कार, लालित्य प्रवाह और असाधारण भाववैविध्य है। उनकी भाषा में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है। माघ के काव्य में प्रसाद माधुर्य और ओज गुणों का संतुलित रूप मिलता है। माघ ने कहीं-कहीं अपनी अपूर्व कल्पना का परिचय दिया है (उदाहरण शिशु- 4/20), कहीं-कहीं पर भावगम्भीर्य और शास्त्रीय उपमाओं के कारण दुरुहता आ गई है। वास्तव में भारवि ने जिस रीति समुदाय का प्रवर्तन किया था वह भट्टि से होते हुए माघ पर परिपूर्ण हुआ।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

10.4.6 श्रीहर्ष

पाँच सर्वोत्कृष्ट महाकाव्यकर्ताओं की परम्परा में अन्तिम महाकवि श्रीहर्ष हैं। कालिदास, भारवि तथा माघ अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषता रखते हैं तथा श्रीहर्ष भिन्न प्रकार की विशेषता का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्रीहर्ष का लिखा हुआ महाकाव्य नैषधीयचरित है। नैषध नल का दूसरा नाम है। इस काव्य में 22 सर्ग है और नल तथा दमयन्ती के प्रेम की कहानी इस महाकाव्य का मुख्य विषय है। यह कृति भी अधूरी ही लिखी गयी है। कहा जाता है कि यह महाकाव्य पण्डितों के लिए एक बलवर्धक औषधि है। **'नैषध विद्वदौषधम्'** श्रीहर्ष ने नैषध में अपनी व्यत्पत्ति के प्रदर्शन का जो उपक्रम किया है, उससे पद-पद पर क्लिष्टता और दुरूहता आ गई है। विभिन्न शास्त्रीय सिद्धान्तों के वर्णन, श्लिष्ट और क्लिष्ट प्रयोग तथा बहुलता के प्रकाशन ने काव्य के गागर में सागर भर दिया है। नैषध में विशेष योग्यता प्राप्त करना विविध-शास्त्रज्ञता का परिचाययक है। श्रीहर्ष ने नैषध में श्लेषयुक्त प्रयोगों के अतिरिक्त व्याकरण, न्याय, वैशेषिक, सांख्य-योग, वेदान्त आदि के अठिन सिद्धान्तों का भी यत्र-तत्र वर्णन किया है। उन विभिन्न सिद्धान्तों को ठीक से न जानने वाले पाठक के लिये अर्थावगम दुःसाध्य हो जाता है। इसी कारण केवल पाश्चात्य विद्वानों के लिये ही नहीं, भारतीय विद्वानों के लिए भी नैषध टेढ़ी खीर ही है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि नैषध का भाव-पक्ष निर्बल हो गया और कला-पक्ष प्रबल। यह तथ्य एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा।

श्रीहर्ष ने अपवर्गो तृतीया' सूत्र पर व्यंग्य करते हुए कहा कि अपवर्ग (मोक्ष) के लिए तृतीय (स्त्री पुरुष से भिन्न नपुंसक) ही उपयुक्त है-

"उभयो प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मुनेर्मनः।

अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि।।"

श्रीहर्ष ने संस्कृत काव्यों के रीतिकाल में द्वयर्थक या त्र्यर्थक पद्य की रचना की एक नई दिशा को जन्म दिया है। पञ्चनली प्रसंग में उन्होंने पाँच अर्थों वाले श्लोकों की रचना की है। उनकी कल्पना शक्ति अत्यन्त उर्वर है। उनमें कालिदास की कल्पना, भारवि का अर्थगौरव, माघ का पाण्डित्य सभी एक साथ प्राप्त होते हैं यदि भारवि की ख्याति को माघ ने निष्प्रभ कर दिया तो श्रीहर्ष की काव्य सुषमा ने माघ को भी निरस्त कर दिया। कहा भी गया है कि-

"तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।।"

कवि होने के अतिरिक्त श्रीहर्ष बड़े दार्शनिक भी थे। अपने 'खण्डनखण्डखाद्य' ग्रंथ में इसने न्याय दर्शन का खण्डन करके वेदान्त की उपपत्ति सत्ता सिद्ध की है।

नैषध में दर्शन, विज्ञान तथा अन्य शास्त्रंगों का मिश्रण कविता में किया गया है। इसमें प्रकृति तथा मानव भावों के सुघटित वर्णन हैं। दर्शन का निरूपण उसके काव्य को हानि पहुँचाने की अपेक्षा लाभप्रद सिद्ध हुआ है। यद्यपि कामशास्त्र तथा दर्शन का निरूपण साथ हुआ है फिर भी इन दोनों में कोई विरोध नहीं दिखाई

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

देता है। नैषध महाकाव्य में पदलालित्य (शब्दों अथवा भावों की सुकोमलता) मुख्य गुण है-**"नैषधे पदलालित्यम्।"**

श्रीहर्ष की भाषा-शैली

श्रीहर्ष की भाषा विशद है। उसमें प्रौढ़ता और दुरूह से दुरूह भावों को प्रकट करने की असाधारण क्षमता है। भाषा प्राञ्जल, सरस, प्रवाह युक्त, ध्वन्यात्मक एवं लयात्मक है। रस के अनुकूल भाषा में प्रसाद माधुर्य और ओजगुण का समन्वय है। श्रीहर्ष में भावाभिव्यक्ति की अपूर्व शक्ति है। उनकी कल्पना भावों को मनोरम और सुकुमार बना देती है। यद्यपि उनमें कालिदास जैसा रस परिपाक नहीं है तथापि भाव प्रवणता का प्राचुर्य है। उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग स्वाभविक रूप से हुआ है। उसने सहज रूप में यमक और श्लेष का प्रयोग किया है और वे उसके काव्य में नैसर्गिक लगते हैं। उन्होंने केवल प्रासांगिक विषयों का ही वर्णन किया है। उनके वर्णनों में पाण्डित्य है। 22 सर्गों के बाद आगे क्यों नहीं लिखा, यह ज्ञात नहीं है, किन्तु काव्य स्वाभाविक रूप से नहीं चलता है। प्रशस्त तथा उत्कृष्ट काव्य के सभी आवश्यक तत्त्व इसमें मौजूद हैं तथा यह संगीत और गौरव से परिपूर्ण है। अलंकारों का प्रयोग विचारों में सौन्दर्य लाने वाला है। कथानक की गति कुछ मंद है जिससे काव्य को गौरव प्राप्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष का विश्वास है मानव में न केवल भावनाएँ है अपितु बुद्धि भी है। श्रीहर्ष में कला और बौद्धिकता का संगम पाया जाता है। यह अभिप्राय नहीं है कि श्रीहर्ष ने शब्दाडम्बर से मुक्त कविता नहीं लिखी है, देखिए एक उदाहरण-

"मदेकपुत्र जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधेस्त्वां करुणा रुणद्धि नो।।"

श्रीहर्ष की नवीनताएँ

श्रीहर्ष ने नैषध में कुछ एसे प्रयोग किये हैं, जो आज भी बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त हैं—

"जनानने कः करमर्पयिष्यति?" "आसितं नादत्त।।"

श्रीहर्ष ने वार्तालाप के प्रसंगों में नाटकीयता लाने का प्रयत्न किया है-"दृष्ट दृष्टम्, तदवद् ब्रवीषि न" इत्यादि। श्रीहर्ष ने अनेक नये शब्दों का योगदान भी किया जैसे-"भूजानि (राजा) सूननायक (कामदेव) अप्रतीतचर (पहले से अज्ञात) अधिगाभुका (जानने वाली) इत्यादि।

10.4.7 कुछ अप्रसिद्ध कवि

1. मेण्ठ

यह महाकवि काश्मीर के निवासी थे। इन्होंने हयग्रीववध लिखा है। इसमें भगवान् विष्णु के द्वारा हयग्रीव के वध की कथा है। यह महाकवि छठी शताब्दी के अन्तिम भाग में हुए होंगे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2. भीम

इस महाकवि ने रावणार्जुनीय लिखा है। इसमें 27 सर्ग हैं और रावण तथा कार्तवीर्यार्जुन के परस्पर युद्ध की कथा है। कवि का मुख्य उद्देश्य व्याकरण के नियमों का व्याख्यान करना है। इनका समय ईसा की सातवीं शताब्दी के आस-पास है।

3. शिवस्वामी

इन्होंने कप्फनाभ्युदय लिखा है। इसकी कथा अवदानशतक में आई हुई एक कथा पर आश्रित है और इसमें दक्षिण के किसी राज्य कप्फन के बौद्धधर्म की दीक्षा लेने का वर्णन है। कवि पर भारवि और माघ का प्रभाव पड़ा दिखाई देता है। इसमें कई रोचक वर्णन हैं। शिवस्वामी बौद्ध थे, जिसने काश्मीर-पति अवन्तिवर्मा के आश्रय में रह कर यह काव्य लिखा था।

4. रत्नाकर

महाकवि रत्नाकर भी काश्मीर के निवासी थे। रत्नाकर ने हरविजय लिखा है। इसमें अन्धक के ऊपर प्राप्त की हुई भगवान् शिव की विजय का वर्णन है। यह 50 सर्गो का एक विपुलकाय महाकाव्य है। इसे 850 ई. के आस-पास रत्नाकर ने लिखा। वे रीतिवादी कवि हैं।

5. मड्.ख

महाकवि मड्.ख कश्मीर के रहने वाले थे और बारहवीं शताब्दी में हुए। यह विख्यात काव्यशास्त्री रूय्यक के शिष्य थे। मङ्ख के श्रीकण्ठचरित काव्य में 25 सर्ग हैं। इसमें श्रीकण्ठ अर्थात् भगवान शिव द्वारा त्रिपुरासुर की पराजय का वर्णन है। इसमें नीति पर कई प्रवचन हैं तथा तत्कालीन शिष्ट समाज का वर्णन भी है। इस काव्य में विद्वानों की सभाओं का अत्यधिक रूचिकर वर्णन है।

ऊपर लिखित काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में लगभग सौ और काव्य प्राप्त होते हैं। हर एक काव्य का अपना अस्तित्व है यद्यपि बाद में काव्य यंत्रवत् लिखे प्रतीत होते हैं, उनकी रचना शैली में भी अपना व्यक्तित्व है। आधुनिक काल में भी कुछ कवियों ने कालिदास का अनुकरण करने का प्रयास किया है। जैसे गंगादेवी द्वारा रचित मथुराविजय। इसमें भाषा की सादगी तथा लालित्य विद्यमान है।

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य - प्रश्न

3. निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प का चयन कीजिए।

i. महाकवि कालिदास के कितने नाटक प्रसिद्ध है –

क. 5 ख. 4 ग. 3 घ. 6

ii. उपमा सम्राट कौन किसे कहा जाता है –

क. अश्वघोष ख. कालिदास ग. भारवि घ. श्रीहर्ष

iii. अश्वघोष की मुख्य रूप से प्रसिद्ध रचनाएँ हैं –

क. 4 ख. 6 ग. 8 घ. 2

iv. सौन्दरनन्द महाकाव्य में कितने सर्ग हैं –

क. 20 ख. 22 ग. 24 घ. 18

v. भारवेर्थगौरवम्' उक्ति प्रसिद्ध है –

क. कालिदास ख. दण्डी ग. भवभूति घ. भारवि

vi. भारवि की रचना का नाम क्या है –

क. कुमारसम्भवम् ख. किरातार्जुनीयम् ग. शिशुपालवधम् घ. रघुवंशम्

4. सही उत्तर का चयन कीजिए।

i. भट्टि-काव्य में सर्ग हैं – 22/24

ii. भट्टि-काव्य का अपर नाम है – सौन्दरनन्द/रावणवध

iii. शिशुपालवधम् के रचनाकार है – माघ/ भारवि

iv. शिशुपालवधम् में सर्गों की संख्या है – 20/22

v. नैषधीयचरितम् के रचनाकार हैं – श्रीहर्ष/ बाणभट्ट

vi. नैषधीयचरित में सर्गों की संख्या है – 22/26

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

10.5 सारांश

छात्रो! प्रस्तुत पाठ में आपने काव्य उद्भव के प्रारम्भिक चरण के विषय में जाना कि प्रायः काव्य का उद्भव वेदों की ऋचाओं और आख्यानों के रूप में हुआ और तत्पश्चात् रामायण, महाभारत को काव्य के उद्भव का वास्तविक काल माना गया जैसे-आदिकाव्य रामायण में वाल्मीकिकृत प्रमुख श्लोक 'मा प्रतिष्ठाः त्वमागमः शाश्वती समाः' के द्वारा काव्य के प्रारम्भ को माना जाता रहा है। धीरे-धीरे काव्य का विकास होता गया और लौकिक साहित्य के अन्तर्गत कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष इत्यादि प्रमुख महाकवि हुए जिन्होंने रघुवंश, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम् इत्यादि प्रसिद्ध महाकाव्यों की रचनाएँ की जो आज सम्पूर्ण संस्कृत जगत में अक्षुण्ण एवं कीर्तियुक्त हैं।

10.7 पारिभाषिक शब्दावली

गता - व्यतीत होना

संचारिणी - भ्रमण करना

पार्श्व - पीछे

अधोमुखी - नीचे की तरफ

श्रुति - वेद

प्रावृषि - वर्षाकाल

कमलपत्राणि - कमल के पत्ते

अंबर - आकाश

पद - शब्द

रमणीय - मनमोहक, सुन्दर

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

10.8 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1.	3.
i. वाक्य	i. 3
ii. आचार्य विश्वनाथ	ii. कालिदास
iii. राज्यसभा काव्य(Court-epic)	iii. 2
iv. सर्गों	iv. 18
v. केन्द्रीय विषय	v. भारवि
vi. धीरोदात्त	vi. किरातार्जुनीयम्
2.	4.
i. सही	i. 22
ii. सही	ii. रावणवध
iii. गलत	iii. माघ
iv. गलत	iv. 20
v. सही	v. श्रीहर्ष
vi. सही	vi. 22

10.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. महाकव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए इसके उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।
2. महाकव्य विधा में महाकवि कालिदास एवं उनकी रचनाओं के योगदान का विश्लेषण कीजिए।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

10.10 संदर्भ ग्रंथ

- उपाध्याय, बलदेव, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001.
- काणे, पी.वी., शास्त्री, इंद्रचंद्र(अनु.), *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2011.

9.11 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Keith, A.B., *History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.
- Shastri, Gaurinath, *A Concise History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ 11

खण्डकाव्य(गीतिकाव्य) का उद्भव एवं विकास

संरचना

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 गीतिकाव्य(खण्डकाव्य) का लक्षण

11.4 गीतिकाव्य का उद्भव एवं विकास

11.5 गीतिकाव्य की विशेषताएँ

11.6 प्रमुख गीतिकाव्य(खण्डकाव्य) का परिचय

11.6.1 कालिदास और मेघदूत

11.6.2 कालिदास और ऋतुसंहार

11.6.3 भर्तृहरि और शतकत्रय

11.6.4 जयदेव और गीतगोविन्द

11.6.5 अमरु और अमरुकशतक

11.6.6 अन्य गीतिकाव्य

11.7 सारांश

11.8 पारिभाषिक शब्दावली

11.9 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

11.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

11.11 संदर्भ ग्रंथ

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

11.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी –

- गीतिकाव्य(खण्डकाव्य) के स्वरूप को समझ पायेंगे।
- गीतिकाव्य के उद्गम और विकास को जानेंगे।
- कालिदास के गीतिकाव्य रचना मेघदूत तथा ऋतुसंहार के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- भतृहरि और जयदेव का परिचय एवं रचनाओं के विषय में जानेंगे।
- संस्कृत गीतिकाव्यों की विशेषताओं का अवबोध होगा।

11.2 प्रस्तावना

पूर्व पाठ में आपने पद्यकाव्य के मुख्य भेद महाकाव्य के विषय में अध्ययन किया और महाकाव्य के लक्षण तथा भेद के विषय में जाना तथा महाकाव्य के प्रमुख कवियों जैसे- कालिदास, अश्वघोष, माघ, भारवि इत्यादि के रचनाओं के सन्दर्भ में महाकाव्य की मूलभूत विशेषताओं को समझा।

संस्कृत साहित्य के पद्यकाव्य की एक विधा गीतिकाव्य मानी जाती है जिसे खण्डकाव्य के नाम से भी जाना जाता है। संस्कृत साहित्य में प्रायः गीतिकाव्य की परम्परा अल्प ही दिखाई देती है फिर भी किञ्चित् संस्कृत कवियों द्वारा गीतिकाव्यों की रचना की गई जो साहित्य की प्रसिद्ध गीतिकाव्यों में मानी जाती रही है। इनमें कालिदास की मेघदूतम्, ऋतुसंहारम्, भतृहरि की श्रृंगारशतक, नीतिशतक, वैराग्यशतक, अमरु की अमरुकशतक, जयदेव की गीतगोविन्द इत्यादि प्रमुख गीतिकाव्य पाये जाते हैं। प्रस्तुत पाठ में लौकिक संस्कृत के अन्तर्गत गीतिकाव्य के विषय में उसके प्रमुख बिन्दुओं को रेखांकित किया जा रहा है।

11.3 गीतिकाव्य (खण्डकाव्य) का लक्षण एवं भेद

संस्कृत साहित्य में प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत अपने मूल रूप में संगीत एवं साहित्य इन दोनों विशेषताओं को लेकर गीतिकाव्यों की रचना की गई। प्रायः संगीतात्मक खण्डकाव्य ही गीतिकाव्य कहलाता है। वस्तुतः गीतिकाव्य शब्द अंग्रेजी के 'लिरिक-पोएट्री' शब्द का समानार्थक है। संस्कृत साहित्य में शास्त्रीय दृष्टि से गीतिकाव्य को खण्ड काव्य कहा जाता है, क्योंकि इसमें महाकाव्य की भाँति कथासूत्रों की अनेकरूपता नहीं

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

होती अपितु किसी विशेष घटना को लेकर पूरे काव्य की रचना की जाती है । साहित्यदर्पण में विश्वनाथ द्वारा गीतिकाव्य की जो परिभाषा दी गई है, वह इस प्रकार है –

"भाषा विभाषा नियमात् काव्यं सर्गसमुत्थितम्।

एकार्थप्रवणैः पद्यैः साग्रय-वर्जितम् ।

खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च॥"

(साहित्यदर्पण ६/२३९)

अर्थात् किसी भाषा या उपभाषा में सर्गबद्ध एवं एक कथा का निरूपक ऐसा पद्यात्मक ग्रंथ जिसमें सभी संधियां न हों वह खंडकाव्य है। जो किसी एक क अंश का अनुसरण करके लिखा जाता है वह खण्डकाव्य कहा जाता है। गीतिकाव्यों में प्रायः मुक्तक पद्य होते हैं। ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धन ने मुक्तक काव्य के सम्बन्ध में कहा है कि ऐसे पद्यों में पूर्वापर प्रसंग की आवश्यकता नहीं होती है। वे अपने आप में पूर्णतया स्वतंत्र होते हैं और पूरा भाव एक ही पद्य में पूर्ण हो जाता है –

"पूर्वापरनिरपेक्षणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम् ।।"

(ध्वन्यालोक)

गीतिकाव्य भाव प्रधान होते हैं। लायर(Lyre) यूरोप का एक वाद्य यन्त्र है, अतः जो गीत लायर वाद्य यंत्र की सहायता से गाया जाए, उसे अंग्रेजी में 'लिरिक-पोएट्री' कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रेमगीत, शोकगीत और भक्तिगीत आते हैं। इसमें हृदय के उद्गारों की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक तीव्र होती है इसीलिए लिरिक-पोएट्री(गीति-काव्य) अधिक भावनात्मक मानी जाती हैं। इस प्रकार की कविता प्रायः सभी भाषाओं में पाया जाना स्वभाविक ही है ।

विषय की दृष्टि से गीतिकाव्य को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। शृंगारिक, धार्मिक एवं नैतिक गीतिकाव्य। शृंगारिक गीतिकाव्य में मानवीय प्रेम का उदात्त रूप प्रस्तुत किया गया है। प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे के बाह्य सौन्दर्य पर ही नहीं, आन्तरिक सौन्दर्य पर भी मुग्ध होते हैं और अपने प्रेम की कोमल-भावना मसृण पदावली में प्रकट करते हैं। धार्मिक गीतिकाव्य किसी एक उपास्य देव को लेकर भाव प्रधान अनुभूति मूलक गीतिकाव्य है। नैतिक गीतिकाव्यों में नैतिक शिक्षाओं को मुक्तकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों में सही तथा गलत उत्तर का चयन कीजिए।

i. प्रायः संगीतात्मक खण्डकाव्य ही गीतिकाव्य कहलाता है।()

ii. संस्कृत साहित्य में शास्त्रीय दृष्टि से गीतिकाव्य को खण्डकाव्य नही कहा जाता है।()

iii. संगीत एवं साहित्य इन दोनों विशेषताओं को लेकर गीतिकाव्यों की रचना की गई।()

iv. खण्डकाव्य विस्तृत कथा अंश को लेकर लिखा जाता है ।()

11.4 गीतिकाव्य का उद्भव एवं विकास

साहित्य वैपुल्य (विपुलता, अधिकता) की दृष्टि से संस्कृत भाषा के कवियों ने बहुत अधिक गीति-काव्यों की रचना नहीं की है। निश्चित काल-क्रम के अभाव में संस्कृत गीति-काव्यों का निर्विवाद इतिहास भी नहीं प्रस्तुत किया जा सकता तथापि उल्लेखनीय संस्कृत गीति-काव्य 400 ईस्वी से लेकर 1100 ईस्वी के मध्य लिखे गये हैं और उन्हें शृंगारिक व धार्मिक भेदों में विभक्त किया जा सकता है। काव्य एवं नाटकगत वैशिष्ट्य के साथ महाकवि कालिदास ने गीतिकाव्य के क्षेत्र में भी अपने को अनुपम सिद्ध किया है। उनके ऋतुसंहार एवं मेघदूत गीतिकाव्य के शिष्ट उदाहरण हैं।

गीतिकाव्य का उद्भम ऋग्वेद से ही होता है। ऋग्वेद में उषा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, सविता, अदिति और मरुत् आदि देवों की अनेक सूक्तों में स्तुति की गई है और उनके गुणों का भाव-विह्वलता के साथ वर्णन किया गया है। वाल्मीकि-रामायण और महाभारत में अनेक स्थानों पर राम और श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है। संस्कृत साहित्य में आदिकवि वाल्मीकि ने क्रौञ्च वध के समय एक श्लोक की रचना की जो प्रायः गीतिकाव्य का स्पष्ट रूप से प्रमाण सिद्ध होता है—

"मा निषाद् प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥"

सम्भवतः तभी संस्कृत गीतिकाव्य का प्रादुर्भाव हो गया था। उस श्लोक के विषय में आदिकवि ने स्वयं कहा था - "पादबद्धोऽक्षरसमः तन्त्रीलयसमन्वितः।" गीता के 11वें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण के विराट् रूप की स्तुति की गई है। भागवत-पुराण, विष्णु पुराण, नारद-पुराण तथा अन्य पुराणों में उपास्य देव की स्तुति मिलती है। अध्यात्म-रामायण में राम की ब्रह्म के रूप में स्तुति वर्णित है। लौकिक साहित्य में कालिदास से गीतिकाव्य का प्रारम्भ होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i. गीतिकाव्य का उद्गम ________ से ही होता है।

ii. गीतिकाव्य का आदि प्रवर्तक ________ को माना जाता है।

iii. गीता के ________ अध्याय में श्रीकृष्ण के विराट् रूप की स्तुति की गई है।

iv. लौकिक साहित्य में ________ से गीतिकाव्य का प्रारम्भ होता है।

v. अध्यात्म-रामायण में ________ की ब्रह्म के रूप में स्तुति वर्णित है।

11.5 गीतिकाव्य की विशेषताएँ

गीतिकाव्य प्रबन्धकाव्य अथवा महाकाव्य की भाँति विस्तृत नहीं होता है । इसमें चार-चार पंक्तियों में शृंगार रस से परिपूर्ण छोटे-छोटे शब्द चित्र हैं। उनमें सूक्ष्म-निरीक्षण और भावों की गहनता का प्राचुर्य है। उनमें से कुछ तो रूप और कथा की दृष्टि से अनुपम रचनाएँ हैं। गीतिकाव्य में प्रकृति का अपना महत्त्व है। पशु-पक्षी जगत् उनमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

संस्कृत के शृंगारिक गीतिकाव्य या तो महाकवि कालिदास विरचित मेघदूत के समान वर्ण्य विषय प्रधान होते हैं या भर्तृहरि के शतकों के समान उपदेशात्मकता लिए रहते हैं अथवा अमरुशतक के श्लोकों के समान मुक्तक होते हैं। मुक्तक श्लोकों के एक पद्य में ही वर्ण्यविषय की परिपूर्णता अपेक्षित होती है। इसलिए इस कोटि का काव्य संक्षिप्त एवं सुन्दर होता है। सामान्यतया ऐसे पद्यों में प्रेम के उदात्त पक्ष के प्रदर्शन का अधिक अवसर रहता है। इनमें वर्णित भावनाएँ वैयक्तिक के स्थान पर कलात्मक होती है। जहाँ कहीं वैयक्तिक भाव व्यक्त भी हुए है वहाँ व्यक्ति संसार भर के नायक नायिकाओं का प्रतिनिधित्व करता है। शृंगारिक गीतिकाव्यों में मुख्यतया रमणी-सौन्दर्य, नख-शिख वर्णन, हाव-भाव एवं शृंगारिक चेष्टाओं का चित्रण हुआ है। बाह्य सौन्दर्य के साथ-साथ उनके अन्तःसौन्दर्य, सहज प्रेम, लज्जा, दया, त्याग और करुणा आदि भावों का मार्मिक चित्रण हुआ है।

परवर्ती गीतिकाव्य में आलंकारिक चमत्कार का प्राधान्य उपलब्ध होता है और कविता के सौन्दर्य और उदात्तता के स्थान पर परम्परागत 'साहित्यिक सिद्धान्त' उत्कृष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। प्रचलित मुहावरों द्वारा एक जैसे ही चरित्रों का वर्णन किया गया है। शृंगार के विभिन्न अंगों के स्पष्ट विभाजन से कविता अधिक शैली प्रधान बन गई है तथापि यह तो मानना पड़ेगा कि श्रमसाध्य महाकाव्यों में उपलब्ध वातावरण

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

की तुलना में मुक्त श्लोकों में अपेक्षाकृत कम एकरूपता है। इन मुक्तकों में काव्य-लालित्य की मोहक स्थितियों के दर्शन होते हैं तथा इनमें भक्ति, शृंगार एवं नीति समन्वित रूप से प्राप्त होती है।

इन समस्त गीति-काव्यों में भारतीय प्रकृति सम्पदा का विशिष्ट योगदान है। अन्य पुष्पों की अपेक्षा कमल का वर्णन अधिक हुआ है। एक पद्य में तो कमल जीवन का सुन्दर प्रतीक बनकर आया है-

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम् भास्वानुदेष्यति हसिष्यसि पंकजश्रीः

इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे

हा हन्स ! हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार।।"

पक्षियों में चातक आत्मसम्मान का प्रतीक है। आँखों से चन्द्रमुखी की सुधा का पान करने वाले प्रेमी का वर्णन करते हुए चकोर का उदाहरण दिया गया है। बिरही प्रेमी युगल की अवस्था चक्रवाक पक्षी के माध्यम से वर्णित है। भ्रमरों का गुंजन, कमल-पुष्पों का पराग, चन्द्रिका, पुष्प गन्ध तथा आम्रमंजरी से प्रेरित होकर कोकिल का गायन लज्जानम्रमुखी भारतीय रमणियों के सौन्दर्य वर्णन हेतु पृष्ठभूमि प्रदान करता है इसलिए इन गीति-काव्यों ने हाइने जैसे अगणित यूरोपीय कवियों को अनेक गीति-काव्य लिखने के लिए प्रेरित किया।

संस्कृत के धार्मिक गीति-काव्य को स्पष्टतः दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग में दार्शनिक और दूसरे वर्ग में रहस्यवादी मुक्तक आते हैं। काव्य की इन दोनों कोटियों में यद्यपि वैयक्तिक वैशिष्ट्य का समावेश होता है तथापि प्रथम कोटि बुद्धि को प्रभावित करती है तथा दूसरी भावों को प्रेरणा प्रदान करती है। धार्मिक गीति काव्यों में उदात्तता है। इनमें भौतिक एवं ऐन्द्रिय प्रेम की अपेक्षा नैसर्गिक एवं आध्यात्मिक प्रेम को महत्त्व दिया गया है। धार्मिक गीतिकाव्यों की भांति नैतिक गीतिकाव्यों में नैतिक आदर्शों का चित्रण है।

मध्युगीन भक्ति आन्दोलन ने भक्ति के धार्मिक भावों को लौकिक प्रेम के रूप में वर्णित करने की एक नई दिशा दिखाई। इस प्रवृत्ति का श्रेष्ठ उदाहरण गीत-गोविन्द है।

उक्त तीनों प्रकार के गीतिकाव्यों में संगीत की प्रमुखता एवं लयात्मकता होती है। सहृदय संवेद्यता, जीवन की मार्मिक अनुभूतियों, सुख-दुःख, प्रसाद और विवाद का विशद वर्णन, सुकुमार भावों की कोमल पदों में मधुर अभिव्यक्ति आदि इन काव्यों की मुख्य विशेषताएँ हैं। इनमें गौड़ी शैली, समासों का आधिक्य और पाण्डित्य प्रदर्शन का सर्वथा अभाव है। क्योंकि गीति काव्यों में सुकुमार प्रकृति, शृंगार, भक्ति, नीति, उदात्त भावनाएं और जीवन का यथार्थ रूप में चित्रण किया गया है अतः इनमें कोमलकान्त पदावली, सरल, सरस भाषा और रस माधुरी के दर्शन होते हैं।

गीति काव्यों में शृंगार, शान्त और वीर रसों का मुख्यतः चित्रण हुआ है। शृंगार के संभोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों का सुन्दर विश्लेषण हुआ है। कोमल भावों की प्रधानता होने के कारण इनमें अद्भुत, भयानक, वीभत्स आदि रसों का वर्णन नहीं होता है। इनमें भावपक्ष की उदात्तता, भावों की धारावाहिकता, संवेदन और मार्मिकता मुख्य और कलापक्ष अत्यन्त गौण होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

संस्कृत गीतिकाव्यों में भावों की कोमलता, विचारों की नवीनता, कल्पना की कमनीयता, अनुभूति की मार्मिकता, निरीक्षण की सूक्ष्मता, अलंकारों की छटा तथा छन्दों का समुचित विधान है।

पाठ्य-प्रश्न

3. सही विकल्प का चयन कीजिए ।

i. मुक्तक पद्य होते हैं –

क. महाकाव्य ख. गीतिकाव्य ग. गद्यकाव्य घ. नाटक

ii. गीतिकाव्यों में किसकी प्रधानता होती है –

क. संगीत एवं लय ख. पद्यबहुलता ग. क्लिष्ट शब्दप्रयोग घ. समासबहुलता

iii. गीतिकाव्यों में किन रसों का मुख्यतः चित्रण किया गया है–

क. भयानक, रौद्र एवं बीभत्स ख. हास्य, करुण एवं विस्मय ग. शृंगार, वीर एवं शान्त

iv. गीतिकाव्यों में किस शैली की प्रधानता अधिक होती है –

क. कविता ख. नाटक ग. दोनों घ. दोनों में से कोई नहीं

11.6 प्रमुख गीतिकाव्य(खण्डकाव्य) का परिचय

11.6.1 कालिदास और मेघदूत

'मेघदूत' और उसके पाठभेद

© DDCE, COL

संस्कृत भाषा का सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य 'मेघदूत' है। महाकवि गेटे ने भी इसके काव्य सौन्दर्य की प्रशंसा की है। प्रसिद्धि के कारण ही सम्भवतः इसमें प्रक्षिप्तांश इस सीमा तक बढ़ गए हैं कि दक्षिणावर्तनाथ ने ईसा की 12वीं शताब्दी में जिस संस्करण पर टीका की है उसमें केवल 110 श्लोक हैं जबकि 14वीं शताब्दी में मल्लिनाथ द्वारा की गयी टीका वाले 'मेघदूत' की श्लोक संख्या 120 हो गयी है। सम्भवतः श्री दक्षिणावर्तनाथ को उतने ही श्लोक प्राप्त हुए हों। इस ग्रन्थ का एक आदिम रूप जिनसेन (8वीं शती) की पार्श्वाभ्युदय नामक रचना में सुरक्षित प्रतीत होता है। यह रचना 'मेघदूत' की समस्यापूति के रूप में लिखी गयी है और इसमें 120 श्लोक हैं। वल्लभदेव (10वीं शती) और पुराणसरस्वती ने 'मेघदूत' के जिन संस्करणों की व्याख्या की है, उनके श्लोकों की संख्या 110 व 111 है जबकि इस ग्रन्थ के तिब्बती और सीलोनी (लंका के) संस्करणों में उनकी संख्या क्रमशः 117 व 118 मिलती है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मेघदूत की शैली

मेघदूत की शैली वैदर्भी है, इसमें ललित पद विन्यास, कोमलभाव सरस पदावली और प्रसाद और माधुर्य गुण का समन्वय है। इसमें भावों का गाम्भीर्य, विचारों की महनीयता, कल्पना की कमनीयता, हृदय की उदात्तता, अनुभूतियों की संवेदनशीलता, विप्रलम्भ शृंगार की सात्त्विकता है। कालिदास व्यंजनावादी कवि हैं अतः पूरे काव्य में व्यंग्यार्थ मुख्य है। प्रकृति के साथ तादात्मय की अनुभूति सुकुमार भाव और कमनीय पदावली का सुन्दर सम्मिश्रण है।

मेघदूत गीतिकाव्य का वर्ण्य विषय सर्वथा सामान्य है। स्वामी के शाप द्वारा अपनी प्रेयसी से बिछुड़ा हुआ एक यक्ष प्रिया को अपना विरह-व्यथापूर्ण सन्देश भेजने के हेतु मेघ को अपना संदेश वाहक (दूत) बनाता है। मेघ द्वारा संदेश भिजवाने के विचार की प्रेरणा महाकवि कालिदास को रामायण में हनुमान द्वारा किये गये कार्य अथवा महाभारत के नलोपाख्यान में हंस द्वारा निभाये गये उत्तरदायित्व से मिली होगी। रामायण में वर्षा-वर्णन के साथ इसका बहुत साम्य है। तथापि मेघदूत में कालिदास की अपनी कल्पना का प्रभूत उपयोग हुआ है। उनका काव्य मौलिक है और वाक्य विन्यास श्रेष्ठ है। एक जातक कथा में भी एक पुरुष अपनी निराश पत्नी के पास एक कोए को भेजता है। कालिदास ने एक जड़ पदार्थ द्वारा संदेश भेजने की अपनी कल्पना का औचित्य मेघदूत में सर्वथा सिद्ध कर दिया है-

"धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः

सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।"

एक क्षीण एवं निराश यक्ष उत्तर दिशा को जाते हुए काले मेघ को देखता है। मानसिक रूप से वह यक्ष भी अपने प्रवास स्थान राजगिरि से अपनी प्रिया निवास स्थान अलकापुरी तक मेघ के साथ यात्रा करता है। 'मेघदूत' के पूर्वार्द्ध में मेघ की यात्रा का पथ विदिशा नगर सहित दशार्णदेश, महाकाल मन्दिर सहित उज्जयिनी, दशपुर व कुरुक्षेत्र जैसे पवित्र नगर और तत्पश्चात् कनखल से प्रारम्भ होकर कैलास, क्रौञ्चक्षेत्र व मानसरोवर होते हुए अलौकिक नगरी अलकापुरी तक का मार्ग वर्णित है। 'मेघदूत' निश्चय ही एक परिपक्व कवि-मस्तिष्क की उपज है तथा कालिदास की अनुपम सृजनशक्ति का प्रमाण है। यद्यपि कवि ने मन्दाक्रान्ता जैसे विस्तृत एवं कठिन छन्द का प्रयोग किया है तथापि उनका निर्वाह पर्याप्त एवं प्रवाहमयता से हो सका है।

विरही यक्ष की सुकुमार-भावनाओं से सुन्दरता तथा स्वाभाविक रूप से मिश्रित अद्भुत व्यंजनाओं से परिपूर्ण परिवर्तन होते हुए दृश्यों का चित्रण कालिदास ने बड़ी सफलता से किया है। रवीन्द्रनाथ ने ठीक ही कहा कि विरह-भावना और प्रियमिलन की कामना का वर्णन करने के लिए भारतीय वर्षा ऋतु से बढ़ कर और उपयोगी पृष्ठभूमि सम्भव नहीं है। इसी वर्षा ऋतु में घनीभूत स्मृतियों के आधार पर यक्ष की सुकुमार-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

भावनाओं का चित्रण इस गीतिकाव्य में हुआ। यक्ष के शोक प्राबल्य को पथ के आश्चर्यजनक व अनुकूलप्राकृतिक दृश्य मुखर करते हैं और उन्हीं के तन्तुओं में कालिदास की काव्य-कला गुम्फित है।

उपर्युक्त वातावरण में वह विरही यक्ष अपनी प्रिया की किसी न किसी विशेषता की समता करने वाली अनेक वस्तुओं को पाता है। पर हाय! उन सभी विशेषताओं को एक साथ नहीं देख पाता-

"श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।।"

पुनर्मिलन की आशा सदा यक्ष के साथ है-

"पश्चादावां विरहगुणितं तं तमेवाभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु।।"

तथापि निर्मम विधाता उस समय उनके मिलन को चित्र रूप में भी नहीं सह सकता—

"त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैश्शिलाया—
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैः दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।"

यक्ष-प्रिया, जो सम्भवतः विधाता की अपने ढंग की प्रथम कृति थी, का वर्णन सौन्दर्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस वर्णन में कालिदास की कल्पना द्रष्टव्य है—

"तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।।"

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

'मेघदूत' की गीति-काव्यात्मकता

भावों की गहनता के साथ-साथ मेघदूत में सुन्दर प्रकृति चित्रण भी है किन्तु कुछ आलोचकों के अनुसार "अस्वाभाविकता के तत्त्वों ने काव्य-प्रभाव को कम किया है।" सर्वप्रथम यक्ष कुछ समय के लिए ही प्रिया से पृथक् हुआ है। दूसरे वह एक देवयोनि का है अतः उसे किसी प्रकार का दुःख या भय नहीं होना चाहिए। अतः पाश्चात्य आलोचकों की दृष्टि से यदि संदेश, पुनर्मिलन की आशा से सर्वथा रहित किसी असहाय बंदी द्वारा भेजा जाता तो अधिक सफल होता। इस प्रकार की कविता के उदाहरण के रूप में शिलरकृत 'मेरिया स्टुअर्ट' को प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें बंदिनी स्काट की रानी मेघ से अपने प्रेमी के प्रदेश की अभ्यर्थना करने का आग्रह करती है तथापि कीथ के मत में "अभिव्यक्ति की सबलता, वस्तु की सम्पन्नता एवं मनोभावों को साकार कर सकने के सफल सामर्थ्य के कारण आलोचकों ने (मेघदूत को) कालिदास की कृतियों में प्रथम स्थान दिया और यह प्रशंसा अनुचित नहीं है।"

डॉ. एस. के. डे. कहते हैं -"यह सही है कि इस कविता का वातावरण बहुत अधिक काल्पनिक है, इसमें स्वप्नलोक की-सी घटनाएँ हैं, इसके पात्र देव-तुल्य हैं और तदनकूल कल्पना ही इसमें प्रयुक्त है तथापि ये सब इस काव्य की मानवीयता एवं शृंगार रस की आश्चर्यजनक अभिव्यक्ति का निरोध नहीं करते।

सम्भव है कि वास्तविक गीति-काव्य के लिए अपेक्षित विषयवस्तु 'मेघदूत' में न हो तथापि गीतिमय मन्दाक्रान्ता छन्द द्वारा प्रकट उद्दाम भावना की सम्पन्नता ने इस काव्य को एक यथार्थ गीति-काव्य सिद्ध कर दिया है। मेघदूत में प्राप्त स्थानों के कारण यह भूगोल-विदों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

इस काव्य की अनुकृति पर आज तक अनेक दूत-काव्यों की रचनाएँ हो चुकी है तथापि अब भी अपनी श्रेणी की यह सर्वश्रेष्ठ अथवा अद्वितीय कृति है।

मेघदूत का दार्शनिक पक्ष

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने मेघदूत के दार्शनिक पक्ष का विवेचन किया है। मेघ काम है, काम का दमन करने पर ही शिवत्व की प्राप्ति होती है। अतएव पूर्व मेघ 37 से 40, 59, 60 श्लोकों में महाकाल, गण, नीलकंठ आदि का उल्लेख है। इन श्लोकों में स्पष्ट किया गया है कि मेघ (काम) शिव की भक्ति में लीन होता है। शिव की भक्ति से ही कामी का काम शान्त होता है और ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। अतः शिव, विष्णु और ब्रह्म के अद्वैतवाद, शिव और कूटस्थ आत्मा का तादात्म्य और योग द्वारा उस अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार ही कालिदास का दार्शनिक मत है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

11.6.2 कालिदास और ऋतुसंहार

'ऋतु संहार' और उसके रचियता

कवि कुलगुरु महाकवि कालिदास की संदिग्ध कृतियों में से 'ऋतु संहार' का स्थान प्रमुख है और इसे महाकवि की युवा कल्पना की रचना घोषित किया जाता है। कालिदास की तीन विशिष्ट काव्य-कृतियों के टीकाकार मल्लिनाथ ने इसकी उपेक्षा की है और प्राचीन संस्कृत काव्य-शास्त्रियों ने अपनी परिभाषाओं के उदाहरण इसमें से उद्धृत नहीं किए। साथ ही प्राचीन संस्कृत पद्यावलियों में भी 'ऋतु संहार' के उद्धरण नहीं मिलते। इसीलिए इस काव्य को कालिदास विरचित मानने में संदेह किया जाता है। तथापि प्रो- कीथ ने इन सब संदेहों का निराकरण 'अनिश्चित' कहकर किया है और कहा है कि 'ऋतु संहार' कालिदास की कृति होने योग्य है और यदि इसे कालिदास की कविता के रूप में न स्वीकार किया गया तो महाकवि के सम्मान को वास्तविक क्षति पहुँचेगी।

'ऋतु संहार' की विषय वस्तु एवं शैली

जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है, 'ऋतु संहार' में ऋतुओं के चक्र का अत्यन्त काव्यमय और सुन्दर वर्णन है। यद्यपि भारत की रूढ़ि-प्राप्त 6 ऋतुओं का विस्तार वर्णन इस काव्य में नहीं मिलता तथापि युवा-कल्पना के प्रेमी कवि के दृष्टिकोण से ऋतुओं का बहुविध चित्र इसमें प्रस्तुत किया गया है। चित्रित दृश्य परम्परागत है और इनमें बहती हुई नदियों, आलिंगन करती हुई लताओं और चुम्बन शील मेघों के वर्णन सुपर्याप्त हैं। प्रयुक्त मुहावरे सरल और संगीतमय हैं तथापि 'मेघदूत' की सी वर्णन सम्पन्नता 'ऋतु संहार' में प्राप्त नहीं होती। यद्यपि 'ऋतु-संहार' की तुलना में बहुत अधिक सम्पन्न कविता के दर्शन कालिदास की अन्य रचनाओं में होते हैं, तथापि आधुनिक मानवमन को प्रभावित करने वाली जो काव्यगत स्वच्छन्दता इस कृति में मिलती है, कालिदास की परवर्ती रचनाओं में उनका प्रायः अभाव है।

ग्रीष्म ऋतु के वर्णन के साथ काव्य प्रारम्भ होता है। इस समय दिन की चुभती धूप जितनी पीड़ा देती है, उतना ही सुख चाँदनी रात से मिलता है। प्रकृति व जीवजन्तु इस ऋतु से बहुत प्रभावित होते हैं और वह प्रभाव सर्प, सिंह, हाथी, भैंस, बारहसिंघा, मोर, सारस, दादुर, मछली, वृक्ष और झाड़ी आदि के वर्णन से स्पष्ट झलकता है। ग्रीष्म के बाद विद्युत की पताका फहराती है और गर्जन का ढोल पीटती हुई वर्षा आती है। तत्पश्चात् मुस्कराती हुई युवतियों के चमकते दाँतों व दमकते ओठों से स्पर्धा करने वाले मल्लिका (चमेली) पुष्पों और अशोक कोरकों (कलियों) के साथ शरद ऋतु आती है। शिशिर ऋतु में रंगों की बहार प्रेमियों के मनों को प्रफुल्लित करती है। वसन्त ऋतु स्वाभाविक रूप से कवि को सर्वाधिक आकृष्ट करती है। प्रेमिकाएँ बहुरंगी पुष्पों से स्वयं को सजाती हैं और कामदेव अपना भरपूर रंग जमाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

कालिदास संस्कृत-गीतिकाव्य के प्रवर्तक हैं। उन्होंने दो गीतिकाव्यों की रचना की - ऋतुसंहार और मेघदूत। एक में बाह्य प्रकृति प्रमुख है तो दूसरे में अन्तः प्रकृति, एक में यौवन का उन्माद है तो दूसरे में यौवन का विषाद। एक में अप्रौढ़ता है तो दूसरे में प्रौढ़ता, एक में कला प्रधान है तो दूसरे में भाव का प्राधान्य है।

पाठ्य-प्रश्न

4. निम्नलिखित प्रश्नों में सही उत्तर का चयन कीजिए।

i. मेघदूत में कितने श्लोक हैं – 110/150

ii. मेघदूत की शैली है – वैदर्भी/ गौड़ी

iii. मेघदूत काव्य रचना है – गीतिकाव्य/ महाकाव्य

iv. ऋतुसंहार में कितनी ऋतुओं का वर्णन किया गया है – 6/8

v. ऋतुसंहार ग्रंथ का प्रारम्भ किस ऋतु से होता है – शीत ऋतु/ ग्रीष्म ऋतु

11.6.3 भर्तृहरि और शतकत्रय

© DDCE, COL, SOL,

कालिदास के पश्चात् मुख्य उल्लेखनीय गीतकार भर्तृहरि हैं, जो एक साथ ही वैयाकरण, दार्शनिक एवं कवि माने जाते हैं। मैकडानल के अनुसार "केवल भारतीय इतिहास साधना ही इस प्रकार का संयोग संभव बना सकी है और तिस पर भी यह अतुलनीय है।" इन्होंने शृंगार-शतक, नीति-शतक और वैराग्य-शतक नामक तीन शतकों (सौ श्लोकों वाले काव्यों) की रचना की है। इन काव्यों के नामों से ही स्पष्ट है कि इनमें शृंगार, नीति व वैराग्य से सम्बन्धित सौ-सौ श्लोक हैं। उनका समय ईसा के सप्तम शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है क्योंकि तत्कालीन चीनी यात्री इत्सिंग ने भर्तृहरि का उल्लेख ऐसे व्यक्ति के रूप में किया है जो सात बार सन्यास ग्रहण करके फिर गृहस्थ बन गया था।

इन तीनों शतकों में आये श्लोकों की प्रामाणिकता सिद्ध करने का प्रयत्न व्यर्थ ही है क्योंकि उनमें तन्त्राख्यायिका, अभिज्ञानशाकुन्तल, मुद्राराक्षस एवं कुछ अन्य सूक्ति संग्रहों के श्लोक मिलते हैं जो कि अन्य कवियों द्वारा विरचित-रूपों में प्रसिद्ध हैं।

यद्यपि इत्सिंग ने वैयाकरण और मानव जीवन के सिद्धान्तों के एक लेखक के रूप में भर्तृहरि का उल्लेख किया है, तथापि इस शतकत्रय के लेखक के रूप में उसने भर्तृहरि की कोई चर्चा नहीं की। इत्सिंग ने भर्तृहरि को बौद्ध लिखा है पर रचनाओं के द्वारा वे वेदान्त शैव अधिक प्रतीत होते हैं। मैक्समूलर वैयाकरण भर्तृहरि को बौद्ध सिद्ध करने में कुछ सीमा तक सफल सिद्ध हुए हैं। इसलिए यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका कि

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

भर्तृहरि दो थे अथवा एक ही भर्तृहरि ने बाद में अपना सम्प्रदाय बदल दिया था। सम्भव है कि इत्सिंग ने इस तथ्य पर ध्यान न दिया हो।

प्रोफेसर कीथ के विचार से नीति और वैराग्य शतकों में तो कुछ श्लोक अन्य कवियों के भी हो सकते हैं, पर शृंगार-शतक सर्वथा भर्तृहरि की रचना है। जहाँ तक वाक्यपदीय और इन शतकों का सम्बन्ध है, पहले का रचयिता कोई अद्वैत वेदान्ती और दूसरे वर्ग का लेखक कोई शैव प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त इन शतकों का प्रणेता व्याकरण में उतना प्रवीण नहीं प्रतीत होता जितना वाक्यपदीय के रचनाकार (वैयाकरण भर्तृहरि) को होना चाहिए था।

शृंगार-शतक के 9वें श्लोक में कवि कहता है कि अज्ञानावस्था में सारा संसार रमणियों से भरा प्रतीत होता है पर ज्ञान का प्रकाश होते ही सब कुछ ब्रह्ममय हो जाता है। यह भावना इस कल्पना में सहायक होती है कि शृंगार शतक का रचियता ही वैराग्य-शतक का प्रणेता रहा होगा। एक अन्य श्लोक कवि के मन की दुविधा को आकर्षक ढंग से स्पष्ट करता है—

"आवासः क्रियतां गांगे पापवारिणि वारिणि

स्तनमध्ये तरुण्या वा मनोहारिणि हारिणि"

इसी प्रकार और भी अनेक पद्य उद्धृत किये जा सकते हैं जो सिद्ध करते हैं कि कवि का मन सचमुच दुविधा में था। भर्तृहरि की रचना में सर्वश्रेष्ठ संस्कृत का साक्षात्कार होता है। इन रचनाओं में हमें कहीं रूढ़िबद्ध लम्बे तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन नहीं प्राप्त होते जबकि महाकाव्य इनसे भरे हुए होते हैं। इन श्लोकों में शब्दों का वह आडम्बर भी नहीं दिखाई पड़ता जो कविता में कवित्व की कमी प्रदर्शित करता है और उसको अधिक बौद्धिक बनाता है। यहाँ प्रत्येक श्लोक अपने आप में परिपूर्ण है और केवल एक भाव को अभिव्यक्त करता है जो चाहे प्रेम का हो, वैराग्य का हो या नीतिपूर्ण हो। संस्कृत भाषा का एकरूपता सम्बन्धी गुण और शार्दूलविक्रीड़ित आदि दीर्घ छन्दों का प्रयोग कवि एवं राजर्षि भर्तृहरि को अपने विचार साररूप में प्रकट करने का अवसर देता है तथा इन कारणों से श्लोकों की गीतात्मकता बढ़ जाती है।

भर्तृहरि की शैली में प्रसाद और माधुर्य है। पद्य अत्यन्त सरल, सुबोध और श्रुति सुखद हैं। भाषा का लालित्य, भावों की गहराई, अनुभूति का पुट, रसों का सुन्दर समावेश, अलंकारों की रमणीय छटा और कवित्व का कमनीय समन्वय इनके प्रत्येक पद्य को बहुत मनोहर बना देता है। भाषा में प्रवाह और भाव है, सरसता और सहृदयता है। मार्मिक अनुभूतियाँ बलात् पाठक को आकृष्ट कर लेती हैं। इनमें आदर्शवाद के लिये नीति एवम् शिक्षाप्रद नीति श्लोक हैं, शृंगारी के लिए शृंगाररस के श्लोक हैं और भक्त के लिए वैराग्य के श्लोक हैं। इस प्रकार ये तीनों शतक सभी प्रकार के पाठकों के लिए चित्ताकर्षक हैं। संस्कृत कवित्व का सुन्दरतम रूप इन शतकों में मिलता है। इनकी लोकप्रियता इसी से जानी जा सकती है कि भर्तृहरि के श्लोक प्रसिद्ध सुभाषित और मुहावरे बन गये हैं। बहुत गहराई और अनुभूति के साथ प्रत्येक वर्ण्यविषय का वर्णन है।

विषयों की असारता, प्रेम की अस्थिरता और यौवन के उन्माद पर उनका प्रसिद्ध श्लोक है—

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च माम् च।।" (नीतिशतक 2)

परोपकार निरत और परगुण-ग्राही सज्जन विरले होते हैं-

"मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्ण
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।।" (नीतिशतक 79)

तीनों शतकों में अनेकों सुभाषित मिलते हैं जो एक से एक सुन्दर और स्मरणीय हैं। ये भर्तृहरि की काव्य प्रतिभा, दार्शनिकता, मार्मिक अनुभूति, भावोत्कर्ष, सूक्ष्म दृष्टि और व्यापक ज्ञान के द्योतक हैं।

University of Delhi

पाठ्य-प्रश्न

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   - i. भर्तृहरि का समय ईसा के ______का पूर्वार्द्ध माना जाता है।
   - ii. भर्तृहरि की तीन रचनाओं के समूह को ______कहा जाता है।
   - iii. नीति एवं शिक्षाप्रद श्लोक _______ग्रंथ में मिलता है।
   - iv. वैराग्यशतक ________की रचना है।

11.6.4 जयदेव और गीतगोविन्द

महाकवि जयदेवकृत गीतगोविन्द में संस्कृत कविता की एक नई विद्या के दर्शन होते हैं जिसमें स्वरमाधुर्य गीति, लय और ताल का अद्भुत सामंजस्य है। इन गीतों में लोच, संगीत, हृदयग्राहिता, और कोमलता एक साथ मिलती है। इसे लेसेन ने गीत-नाट्य, जोन्स ने लोक-गीत, लेवी ने स्वांग, पिशेल ने भावनाट्य और

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

श्रोदर ने समूह नाट्य या 'जात्र' बताया है। इसकी कथा का मुख्य आधार कृष्ण द्वारा अन्य गोपियों से प्रेम करने पर राधा द्वारा अपने विराग की अभिव्यक्ति है। पर यह थोड़ी-सी बात इस ढंग से प्रस्तुत की गई है कि उसमें सामान्य काव्यों से अधिक नाटकीयता और सामान्य नाटक से अधिक संगीतात्मकता का समावेश हो गया है। संताप, गीत, वर्णन, विवरण एवं भाषण आदि काव्य की अनेक विधाएँ इसमें गुंथी हुई हैं। वस्तुतः कवि की यह सर्वथा मौलिक उद्भावना है जो कवि के अपने मस्तिष्क की उपज है। अतः गीतगोविन्द को शृंगारिक भक्ति गीतों में मूर्धन्य माना जा सकता है।

गीतगोविन्द में 12 सर्ग हैं जिसमें 24 प्रबन्ध हैं। प्रबन्धों में पुनः आठ-आठ पंक्तियों के गीत हैं जिन्हें राधा-कृष्ण और उनकी सखियों ने गाया है। इन गीतों में प्रेम के प्रत्येक पहलू (केवल आत्यन्तिक निराशा को छोड़कर) व्यथा, उत्कण्ठा, ईर्ष्या, क्रोध, मान-मनावन का सुन्दर चित्रण हुआ। मानवीय प्रेम के वर्णनों में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण चित्रण है।

जयदेव बंगनरेश लक्ष्मण सेन (1169 ईस्वी) की राज्यसभा के पंचरत्नों में से एक थे। अन्य चार रत्न, शरण, गोवर्धन, घोई, और उमापतिधर बताये जाते हैं। जयदेव की एक लघु हिन्दी कविता सिखों के आदि-ग्रन्थों और भक्तमाल नामक धार्मिक गन्थ में आज भी सुरक्षित है जिसमें उनकी कृष्ण-भक्ति की अनेक कथाएँ वर्णित हैं। इस प्रकार 'कविराजराज' जयदेव का दावा कुछ उचित प्रतीत होता है।

जयदेव की मधुर संगीतमय कविता ने केवल भारतीयों को ही नहीं, अनेक यूरोपीय विद्वानों को भी अपनी ओर आकृष्ट किया है। जर्मन कवि गेटे ने गीतगोविन्द के सर विलयन जोन्स कृत सामान्य अनुवाद को पढ़कर ही इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। वास्तविकता यह है कि गीतगोविन्द का निर्दोष अनुवाद सम्भव ही नहीं है क्योंकि इसमें संगीतात्मकता जिन संस्कृत लोकोक्तियों द्वारा उत्पन्न होती है संसार की अन्य भाषाओं में उनकी समता मिलनी असम्भव है।

बंगाल के यात्रा उत्सव के अवसर पर प्रयुक्त साहित्यिक सामग्री से गीतगोविन्द की प्राञ्जल कविता की रचना हुई है। जयदेव लम्बे व कठिन छन्दों के प्रयोग सम्बन्धी अपनी प्रवीणता तथा वाक्य विषयक असाधारण सामर्थ्य के बल पर ही विभिन्न शास्त्रीय रागों को अपने भावों के अनुरूप ढाल सके। गीतगोविन्द में प्रचुर एवं जटिल शृंगारिक भावों को तो ललित लयों सहित तुकान्त रूप में प्रस्तुत किया गया है और चरणों के मध्य व अन्त में अनुप्रासों का बाहुल्य सोने में सुहागा का काम करता है जैसे—

"चन्दन-चर्चित-नील-कलेवर-पीत-वसन-वन-माली।

केलिचलन्मणिकुण्डल-मण्डित-गण्ड-युग-स्मित-शाली।

हरिरिव मुग्ध-वधू-निकरे।

विलसिनि विलसति केलि-पदे।।"

गीतगोविन्द की शैली वैदर्भी है। कहीं-कहीं लम्बे समासों का प्रयोग भी हुआ है परन्तु काव्य कहीं भी दुरूह नहीं हुआ है। वस्तुतः वह उत्सवों में गाये जाने वाले पद्य हैं। वे अत्यन्त सरल और संगीतमय हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

वाक्यविन्यास को लयात्मकता और काव्य सौष्ठव अनुपम है। प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दरता के साथ-साथ मानवीय प्रेम और भावनाओं का अनूठा संगम हुआ है। विशिष्ट पद-रचनाजन्य शब्द चित्रों की दृष्टि से गीतगोविन्द एक पूर्ण कृति है। सम्भव है कि ऐस्किलस सोफोक्लिस व यूरिपीडिस् आदि कवि जीवन में प्रेम का महत्त्व प्रतिपादित करने में अधिक सफल सिद्ध हुए हों किन्तु इन कवियों की रचनाओं में जयदेव के समान भाव व शब्दसौन्दर्य के तादात्म्य का अभाव है। इस पर भी आश्चर्य की बात यह है कि जयदेव ने शब्दाडम्बर किए बिना तथा दीर्घ समासों का प्रयोग न करके ही यह चमत्कार उत्पन्न किया है। तथ्य की बात तो यह है कृत्रिम कविता प्रसिद्ध जात्र कथाओं के प्रसंग में असंगत सिद्ध होती है। इसीलिए यह गीति-काव्य दूरान्वय दोष और शब्दों के चाकचिक्य से मुक्त होता है।

गीतगोविन्द में यद्यपि राधा-कृष्ण का दिव्य प्रेम वर्णित है तथापि इसकी अध्यात्मपरक व्याख्या भी की जाती है। इसी कारण इस रचना को शृंगारिक कविता की अपेक्षा भक्ति-काव्य ही आधिक्य से माना जाता है। कृष्ण आत्मा है जो मोक्ष (राघा) को पाने के लिए उत्सुक है। गोपियों की क्रीड़ाएँ वे प्रलोभन हैं जिसमें अज्ञान में फंसी आत्मा डोलती रहती है। इष्टदेव के प्रति अपने प्रेम-वर्णन की परम्परा कालिदासकृत कुमारसंभव में भली-भाँति प्रदर्शित की गई है जो परवर्ती युग तक प्रभावित रही है। राधा-कृष्ण के प्रेम में जयदेव स्वयं तटस्थ नहीं रह सके। वे तो स्वयं को अपनी कथा से सम्बद्ध मानकर ही चलते हुए प्रतीत होते हैं जबकि यूरोपीय कवि अमानुषी जीवन वर्णन करते समय संदेह की भावना प्रकट करते हैं। "यदि हरि स्मरणे सरसंमनो यदि विलासकलासु कुतुहल। मधुरकोमलकान्त पदावलि शृणु तथा जयदेव सरस्वतीम्।।" यह एक श्लोक महाकवि जयदेवकृत गीतगोविन्द के महाभाव का परिचायक है तथा काव्य के प्राणभूत तत्त्व को प्रकाशित करता है। इसका भाव इस प्रकार है—'यदि आपका मन हरिस्मरण में (भगवद्भक्ति) रसानन्द लेता है, (अथवा) यदि (सांसारिक) विलासकलाओं में आनन्दानुभूति करता है, (दोनों स्थितियों में) मधुर-कोमल-कान्त-पदावलीयुक्त महाकवि जयदेव की वाणी का श्रवण करें। तुकान्त होने के कारण गीतगोविन्द को एक अपभ्रंश कविता का संस्कृत रूप सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है पर यह विचार लम्बी खींच-तान का परिणाम प्रतीत होता है। क्योंकि हम जानते हैं कि साहित्य-दर्पण ने 'अन्त्यानुप्रास' नामक एक अलंकार स्वीकार किया है जिसमें तुकान्तता अपरिहार्य है।

जयदेव का अनुकरण करते हुए विट्ठलेश्वर व नारायणतीर्थ नामक कवियों ने गीतगोविन्द के समान ही दो अन्य गीत-काव्यों की रचना का प्रयत्न किया जिनमें राधा-कृष्ण के स्थान पर क्रमशः सीताराम तथा शिवपार्वती को नायक-नायिका बनाया गया है।

गीतगोविन्द का काव्य सौन्दर्य

जयदेव का कलात्मक सौन्दर्य अनुपम है। वही संस्कृत साहित्य में एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने काव्य और संगीत का पूर्ण समन्वय स्थापित किया है। जयदेव में काव्यसौन्दर्य, माधुर्य और शाब्दलालित्य प्रवाह और रागात्मकता का ऐसा संयोग है कि उनकी कविता में नर्तकी के नूपरों की झंकार हैं, अभिनेत्री की कोमल काकली है, वीणा का तंत्रीनाद है, और तरुणी का लास्य है। हरि-कीर्तन के साथ रास-लीला की रमणीयता, कोमल कांत-पदावली की मधुरिमा और सरस्वती का कलकल-निनाद जयदेव की काव्यकला की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अतः कवि का कथन है-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

"यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतुहलम्।

मधुर कोमल कान्तपदावली श्रृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।।" (गीतगोविन्द 1-3)

गीतगोविन्द नृत्यगीत संगीत, विष्णुभक्ति, शृंगाररस का सुन्दर चित्र है। जयदेव की अभिव्यंजना शक्ति, कृष्णभक्ति, संगीतात्मक काव्य रूप और शृंगार का सरस प्रवाह अद्भुत है। उन्होंने पाठ्य और गीत, कथा, वर्णन और संवादों का बड़ी कुशलता के साथ समन्वय किया है। शब्द और अर्थ का उत्कृष्ट सामंजस्य है। छन्दों के प्रयोग में निर्दोषता, अलंकारों की छटा, भावों की सुकुमारता ने गीतगोविन्द के काव्य सौन्दर्य की वृद्धि की है। ध्वनि और अर्थ का सामंजस्य जयदेव में ही मिलता है। स्वयं कवि को अपनी कविता की मधुरता, प्रांजलता, सुकुमारता और सरसता का अभिमान था (गीतगोविन्द12/12)। शब्द सौष्ठव, भावों की सुकुमारता और तन्मयता, संगीतात्मकता और कला की कमनीयता में गीतगोविन्द सर्वश्रेष्ठ है।

पाठ्य-प्रश्न

6. निम्न प्रश्नों में सही विकल्प का चयन कीजिए।

i. गीतगोविन्द के रचनाकार हैं –

क. जयदेव ख. भर्तृहरि ग. कालिदास घ. पं जगन्नाथ

ii. गीतगोविन्द में कितने सर्ग हैं –

क. 18 ख .20 ग.12 घ.14

iii. गीतगोविन्द का अंग्रेजी अनुवाद किसने किया है –

क. सर विलियम जोन्स ख. मैक्समूलर ग. डॉ. कीथ घ. जैकोबी

iv. गीतगोविन्द में किसका वर्णन प्राप्त होता है –

क. शिव-पार्वती ख. राधा-कृष्ण ग. राम-सीता घ. विष्णु-लक्ष्मी

11.6.5 अमरु और अमरुकशतक

अमरु या अमरुक, जिनके विषय में अधिक ज्ञात नहीं हैं, के द्वारा विरचित एक शतक बताया जाता है जिनके विभिन्न संस्करणों में 90 से लेकर 115 तक श्लोक पाये जाते हैं। इसके चार प्रमुख संस्करणों में समानरूप से

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

उपलब्ध श्लोकों की संख्या केवल 51 है। अर्जुनवर्मन्, चतुर्भुजमिश्र, कोकसम्भव, नन्दलाल, रविचन्द्र, रामचन्द्र, वेमभूपाल, शंकराचार्य, हरिभट्ट व ज्ञानानन्द कलाधरसेन आदि ने इस पर अपनी टीकायें लिखी है। अन्तिम टीकाकार ने प्रत्येक पद्य की व्याख्या दो प्रकार से की है-एक तो शृंगारपरक और दूसरी वैराग्यपरक । अमरु-शतक की ख्याति के रूप में इस उक्ति को ही प्रस्तुत किया जा सकता है-"एकमेवामरोः श्लोकः सत्प्रबन्धशताय च"—अर्थात् अमरु का केवल एक श्लोक सौ अच्छे प्रबन्धकाव्यों के समान है।

आनन्दवर्धन और वामन ने अमरु की कविता की चर्चा की है, पर उसके शतक के विषय में कुछ नहीं कहा है। अतः इनका काल-निर्णय बहुत कठिन है। यह भी सम्भव है कि दूसरों के द्वारा विचरित पद्य इनके शतक में समाविष्ट कर लिये गये हों। अमरु का प्रथम उल्लेख आनन्दवर्धन ने किया है। जिनका समय ईसा की अष्टम शताब्दी है-अपने ग्रन्थ में ध्यवन्यालोक में अमरुक की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा है-'अमरुकस्य कवेर्मुक्तका शृंगाररस-स्यन्दिनः प्रबन्धायमाना प्रसिद्धा एव'। काव्यशास्त्रीय आचार्यो ने अमरुक को बहुत आदर दिया है। इनके पद्यों की ध्वनि अत्यन्त मार्मिक होती है। आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश (उल्लास 1) में ध्वनिकाव्य के उदाहरण के रूप में अमरुक का एक पद दिया है। इसलिए इस समय तक अमरु विख्यात हो चुके थे, यह असंदिग्ध है। कर्णपरम्परा इस शतक की रचना का श्रेय श्री शंकराचार्य को देती है और कहती है कि भारती नामक मण्डनमिश्र (सुरेश्वराचार्य) की विदुषी पत्नी से शास्त्रार्थ करते हुए जब वे कामशास्त्र सम्बन्धी प्रश्न से परास्त हो गए तब एक राजा के मृतक शरीर में काम-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रविष्ट हो गए और परिणामस्वरूप इस शतक की रचना की। इस सम्बन्ध में आलोचकों का मतभेद है।

वेमभूपाल द्वारा की गई टीका में प्रत्येक श्लोक को नायिका-भेदों के एक विशिष्ट उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाना भी निराधार ही प्रतीत होता है क्योंकि अमरु शतक का विषय सामान्य रूप से शृंगार है। अमरु ने प्रेमियों की विभिन्न चित्त वृत्तियों-मिलन, निराशा, क्रोध और समर्पण का सुन्दर चित्रण किया है। विरह और मिलन की विभिन्न अवस्थाओं के वे सुन्दर चितेरे हैं। उनका प्रेम आदर्श न होकर शारीरिक है। उनके काव्य में भावों की कोमलता और विचारों की उदात्तता (उच्चता) मिलती है। यह शतक जीवन के अन्य अंशो का वर्णन नहीं करता। अमरु की कविता का शृंगार उदात एवं उच्च भावों से युक्त है तथा प्रेमियों के छोटे-छोटे कलहों के द्वारा मन को आनन्दित करता है। उनकी समाप्ति भी मृदु मुस्कानों के साथ ही होती है। एक सुन्दर उदाहरण के रूप में निम्नलिखित पद्य प्रस्तुत किया जा सकता है—

'बाले' 'नाथ' 'विमुञ्च मानिन रुषम्' 'रोषान्मया किं कृतम्',

'खेदोऽस्मासु' 'न में अपराध्यति भवान् सर्वेऽपराद्धा मयि'।।

'तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा' 'कस्याग्रतो रुद्यते'

'नन्वेतन्मम' 'का तवास्मि' 'दयिता' 'नास्मीत्यतो रुद्यते'।।

इस प्रकार अमरु प्रेम के विभिन्न रूपों का चित्रण करने में सिद्धस्त हैं। इनमें कहीं आनन्द है, तो कहीं निराशा, कहीं क्रोध है तो कहीं भक्ति। रोष और तोष के कई प्रसंग तो बहुत मोहक हैं। यद्यपि अमरु का क्षेत्र बहुत

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सीमित है तथापि सतत नवीनता और विचारों की मौलिकता का उसने सफल निर्वाह किया है। अमरु मोह और आवेगयुक्त शृंगार का वर्णन नहीं करते अपितु उनका शृंगार विवेकपूर्ण है और श्लोकों में सर्वत्र भावों की कोमलता और विचारों की सूक्ष्मता उपलब्ध होती है।

अमरु ने वैदर्भी शैली में अपना शतक लिखा है। इन श्लोकों में प्रसाद माधुर्य, कोमल कल्पना, सरसता और परिहास है। श्लोक सरस और भावपूर्ण हैं शब्दों का चयन बहुत सुन्दर है।

अमरु की कविता ने यूरोपीय विद्वानों को भी आकृष्ट किया है। फलस्वरूप फ्रेडरिक स्कर्ट और श्रोदर ने अमरु के कुछ श्लोकों का अनुवाद किया है। इसी प्रकार हर्टल और हेंस लिण्डक ने भी अमरु शतक के उल्लासपूर्ण जीवन के कुछ चित्र प्रस्तुत किये हैं।

पाठ्य-प्रश्न

7. निम्न प्रश्नों में सही तथा गलत उत्तर का चयन कीजिए ।

i. अमरु ने _______ शैली में अपना शतक लिखा है।

ii. अमरु की रचना ______नाम से जानी जाती है ।

iii. अमरु का प्रथम उल्लेख _______ ने किया है।

iv. अमरु की कविता का श्रृंगार ______भावों से युक्त है।

11.6.6 अन्य गीतिकाव्य

अन्य दूतकाव्य

'मेघदूत' की प्रतिकृतियों में से पार्श्वाभ्युदय की चर्चा पहले की जा चुकी है। इसके रचयिता जिनसेन 814 ईस्वी में विद्यमान थे और उन्होंने अपनी इस रचना में 23वें जैन तीर्थकर पार्श्वनाथ की जीवनी लिखी है। अज्ञातकाल विक्रम द्वारा विरचित 'नेमिदूत' भी इस शैली की कृति है।

धोई विरचित 'पवनदूत' एक और महत्त्वपूर्ण दूत-काव्य है जिसमें एक गंधर्व-रमणी ने अपने आश्रयदाता बंगनरेश लक्ष्मण सेन (15वीं शती) को संदेश भेजने के लिए पवन को दूत बनाया है। वसन्तदेशिककृत 'हंसदूत' मुख्यतः एक भक्ति-काव्य है जिसमें तमिलनाडु के तीर्थ स्थानों का वर्ण है। दूसरे तमिलकवि उद्दण्ड (1400 ई.) 'कोकिलदूत' के रचयिता है। श्रीकृष्ण चैतन्य के शिष्य रूपगोस्वामी (1400 ई.) के दो दूत-काव्य

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

भक्ति-प्रधान हैं। 19वीं शताब्दी में विद्यमान राम-शास्त्री ने 'मेघ प्रति संदेश' नामक काव्य लिखा है जिसमें 'मेघदूत' के यक्ष द्वारा प्रेषित संदेशों का उत्तर उसकी यक्षणी प्रेयसी ने दिया है। इस सूची में अनेकों अन्य गौण-दूत-काव्यों की गणना भी की जा सकती है।

कुछ अप्रसिद्ध शृंगारिक गीतिकाव्य

कालिदास, भर्तृहरि, अमरु और जयदेव के अतिरिक्त और ऐसे अनेक कवियों की दीर्घ परम्परा है जिन्होंने सामान्य कोटिक शृंगारिक गीतिकाव्यों की रचना की। इनमें से ऐतिहासिक महाकाव्य विक्रमांकदेवचरित के रचयिता प्रसिद्ध कवि बिन्हण का नाम सर्वप्रथम आता है। इस कवि ने 60 श्लोक वाले चौर-पञ्चाशिका नाम एक छोटे गीत-काव्य की रचना की है और उसमें एक राजकुमारी के साथ हुए अपने गुप्त प्रेम का विवरण दिया है। काश्मीरी परम्परा के अनुसार उक्त राजकुमारी का नाम राजकुमारी चन्द्रलेखा था और वह महिलापतन नरेश वीरसिंह की पुत्री थी। दक्षिण भारतीय संस्करणों में राजकुमारी का नाम यामिनी पुराणतिलका बताते हुए पंचाल नरेश मदनाभिराम को उसका पिता स्वीकार किया है।

माना जाता है कि वसन्ततिलका वृत्त में विरचित इन गीतिकाव्य का पाठ कवि ने अपनी मृत्यु के समय किया था। इसका प्रत्येक श्लोक 'अद्यापि' शब्द से प्रारम्भ होता है और इसकी शैली कवि की दूसरी रचना विक्रमांकदेवचरित से बहुत अधिक प्राञ्जल है। यथा-

"अद्यापि मे वरतनोर्मधुराशि तस्या

यान्यर्थवन्ति न च यानि निरर्थकानि।

निद्रानिमीलितदृशो मदमन्थरायाः

तान्यक्षराणि हृदये किमपि घ्वनन्ति।।

तथा अद्यापि तां भुजलतार्पित कण्ठपाशाम्

वक्षस्थलं मम पिधाय पयोधराभ्याम्।

ईषभिमीलितसलीलविलोचनान्ताम्

पश्यामि मुग्धवदनां वदनं पिबन्तीम्।।"

(आज भी मैं देख रहा हूँ कि उस मुग्ध मुख वाली रमणी को जिसने अपनी भुजा-लता को मेरे कण्ठ के चारों ओर पाश रूप में लपेट दिया था व अपने स्तनों से मेरे वक्ष स्थल को ढककर आधे मुंदे हुए नयनों की कोरों से चचलतापूर्वक मुस्कराते हुए मेरे वदन (अधर) का चुम्बन किया था।) इस काव्य में प्रेम के सूक्ष्म और रमणीय चित्र उपस्थित किये गए हैं। शैली सरल और उदात्त है और परिस्थिति विशेष के चित्रण में सकाम है। भावों में विविधता है प्रत्येक पद मानो अपने आप में मादक भावों और तीव्र आवेगों को समाये हुए है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

शृंगारतिलक, पुष्पवनविलास और राक्षसकाव्य नामक तीन अन्य गीति-काव्य कालिदास-विरचित बताये जाते हैं पर इनमें से केवल प्रथम ही कालिदास के स्तर का प्रतीत होता है। इसमें कुल 23 श्लोक हैं जिनमें से कुछ में वास्तविक कविता का सा आनन्द आता है। उदाहरण के लिए निम्न पद्य उद्धृत किया जा सकता है-

"किं मे वक्त्रमुपेत्य चुम्बसि बलात् निर्लज्ज लज्जाकृते

वस्त्रान्तं शठ मुञ्च शपथैः किंधूर्तं निर्वञ्चसे ?

क्षीणाहं तवरात्रिजागरवशात् तामेव याहि प्रियाम्

निर्माल्योज्झितपुष्पदामनिकरे का षट्पदानां रतिः ?॥"

(निर्लज्ज! लज्जा के बहाने पास आकर मेरी इच्छा के विपरीत बलपूर्वक मेरा चुम्बन क्यों करते हो? नीच! मेरा पल्ला छोड़ दो, झूठी कसमें खाकर मुझे धोखा क्यों देते हो? तुम्हारे लिए रात भर जागने के कारण मैं दुर्बल हो गई हूँ-(अपनी) उस प्रिया के पास जाओ। गले से उतार कर फेंके गये पुष्पहार के प्रति भ्रमरों में क्या आकर्षण हो सकता है?)

घटकर्पर कवि, जिसका काल निश्चित नहीं है, के इसी नाम के प्रसिद्ध काव्य में 22 श्लोक हैं और प्रत्येक पद्य में यमक नामक शब्दालंकार है तथापि पद्य अनाकर्षक नहीं। कवि घटकर्पर (फूटे घड़े) में उस व्यक्ति के लिए जल ले जाने को तैयार हैं जो यमक अलंकार के प्रयोग में उसे जीत ले। सम्भवतः इसी कारण उक्त कवि और काव्य इसी नाम से प्रसिद्ध हो गए। काव्य का विषय मेघदूत से बिलकुल विपरीत है। यहाँ वर्षा काल के प्रारम्भ में प्रेमिका अपने प्रवासी पति को मेघों के द्वारा संदेश भेजती है।

महाराज हर्षवर्धन के आश्रित कवि मयूर ने 'सूर्यशतक' नामक एक गीतिकाव्य लिखा है जिसमें कुष्ठ रोग से मुक्ति पाने के लिए 100 श्लोकों में सूर्य से प्रार्थना की गई है। कवि को यह रोग अपनी पुत्री के शाप से हो गया था क्योंकि उसके सौंदर्य का सूक्ष्म (अशोभन) वर्णन कवि-पिता ने अपनी कविता में किया था। यथा—

"एषा का स्तनपीनभारकठिना मध्ये दरिद्रावती

विभ्रान्ता हरिणी विलोलनयना संत्रस्तयूथोद्गता।

अन्तः स्वेदगजेन्द्रगण्डगलिता संलीलया गच्छति,

दृष्ट्वा रूपमिदं प्रियांगगहनं वृद्धोऽपि कामायते।।"

(मोटे, भारी और कठन स्तनों वाली यह कौन है जिसका कटि प्रदेश अतिक्षीण है? (जो) अपने समूह से बिछुड़ी हुई और (इस कारण) डरी हुई, थकी हुई और चंचल नयनों वाली हरिण सी (यह कौन है?) मदमाते

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

हाथी के गण्डस्थल से टपकने वाले मद के समान जिसके शरीर पर स्वेद (पसीना) है और मदमत्त सी चल रही है? प्रिय अंगों वाले इस उद्धेग यौवन को देखकर (तो) वृद्ध भी कामासक्त हो उठता है।)

कुछ मुक्तक श्लोक, प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि विरचित भी बताए जाते हैं। पर यह काल्पनिक ही प्रतीत होता है। यथा-

"पाणी शोणतले तनूदरि दरक्षामा कपोलस्थला

विन्यस्तांजनदिग्धलोचनजलै किं म्लानीमानीयते ?

मुग्धे चुम्बतु नाम चंचलतना भृंगः क्वचित् कन्दलीम् ?

उन्मीलन्नवमालतीपरिमलः किं तेन विस्मर्यते ?॥"

(हे क्षीणकटि वाली रमणी, कज्जलधार संयुक्त आंसुओं के बहने से मलिन कपौल वाली होकर और कपोल को रक्त हथेली पर रख कर क्यों उदास बैठी हो? दीवानी, चंचलतावश भ्रमर कभी चाहे आम्रर-मंजरी का चुम्बन कर ले पर क्या वह विकचमान नव-मल्लिका के पराग को भूल सकता है?)

जयदेव समकालीन गोवर्द्धन कवि ने आर्याछिन्द में 700 मुक्तक पदों की रचना की थी और इन्हें अकारादि अनुक्रम से व्यवस्थित किया। आर्यासप्तशती नाम से विख्यात यह कृति हाल की प्राकृत में लिखी गई सतसई की क्षुद्र प्रतिकृति होती है। हाल की इसी प्राकृत सतसई की अनुकृति पर बिहारी ने भी हिन्दी में दोहों की एक सतसई लिखी है।

धार्मिक गीति-काव्य

धार्मिक गीतिकाव्य श्यामलादण्ड जिसके रचयिता कालिदास माने जाते हैं, के अतिरिक्त अश्वघोष (प्रथमशती) ने चण्डी स्तोत्र का रचना की जिसमें एक लम्बे काष्ठ खण्ड पर गदा की टंकार से धार्मिक संदेश दिया गया है। इसी प्रकार सिद्धसेन दिवाकर (5वीं शती) से जैन तीर्थकरों की प्रशंसा में कल्याण मन्दिर-स्तोत्र की रचना की।

महर्षि-मर्दिनी चण्डी की स्तुति करने वाले 102 स्रग्धरा छन्दों से युक्त चण्डीशतक नामक एक धार्मिक गीति काव्य की रचना का श्रेय बाणभट्ट को दिया जाता है। पर यह रचना बाण के शैलीगत वैशिष्ट्य से वंचित है। इससे अच्छी शैली तो मयूर (बाणभट्ट के ससुर) की प्रतीत होती है जो यमक व अनुप्रास अलंकारों से सम्पन्न है और एक प्रकार से दण्डी द्वारा प्रदर्शित गौड़ी शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है। बाण व मयूर के समकालीन ही राजशेखर और मतंगदिवाकर को भी रखा जाता है। इनमें से परवर्ती कवि को कुछ लोग भक्तामरस्तोत्र का रचयिता बताते हैं जो कि ऋषभदेव की स्तुति पदों का संग्रह है। भक्तामरस्तोत्र में कुछ पद निश्चय ही उच्च-कोटि की कविता के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जैसे-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

"अल्पश्रुतः श्रुतवतां परिहासधाम,

त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।

यत्कोकिलः किल मधौ, मधुरं विरौति,

तच्चारु-चूतकलिका निकरैकहेतुः।।"

बौद्धस्तोत्रों में से अष्टमहाश्रीचैत्य स्तोत्र हर्षवर्द्धन की कृति बताया जाता है। सर्वज्ञानमित्र नामक एक परवर्ती लेखक ने बौद्ध मातृका (देवी) तारा की स्तुति में स्रग्धरा स्तोत्र की रचना की।

अनेक भक्तिस्तोत्र प्रसिद्ध दार्शनिक भगवान् श्रीशंकराचार्य द्वारा विरचित बताये जाते हैं। शिवापराधक्षमापण स्तोत्र नामक उनकी कृति से एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें संसार की नश्वरता सात्विक शब्दों में प्रकट की गयी है—

"आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं

प्रत्यायन्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।

लक्ष्मीस्तोयतरंगभंगचपला विद्युच्चलं जीवितम्

यस्मान्मां शरणागतं शरणदस्त्वं रक्ष रक्षाधुना।।"

(हमारी दृष्टि के सम्मुख ही प्रतिदिन आयु नष्ट हो रही है और यौवन क्षीण होता जा रहा है। गए हुए दिन लौटते नहीं क्योंकि काल सबका भक्षक है। लक्ष्मी जल की चंचल लहरों के समान भंगुर है और जीवन विद्युत के समान चंचल है। हे शिव! तुम सबके शरणदाता कहलाते हो और मैं तुम्हारी शरण आया हूँ। अब मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।)

देव्यापराधक्षमापण स्तोत्र में भक्तिभाववश भगवान् श्री शंकराचार्य मानो विह्नल हो जाते हैं और कहते हैं—

"विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया,

विधेयाशक्यत्वात् तव चरणयोर्याच्युतिरभूत्।

तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे

कुपुत्रे जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।।"

(हे माता! विधि सम्बन्धी अज्ञान से, द्रव्य की कमी से, आलस्यवश अथवा विधि निर्वाह से असमर्थता के कारण यदि तुम्हारी चरण-सेवा में मुझ से कोई त्रुटि हो गयी हो तो सबका उद्धार करने वाले हे शिवे ! मेरे अपराध को क्षमा कर देना क्योंकि कुपुत्र का होना तो सम्भव है पर माता कदापि कुमाता नहीं हो सकती।)

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

भावनाष्टक और आनन्दलहरी भी श्री शंकराचार्य की कृतियाँ मानी जाती हैं। आनन्दवर्द्धनाचार्य का देवीशतक प्रमाणित करता है कि उच्चकोटि के आलोचक के साथ ही साथ वे मध्यमकोटि के कवि भी थे। अन्य धार्मिक गीतिकाव्यों में उत्पलदेव (1925 ई.) कृत स्तोत्रवली, कुल शेखर (10वीं शती) कृत मुकुन्दमाला, लीलाशुक (11वीं शती) कृत कृष्णालीलामृत और श्री रूप गोस्वामी (12वीं शती) कृत पद्यावली उल्लेखनीय है।

परवर्ती धार्मिक गीतिकाव्य

इस युग के बाद तो धार्मिक स्तोत्रों की बाढ़ सी आ गई। उनमें से अनेक वास्तविक कविताएँ थी। अकेले वेदान्तदेशिक (1268-1369 ई.) ने 25 गीतिकाव्यों की रचना की। पादुकासहस्त्र नाम की उनकी एक रचना में भगवान श्रीराम की पादुकाओं की प्रशस्ति में लिखित 1000 श्लोक मिलते हैं। दूसरे उल्लेखनीय गीतिकार अप्पय-दीक्षित (1554 ई.) हैं जिनके काव्य में कल्पना की महत्ता और मौलिकता मिलती है। अन्य कृतियों में नारायण भट्ट (1558 ई.) की नारायणीय, मधुसूदन सरस्वती (1600 ई.) की आनन्दमन्दाकिनी, पण्डितराज जगन्नाथ (1590-1665 ई.) की सुधालहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी, करुणालहरी और गंगालहरी, नीलकण्ठ दीक्षित (1650 ई.) का आनन्दसागर स्तोत्र और शिवोत्कर्षमेजरी, रामभद्रदीक्षित कृत (1700 ई.) रामबाणस्तव तथा नारायणतीर्थ की (1700 ई. विचरित कृष्णलीलातरंगिनी उल्लेखनीय है।

11.7 सारांश

छात्रो! प्रस्तुत पाठ में आपने किसी एक देश के अनुसार चलने वाली घटना विशेष युक्त गीतिकाव्य के लक्षण को देखा जो संगीतात्मक, भावप्रधान, लयात्मक स्वरूप के साथ-साथ प्रकृति वर्णन, शृंगार इत्यादि रसों से परिपूर्ण है। जैसे-कालिदास की मेघदूतम् जहाँ यक्ष और प्रकृतिस्वरूप मेघ के संवाद के माध्यम से सम्पूर्ण कथावस्तु का वर्णन प्रस्तुत कर दिया गया है। संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य का प्रारम्भ महाकवि वाल्मीकि कृत रामायण से सम्भवतः प्रारम्भ माना जाता है लेकिन परवर्ती लौकिक संस्कृत साहित्य में कालिदास की रचना मेघदूत और ऋतुसंहार से इसका प्रारम्भ हुआ। संस्कृत साहित्य में अन्य प्रमुख गीतिकाव्यों और रचनाकारों जैसे भर्तृहरि का शतकत्रय, जयदेव कृत गीतगोविन्द, अमरुकृत अमरुशतक इत्यादि के सम्बन्ध में आपको ज्ञान प्राप्त हुआ।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य-प्रश्न

8. निम्न प्रश्नों में सही तथा गलत उत्तर का चयन कीजिए।
   i. धोई विरचित 'पवनदूत' गीतिकाव्य है।()
   ii. बिल्हण की रचना चौरपञ्चाशिका नामक गीतिकाव्य नहीं है।()
   iii. मयूर कवि की रचना सूर्यशतक मानी जाती है।()
   iv. दूतकाव्य गीतिकाव्य की एक कोटि है।()

11.8 पारिभाषिक शब्दावली

शाश्वतम् - नित्य

समा - शांति

सन्निपातः - गिरना

निर्वेक्ष्य - दर्शन

स्मित - मुस्कान

पंकज - कमल

द्विरेफ - भ्रमर

क्षयं - नष्ट

तोय - जल

भंग - भंगुर

चपला - चंचल

तरंग - लहर

च्युति - भूल, त्रुटि

© DDCE, COL, SOL, University

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

11.9 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1.	4.
i. सही	i. 110
ii. गलत	ii. वैदर्भी
iii. सही	iii. गीतिकाव्य
iv. गलत	iv. 6
2.	v. ग्रीष्म ऋतु
i. ऋग्वेद	5.
ii. वाल्मीकि	i. सातवीं
iii. 11वें	ii. शतकत्रय
iv. कालिदास	iii. नीतिशतक
v. राम	iv. भर्तृहरि
3.	6.
i. गीतिकाव्य	i. जयदेव
ii. संगीत एवं लय	ii. 12
iii. शृंगार, वीर एवं शान्त	iii. सर विलियम जोन्स
iv. कविता	iv. राधा-कृष्ण
	7.
	i. वैदर्भी
	ii. अमरुकशतक
	iii. आनन्दवर्धन
	iv. उदात्त एवं उच्च
	8.
	i. सही
	ii. गलत
	iii. सही
	iv. सही

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

11.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1.गीतिकाव्य का लक्षण बताते हुए उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

2. 'खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च' उक्त परिभाषा के सन्दर्भ में गीतिकाव्य पर निबन्ध लिखिए।

11.11 संदर्भ ग्रंथ

- उपाध्याय, बलदेव, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001.
- काणे, पी.वी., शास्त्री, इंद्रचंद्र(अनु.), *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2011.

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Keith, A.B., *History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.
- Shastri, Gaurinath, *A Concise History of Sanskrit Literature*, MLBD, Delhi.

© SOL, SOL, University of Delhi

उद्घोषणा (Disclaimer)

वर्तमान अध्ययन सामग्री वार्षिक मोड/सी.बी.सी.एस. सेमेस्टर सिस्टम के तहत पहले से उपलब्ध अध्यायों का संशोधित संस्करण है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi